PATNA UNIVERSITY

पटना-युनिवर्सिटी हिन्दी-प्रवेशिका

[Matriculation Hindi Prose and Poetry Selections for those whose mother-tongue is not any of the recognised Modern Indian Languages.]
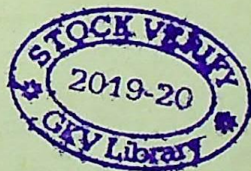
PUBLISHED BY PATNA UNIVERSITY
1942
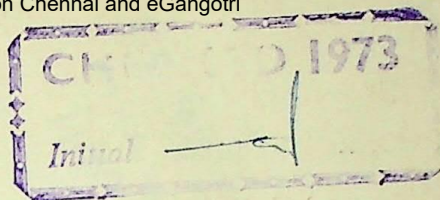
विज्ञप्ति

इस संग्रह की विषय-सूची में जिन पाठों के सामने तारा-चिह्न (❀) लगे हुए हैं, उनके ऊपर पटना युनिवर्सिटी का सर्वाधिकार है। अतः युनिवर्सिटी की अनुमति के बिना उन्हें किसी अन्य संग्रह-ग्रंथ में छापने का अधिकार किसी को नहीं है। इसके अतिरिक्त, पाठों के साथ जो उपक्रमणिकाएँ और शब्दार्थ दिए गए हैं, उनके ऊपर भी युनिवर्सिटी का सर्वाधिकार है। अतः उन्हें भी कोई अन्यत्र नहीं छाप सकता।

भूमिका

आधुनिक भारतीय भाषाओं को युनिवर्सिटी के पाठ्य-क्रम में अभीतक वह स्थान प्राप्त न था जो उन्हें प्राप्त होना चाहिए। अतः स्कूलों या कालेजों में उनकी पढ़ाई की ओर ध्यान नहीं दिया जाता था। पर धीरे-धीरे राष्ट्रीय जागरण तथा स्वराज्य-भावना के विकास के साथ स्वदेश के समान ही स्वभाषा के महत्त्व की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा। फलतः शिक्षा-क्रम में आधुनिक भारतीय भाषाओं को भी अधिकाधिक स्थान मिलने लगा। अब पटना युनिवर्सिटी की मैट्रिकुलेशन परीक्षा के लिए वे शिक्षा का माध्यम बन चुकी हैं। इससे आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन की महत्ता तथा आवश्यकता बहुत बढ़ गई है। अतः अंग्रेजी की तरह अब उनके भी विधिवत् पठन-पाठन की व्यवस्था अपेक्षित है। पहले जहाँ आधुनिक भारतीय भाषाओं के लिए पाठ्य-क्रम में केवल एक ही पत्र रहता था वहाँ अब दो पत्र नियत किए गए हैं। पहले जहाँ परीक्षार्थियों के लिए किसी पुस्तक का अध्ययन आवश्यक नहीं था— यों शैली के नमूनों के रूप में पढ़ने के लिए कुछ पुस्तकों का पाठ्य-क्रम में उल्लेख अवश्य कर दिया जाता था—वहाँ अब गद्य-पद्य का विधिवत् अध्ययन आवश्यक कर दिया गया है।

युनिवर्सिटी के नये पाठ्य-क्रम में अब हिन्दी को जो स्थान प्राप्त हुआ है उसे दृष्टि में रखते हुए इस बात की आवश्यकता का अनुभव

होने लगा कि इसमें भी उत्तम संग्रह-ग्रन्थ होने चाहिए। यह ठीक है कि पहले भी 'प्रिन्सिपल सबजेक्ट' के रूप में आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य के वैकल्पिक अध्ययन के निमित्त जो एक पत्र मैट्रिकुलेशन के पाठ्य-क्रम में नियत था, उसके लिए भी साहित्यिक संग्रह-ग्रन्थों की आवश्यकता होती थी, जिसकी पूर्त्ति के हेतु उपलब्ध पुस्तकों में से ही कोई-न-कोई संग्रह समय-समय पर चुन लिया जाता था। किन्तु सब बातों पर विचार करने के अनन्तर यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि युनिवर्सिटी को अपना संग्रह प्रकाशित करना चाहिए। तदनुसार हिन्दी के सुसम्पादित गद्य-पद्य-संग्रहों के प्रकाशन का भार युनिवर्सिटी ने अपने ऊपर लिया और इस कार्य के लिए सिंडिकेट ने आचार्य बदरीनाथ वर्मा, श्री राय व्रजराज कृष्ण, डाक्टर ईश्वरदत्त, डाक्टर जनार्दन मिश्र, प्रोफेसर विश्वनाथ प्रसाद और प्रोफेसर शिवपूजन सहाय की एक हिन्दी-संग्रह-समिति नियुक्त की। उसके सदस्यों के दो वर्षों के लगातार परिश्रम के बाद मैट्रिकुलेशन के लिए गद्य-पद्य के चार संग्रह तैयार हुए, जिनमें से एक यह है।

इन संग्रहों के तैयार करने में इस बात का ध्यान रखने की चेष्टा की गई है कि इनके संकलनों के विचार और भाव सुन्दर, सुरुचिपूर्ण, व्यापक, उपादेय, उत्साहवर्धक तथा जीवन को सरस एवं समुन्नत बनाने-वाले हों। साथ ही, उनकी वर्णनशैली और अभिव्यक्ति ऐसी जटिल और पेचीली तथा नीरस न हो कि सुकुमार-मति विद्यार्थी उनसे प्रारम्भ में ही ऊबकर विरक्त हो जायँ। एक ओर जहाँ विद्यार्थियों की सांस्कृतिक उन्नति का ध्यान रक्खा गया है, वहाँ दूसरी ओर उन्हें दुराग्रहपूर्ण एवं

विवादग्रस्त साम्प्रदायिक तथा राजनीतिक असहिष्णुता से बचाकर उनकी भावना को उदार बनाने का भी प्रयत्न किया गया है। इसी प्रकार विद्यार्थियों के सामने प्रांजल तथा परिष्कृत शैली के दृष्टान्त उपस्थित करने के साथ ही शैली की अनेकरूपता पर भी ध्यान दिया गया है। गद्य-पाठों के संकलन में इस बात पर भी यथेष्ट दृष्टि रक्खी गई है कि विद्यार्थी उन्हें पढ़कर विज्ञान, कला-कौशल, वाणिज्य-व्यवसाय आदि विभिन्न विषयों को भी अपनी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त कर सकें, जिसकी आज बड़ी आवश्यकता है।

उपर्युक्त बातों के समुचित निर्वाह के लिए लेखों के विषय और मैट्रिक के छात्रों के लिए उनकी उपयोगिता तथा उपयुक्तता पर ही विशेष ध्यान दिया गया है—उनके लेखक चाहे कोई भी हों।

इन संग्रहों के कई गद्य-लेखों के मूल रूप में आवश्यकतानुसार जहाँ-तहाँ कुछ परिवर्त्तन किए गए हैं। पर परिवर्त्तन करते समय इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि लेखक की मूल भावना पर कोई आघात न पहुँचे। इन परिवर्त्तनों के लिए लेखकों से क्षमाप्रार्थना है।

एक ही संस्था से प्रकाशित विभिन्न संग्रहों में यथासाध्य वर्णविन्यासादि की एकरूपता रहे, इस विचार से— विशेषतः गद्य में—

(क) क्रिया-पदों में सर्वत्र 'ये' के बदले 'ए' का प्रयोग किया गया है और स्त्रीलिंग-रूप में 'यी' के स्थान में 'ई' का। जैसे—लिए, गए, चाहिए, कीजिए, गई आदि। सम्प्रदान की विभक्ति के रूप में भी 'लिये' की जगह 'लिए' का ही व्यवहार किया गया है।

(ख) साधारणतः सानुनासिक ध्वनि के लिए अनुस्वार का प्रयोग किया गया है। जैसे—शंका, वांछनीय, कंठ। केवल 'म्' और 'न्' की ध्वनि के लिए प्रायः संयुक्त वर्णों का प्रयोग किया गया है। जैसे—आरम्भ, शान्त आदि। अनुस्वार और चन्द्रविन्दु का भेद बराबर ध्यान में रक्खा गया है। पर जहाँ वर्णों के सिर पर मात्राएँ हैं, वहाँ चन्द्रविन्दु के स्थान में अनुस्वार ही रक्खा गया है।

(ग) महान्, भगवान्, जगत् जैसे शब्दों में हलन्त का प्रयोग किया गया है।

(घ) किसी शब्द की आवृत्ति के लिए '२' के प्रयोग को भ्रमात्मक समझकर, बीच में योजक चिन्ह (–) देकर, उसका पूर्ण द्विरुक्त रूप रक्खा गया है।

(च) पूर्वकालिक क्रिया में 'कर' पद के साथ तथा 'करके' अलग लिखा गया है। जैसे—सोकर, खाकर, सो करके, खा करके इत्यादि।

(छ) कारक विभक्तियाँ शब्दों से अलग लिखी गई हैं। पर सर्वनाम शब्दों में वे सदा मिलाकर लिखी गई हैं।

(ज) साधारणत: 'जब' के बाद 'तब' और 'तौभी' की जगह 'तोभी' का प्रयोग किया गया है।

(झ) 'उपरोक्त' के स्थान में 'उपर्युक्त', 'अवतरित' के स्थान में 'अवतीर्ण', 'छुप' के स्थान में 'छिप', 'भूक' के स्थान में 'भूख', 'धोका' के स्थान में 'धोखा' का व्यवहार किया गया है।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि जिन रूपों का इन संग्रहों

में व्यवहार नहीं किया गया है, वे यदि हिन्दी में प्रचलित और व्याकरण-सम्मत हैं, तो अशुद्ध समझे जायँ।

जिन लेखकों और कवियों की रचनाओं का इन संग्रहों में समावेश किया गया है, युनिवर्सिटी उन सभी की कृतज्ञ है।

जिन लेखकों और कवियों ने इन संग्रहों के लिए ही अपनी रचनाएँ तैयार की हैं, अथवा अपनी रचनाओं के प्रकाशन का सर्वाधिकार दिया है, उनके प्रति युनिवर्सिटी विशेष रूप से कृतज्ञता प्रकट करती है। इन संग्रहों के तैयार करने में जिन सज्जनों ने सहयोग देने की कृपा की है, उन्हें भी युनिवर्सिटी अनेकानेक धन्यवाद देती है।

शुद्धि-पत्र (Corrigenda)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९	७	विद्याए	विद्याएँ
३७	९	भी	जी
५३	२२	नेकह	कहने
६५	१९	अप्रल(?)	अप्रैल
७३	२२	थाड़ी	थोड़ी
९९	२	लाइन	लाइनें
१०२	१	मालूम हा(?)	मालूम हो
११०	१५	भगवान	भगवान्
१११	१५	'स्केटिग'	'स्केटिंग'
११५	४	है	है।
१३९	१४	ह	है
१४५	१०	कूनूर	कुनूर
१४९	८	जो रूरत	जो ज़रूरत
१६०	७	व्यथित-हृदय	व्यथित हृदय
१६९	१३	ग्रेम	प्रेम
१८१	१६	बाल	बोल
१८४	२१	क़ की हुई	क़ै की हुई
१९३	२१	वार्तालाप	वार्त्तालाप
२१०	८	बर्तन	बरतन
२२१	९	,,	,,
२२८	१४	बर्त्तन	,,
२३०	९	बर्तन	,,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२३३	२	हांगे	होंगे
२३९	६	ज़ानते	जानते
२३९	१४	तुम्हारे	तुम्हारी
२५१	४	प्रभात्वोपादक	प्रभावोत्पादक
२५९	७	सदेसन	सँदेसन
२७१	५	रह	रस
२७८	१	लाग	लोग
२९७	१५	विद्वान	विद्वान्
३००	११	बृथा	वृथा
३०८	७	मेर(?) छूत	मेरी छूत
३१५	११	डड़नेवालें	उड़नेवाले
३१८	७	किवता	कविता
३२७	११	सीख	साख
३२९	२०	सीख	साख
३३०	८	जगत	जगत्
३४०	१६	ऐनक	रौनक
३६२	८	तत्व	तत्त्व
३८१	२२	गड़ता	पड़ता
३८२	१४	क्रोघ	क्रोध
३८२	१६	गुंडपनी	गुंडई
३८८	७	(?)लए	लिए

विषय-सूची

गद्य

कथाएँ

यात्राएँ

वर्णनात्मक लेख

जीवनियाँ

स्वास्थ्य रक्षा विषयक लेख

नैतिक तथा नागरिक शास्त्र सम्बन्धी लेख

ऐतिहासिक लेख

वैज्ञानिक लेख

विविध विषय के लेख

पद्य

[प्राचीन]

[नवीन]

नाटक

परीक्षा

[इस कहानी के लेखक हैं हिन्दी के सुप्रसिद्ध कहानी-लेखक स्वर्गीय श्रीप्रेमचन्द। इस कहानी में एक अत्यन्त मनोरंजक घटना द्वारा यह दिखाया गया है कि जिसके हृदय में दया और आत्मा में बल है, वस्तुतः वही मनुष्य है; विश्वविद्यालयों की उपाधियाँ और फैशन मनुष्यत्व के प्रमाण नहीं हैं।]

[१]

जब रियासत देवगढ़ के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े हुए तब उन्हें परमात्मा की याद आई। जाकर महाराज से उन्होंने विनय की—"दीनबन्धु ! दास ने श्रीमान् की सेवा चालीस साल तक की। अब कुछ दिन परमात्मा की भी सेवा करने की आज्ञा चाहता हूँ। दूसरे, अब मेरी अवस्था भी ढल गई, राज-काज सँभालने की शक्ति नहीं रह गई, कहीं भूल-चूक हो जाय तो बुढ़ापे में दाग लगे, सारी जिन्दगी की नेकनामी मिट्टी में मिल जायगी।"

राजा साहब अपने अनुभवशील नीतिकुशल दीवान का बड़ा आदर करते थे। उन्होंने बहुत समझाया, लेकिन जब दीवान साहब ने न माना तब हारकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, पर

शर्त यह लगा दी कि रियासत के लिए नया दीवान आप ही को खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन देश के प्रसिद्ध पत्रों में यह विज्ञापन निकला— "देवगढ़ के लिए एक सुयोग्य दीवान की जरूरत है। जो सज्जन अपनेको इस पद के योग्य समझें, वे वर्त्तमान दीवान सरदार सुजान सिंह की सेवा में उपस्थित हों, यह जरूरी नहीं कि वे ग्रेजुएट हों, मगर उनका हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है। मन्दाग्नि के मरीजों को यहाँ तक कष्ट उठाने की कोई जरूरत नहीं। एक महीने तक उम्मेदवारों के रहन-सहन, आचार-विचार की देख-भाल की जायगी। विद्या का कम, परन्तु कर्त्तव्य का अधिक विचार किया जायगा। जो महाशय इस परीक्षा में पूरे उतरेंगे, वे ही इस उच्च पद पर सुशोभित होंगे।"

[२]

इस विज्ञापन ने सारे मुल्क में हलचल मचा दी। ऐसा ऊँचा पद और किसी प्रकार की कैद नहीं, केवल नसीब का खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना भाग्य परखने के लिए चल खड़े हुए। देवगढ़ में नये और रंग-बिरंग के मनुष्य दिखाई देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ी से उम्मेदवारों का एक मेला-सा उतरता—कोई पंजाब से चला आता था, तो कोई मद्रास से; कोई नये फैशन का प्रेमी था, तो कोई पुरानी सादगी पर मिटा हुआ था। पंडितों और मौलवियों को भी अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने का अवसर मिला। बेचारे सनद के नाम को रोया

करते थे, यहाँ उसकी कोई जरूरत नहीं थी। रंगीन अमामे, चोगे और नाना प्रकार के अँगरखे और कनटोप देवगढ़ में अपनी सजधज दिखाने लगे। लेकिन सबसे विशेष संख्या ग्रेजुएटों की थी; क्योंकि सनद की कैद न होने पर भी सनद से परदा ढका रहता है।

सरदार सुजानसिंह ने इन महानुभावों के आदर-सत्कार का बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरों में बैठे हुए रोजादार मुसलमानों की तरह महीने के दिन गिना करते थे। हरएक मनुष्य अपने जीवन को अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छे रूप में दिखाने की कोशिश करता था। मिस्टर 'अ' नौ बजे दिन तक सोया करते थे, आज-कल वे बागीचे में टहलते हुए उषा का दर्शन करते थे। मिस्टर 'ब' को हुक्का पीने की लत थी, पर आज-कल बहुत रात गए किवाड़ बन्द करके अँधेरे में सिगार पीते थे। मिस्टर 'द', 'स' और 'ज' से उनके घरों के नौकरों की नाक में दम था, लेकिन ये सज्जन आजकल 'आप' और 'जनाब' के बगैर नौकरों से बातचीत नहीं करते थे। महाशय 'क' नास्तिक थे, हक्सले के उपासक थे। मगर आज-कल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मन्दिर के पुजारी को पदच्युत हो जाने की शंका लगी रहती थी। मिस्टर 'ल' को किताबों से घृणा थी, परन्तु आजकल वे बड़े-बड़े धर्म-ग्रन्थ खोले पढ़ने में डूबे रहते थे। जिससे बातचीत कीजिए, वही नम्रता और सदाचार का देवता ही मालूम होता था। शर्माजी बड़ी रात

ही से वेद-मंत्र पढ़ने लगते थे और मौलवियों को तो नमाज-तलावत के सिवा और कोई काम ही न था। लोग समझते थे कि एक महीने की झंझट है, किसी तरह काट लें, जो कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है।

लेकिन मनुष्यों का वह बूढ़ा जौहरी आड़ में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलों में हंस कहाँ छिपा हुआ है।

[३]

एक दिन नये फैशनवालों को सूझी कि आपस में हाकी का खेल हो जाय। यह प्रस्ताव हाकी के मँजे हुए खिलाड़ियों ने पेश किया। यह भी तो आखिर एक विद्या है। इसे क्यों छिपा रक्खें? सम्भव है, कुछ हाथों की सफाई ही काम कर जाय।

चलिए, तय हो गया, कोर्ट बन गए, खेल शुरू हो गया और गेंद किसी दफ्तर के अप्रेंटिस की तरह ठोकरें खाने लगी। रियासत देवगढ़ में यह खेल बिलकुल निराला था। पढ़े-लिखे भलेमानस शतरंज और ताश-जैसे गम्भीर खेल खेलते थे, दौड़-कूद के खेल बच्चों के खेल समझे जाते थे। खेल बड़े उत्साह से जारी था। धावे से लोग जब गेंद लेकर तेजी से उड़ते तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई लहर बढ़ती चली आती है। लेकिन दूसरी ओर के खिलाड़ी इस बढ़ती हुई लहर को इस तरह रोक लेते थे, मानों लोहे की दीवार हैं।

सन्ध्या तक यही धूम-धाम रही। लोग पसीने से तर हो गए। खून की गर्मी आँख और चेहरे से झलक रही थी।

हाँफते-हाँफते बेदम हो गए, लेकिन हार-जीत का निर्णय न हो सका।

अँधेरा हो गया था। इस मैदान से जरा दूर हटकर एक नाला था। उसपर कोई पुल न था। पथिकों को नाले में से चलकर आना पड़ता था। खेल अभी बन्द ही हुआ था और खिलाड़ी लोग बैठे दम ले रहे थे कि एक किसान अनाज से भरी हुई गाड़ी लिए उस नाले में आया। लेकिन कुछ तो नाले में कीचड़ था और कुछ चढ़ाई इतनी ऊँची थी कि गाड़ी ऊपर न चढ़ सकती थी। वह कभी बैलों को ललकारता, कभी पहिये को हाथों से ढकेलता, लेकिन बोझ अधिक था और बैल कमजोर थे। गाड़ी ऊपर को न चढ़ती, और चढ़ती भी तो कुछ दूर चढ़कर फिर खिसककर नीचे पहुँच जाती। किसान बार-बार जोर लगाता और बार-बार झुँझलाकर बैलों को मारता, लेकिन गाड़ी उभरने का नाम न लेती। बेचारा इधर-उधर निराश होकर ताकता, मगर वहाँ कोई सहायक नजर न आता था। गाड़ी को अकेले छोड़कर वह कहीं जा भी न सकता था। बड़ी विपत्ति में फँसा हुआ था।

इसी बीच में खिलाड़ी हाथों में डंडे लिए झूमते-झूमते उधर से निकले। किसान ने उनकी तरफ सहमी हुई आँखों से देखा; परन्तु किसी से मदद माँगने का साहस न हुआ। खिलाड़ियों ने भी उसको देखा, मगर बन्द आँखों से, जिनमें सहानुभूति का नाम न था; उनमें स्वार्थ था, मद था, मत्सर था, उदासीनता थी, वात्सल्य का नाम भी न था।

[४]

लेकिन उसी समूह में एक ऐसा मनुष्य भी था, जिसके हृदय में दया थी और साहस था। आज हाकी खेलते हुए उसके पैरों में चोट लग गई थी। लँगड़ाता हुआ वह धीरे-धीरे चला आता था। अकस्मात् उसकी निगाह गाड़ी पर पड़ी। वह ठिठक गया। उसे किसान को देखते ही सब बात ज्ञात हो गई। डंडा एक किनारे रख दिया, कोट उतार डाला और किसान के पास जाकर बोला—"मैं तुम्हारी गाड़ी निकाल दूँ ?"

किसान ने देखा कि एक गठे हुए बदन का लम्बा आदमी सामने खड़ा है। डरकर बोला—"हजूर, मैं आपसे कैसे कहूँ ?" युवक ने कहा—"मालूम होता है, तुम यहाँ बड़ी देर से फँसे हुए हो। अच्छा, तुम गाड़ी पर जाकर बैलों को साधो, मैं पहियों को ढकेलता हूँ, अभी गाड़ी ऊपर आती है।"

किसान गाड़ी पर जा बैठा, युवक ने पहियों में जोर लगाकर खिसकाया। कीचड़ बहुत ज्यादा था। वह घुटने तक जमीन में गड़ गया। लेकिन उसने हिम्मत न हारी। उसने फिर जोर किया, उधर किसान ने बैलों को ललकारा, बैलों को सहारा मिला, उनको भी हिम्मत बँध गई, उन्होंने कन्धे झुकाकर एक बार जोर किया। बस, गाड़ी नाले के ऊपर थी।

किसान युवक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला—"महाराज! आपने आज मुझे उबार लिया। नहीं तो सारी रात यहीं बैठना पड़ता।"

पहले तीसरे जन ने भलेमानस से कहा, आप बताइए, आप कौन हैं, क्या आप इस बँधुए को पहचानते हैं? इसने क्यों आज आपपर छुरी चलानी चाही थी?

उन्होंने कहा, मैं मारवाड़ी हूँ, आपकी दया से इन दिनों मेरा काम-काज कुछ अच्छा है। इसी से यहाँ के निठल्लू और निकम्मे सब मुझको कभी-कभी घेरा करते हैं। मैं भी उनको कभी-कभी कुछ दे दिया करता हूँ। पर अब इनमें गुंडे और लुच्चे भी बहुत हो गए हैं, वे डराकर बहुत कुछ लेना चाहते हैं। जो न दो तो इसी भाँति गला घोंटकर मार देने ही में अपनी बड़ाई समझते हैं। यह जो इस घड़ी यहाँ बैठा है, इसने परसों मुझसे पचास रुपये माँगे थे। मैंने कहा, इस घड़ी मैं तुमको कुछ नहीं दे सकता, मैं समझता हूँ, इसी से आज यह मेरा जी लेना चाहता था। इसको मैं पहचानता हूँ, यह मुझसे दो-चार बार दो-दो एक-एक रुपया ले चुका है। यह पछाँह का रहनेवाला है। आप बताइए, आप कौन हैं?

तीसरे जन ने कहा, आप देख ही रहे हैं, मैं एक साधू हूँ। दूसरे के दुख को दूर करना ही हम लोगों का काम है। डेढ़ महीना हुआ, मैं कलकत्ता आया हूँ, तब से रात-दिन इनको, जो आपके सामने बैठे हैं, खोज रहा हूँ। संयोग की बात है, आज अचानक इनसे भेंट हो गई। मैं इन्हीं की खोज में एक ठौर जा रहा था। मग में देखा, आपपर घात लगाए ये चले जा रहे हैं। मुझको खटका हुआ। मैं भी पीछे-पीछे चला। जो सोचा था, वही

हुआ। पर आपका जी बच गया, यह बड़ी बात हुई। मैंने यहाँ पहुँचने से पहले इनको न पहचाना था। दीये के सामने आने पर मैंने इनको पहचाना। मेरा काम भी हुआ, अब मैं आपसे यही चाहता हूँ, आप इनका जी छोड़ दें, बिना पहचाने भी मैं इनको बचाना चाहता था, और इसी लिए आपको वहाँ से यहाँ लिवा लाया। बोलचाल होने पर पहरेवालों से पकड़े जाने का डर था।

मारवाड़ी ने कहा, एक तो ये बाम्हन हैं, दूसरे आप कहते हैं, इसलिए जाइए, मैंने इनको छोड़ दिया। पर यह न जान पड़ा, आप इनको क्यों खोज रहे हैं।

मैं सब बातों को कहकर आपका जी भी दुखाना नहीं चाहता, पर अब इनसे पूछूँगा। यह कहकर उस तीसरे जन ने उस जन की ओर फिरकर कहा—क्यों, मुझको पहचानते हो ? रमानाथ तुम्हारा ही नाम न है ?

रमानाथ के जी में इस घड़ी एक अचम्भे का उलट-फेर हो रहा था। वह सोच रहा था, एक ये हैं जो दूसरे के दुख को दूर करना ही अपना धरम समझते हैं; एक मैं हूँ, जो दिन-रात दूसरे के सताने ही में चैन पाता हूँ। क्यों उनका जी ऐसा है, और मेरा ऐसा। मैं इसको समझ नहीं सकता हूँ। पर कुछ-कुछ जी में आज यह बात समाती है, जो भले हैं, उन्हीं को सुख मिलता है। मैं जितना ही सुख को खोजता फिरता हूँ, उतना ही वह मुझसे दूर भागता है। राम जानें, यह क्या बात है। यह सोचकर वह

बोला—हाँ, रमानाथ मेरा ही नाम है। पर मैं आपको पहचानता नहीं हूँ। आप बड़े लोग हैं, सब कुछ जान सकते हैं, अनजान को भी पहचान सकते हैं, पर मैं पापी हूँ आप-जैसों को कैसे पहचान सकता हूँ ?

यह तीसरे जन हमारे देवनन्दन हैं। रमानाथ की बातें सुन-कर उनका जी भर आया। उन्होंने झट उसके हाथ-पाँव खोल दिए। पीछे मारवाड़ी से कहा, अब हम लोग जाते हैं, आप भी घर में जाइए। पर एक बात आपसे कहे जाता हूँ, आप धनी हैं, आपके बैरी कितने होंगे, इसलिए आपको बहुत रात गए घर से बाहर न जाना चाहिए।

मारवाड़ी ने कहा, आप बहुत ठीक कहते हैं; पर आज दो घड़ी रात गए अचानक मेरा साथ मेरे साथियों से छूट गया। मैं एक भलेमानस के यहाँ काम से गया था; वहाँ से आ रहा था, बीच ही में यह बात हो पड़ी। साथ तो छूटा ही, पंथ भी भूल गया, इसी से आज यह धोखा हुआ। नहीं तो मैं कभी रात को अकेले बाहर नहीं जाता, और न बहुत रात बीते तक कहीं रहता हूँ।

इतना कहकर वह मारवाड़ी उठा, और घर में से पाँच-पाँच सौ रुपये की दो थैलियाँ लाकर देवनन्दन के सामने रक्खीं, और कहा, आपने जो कुछ आज मेरे साथ किया है, उसका पलटा जनम भर मुझसे नहीं हो सकता। पर इन दो थैलियों को मैं आपकी भेंट करता हूँ; आप इनको लीजिए और मुझको अपना टहलुआ समझते रहिए।

देवनन्दन ने कहा, रुपया लेकर मैं क्या करूँगा। मैंने तुम्हारा जी बचाकर अपना काम किया है, तुम्हारा नहीं। इसका कुछ निहोरा नहीं है, तुम इन रुपयों को अपने पास रक्खो। इनको किसी धरम के काम में लगाओ। भूखों, कंगालों में इनको बाँटो; इसी से मेरे जी को सुख होगा, तुम्हारा जनम सुधरेगा। धरती में इससे बढ़कर कोई दूसरा काम नहीं है।

इतना कहकर देवनन्दन, रमानाथ के साथ, चले गए।

शब्दार्थ

ठौर = जगह। बेला = समय। औसान = होश, हिम्मत। बँधुआ = कैदी। खटका = सन्देह, शक, डर। निहोरा = अहसान।

शोक

[इसके लेखक श्री चतुरसेन शास्त्री हैं। आप हिन्दी के बड़े नामी लेखकों में हैं। यहाँ आपने पुत्र की मृत्यु के कारण अपने सारे परिवार के शोक से भरे हृदय का दिल दहलानेवाला चित्र खींचा है।]

यह मेरा पहला ही बच्चा था। जब यह उत्पन्न हुआ था तब मेरी अवस्था तेइस वर्ष की और मेरी स्त्री की सत्रह वर्ष की थी। मुझे वह दिन याद है। उस दिन छोटी दिवाली थी। प्रातः-काल ज्यों ही उषा की पहली किरण पृथ्वी पर पड़ी त्यों ही बचुआ का अवतरण हुआ। उस रात मैं क्षण को भी सोया नहीं था। नई

बात थी, नया उछाह था, नया सुख था। मैं दौड़ दाई के घर—दौड़ सौर-गृह में—दौड़ बैठक में—फिर रहा था। काम कुछ न था। पर बिना दौड़-धूप किए जी न मानता था। जब दाई ने आकर कहा था कि बख़शीश लाओ, बेटा हुआ, तो मेरे शरीर में खून की गति रुक गई थी, मैं उसे एकटक देखता ही रह गया था। मैंने हारकर उसीसे पूछा था—"बोल, क्या लेगी", और माता ने आकर अपना कंगन उसे दे डाला था।

उस घटना को आज पूरे सात महीने तेरह दिन हुए हैं। आज मैंने उसे धरती में गाड़ दिया था। मेरे साथ मेरे और दो-तीन बंधु थे। सबने जी-जान से सहायता दी थी। एक ने गढ़ा खोदा था—एक ने उसमें से मिट्टी निकाली थी—एक ने मेरे लाल को उसमें रख दिया था—उसके ऊपर सबने जल्दी-जल्दी मिट्टी डाल दी थी। उनका कहना था–ऐसे कामों में भी यदि वे सहायक न हुए, ऐसे मौकों पर ही यदि उन्होंने तत्परता न दिखाई, तो उनकी मित्रता ही क्या? उनका बन्धुत्व फिर किस काम आवेगा?

परसों शाम को जब मैंने उसे देखा था, तब वह मुझे देखकर हँसा था—अपने नन्हें-नन्हें हाथ ऊपर को उठाए थे। पर मैंने उसे गोद में लिया नहीं। मुझे डर था कि कहीं बुखार फिर न चढ़ जाय। पर बुखार चढ़ा और जब उतरा, तब बचुआ भी उतर गया। मैं व्यर्थ ही डरा—गोद में भी न ले सका; कुछ तो सुख मिलता, कुछ तो तसल्ली होती। उसके बाद वह फिर न हँसा। आज वह बिलकुल सफेद हो गया था। आँखें आधी बंद थीं—

साँस नहीं थी—शरीर गर्म था—हाथ-पैर गर्म थे—स्त्री रो रही थी—मित्र कफन लपेट रहे थे—पर मैं दौड़ा गया, डाक्टर को बुला लाया। मैंने दाँत निकालकर, रिरियाकर, उससे कहा—"डाक्टर साहब, फीस चाहे जो ले लो, पर इसे एक बार अच्छी तरह देख दो, क्या यह बेहोश हो गया है? शरीर देखो, कितना गर्म है।" डाक्टर ने करुण-दृष्टि से मेरी ओर देखा, प्रेम से मेरे कंधे पर हाथ धरकर कहा—"मर्द हो! मर्द की तरह विपत्ति में धैर्य धरो, शोक में स्त्रियों की तरह घबराओ मत—व्यर्थ की आशा और मृग-तृष्णा को छोड़ दो। भगवान् की इच्छा पूरी होनी चाहिए, और वह पूरी हुई।"

मेरे हाथ-पाँव टूट गए। दिल बैठ गया, पर मैं खड़ा रहा। मैंने आवाज करारी बनाई रक्खी—आँसू भी नहीं गिरने दिए—तब मन नीचे को धसकने लगा। मित्रों ने कहा, चलो, खड़े क्यों हो? मैंने कहा, चलो। मैंने ही उसे हाथों पर रक्खा था—वह फूल की तरह हल्का था।

आसमान का इतना ऊँचा ज़ीना वह कैसी सरलता से चढ़ गया? याद से दिल की धड़कन बढ़ती है। जिगर में दर्द उठता है। गई! चाँद-सी सूरत गई—वह आँख का नूर गया—वह हृदय की तरावट गई—वह गई—वह होठों की लाली, रंगत, वह मुस्कराहट—वह—वह—वह—वह सब चली गई!! चली गई!!! जैसे फूल से सुगंध उड़ जाती है, जैसे चन्द्रग्रहण पड़ जाता है! जैसे? ठहरो, सोचता हूँ—जैसे? नहीं, कुछ याद नहीं

आता। जैसे !...हाँ...जैसे दीये का तेल जल जाता है—वैसे ही उसकी नन्हीं-सी जान निकल गई थी।

मेरी स्त्री ने कहा—कहाँ रख आए? इतनी सर्दी में? उस गीली मिट्टी में? अक्ल तो नहीं मारी गई। जो बचुआ को सर्दी लग जाय? ये गद्देले और रजाई तो यहाँ पड़ी हैं। जो बचुआ की हड्डियों में ठंढ बैठ जाय तो क्या खाँसी दम लेने देगी? इसी लिए तुमको दिया था? ठहरो, मैं लिए आती हूँ। वह पागल की तरह दौड़ी। मेरे सिर में कई गोलियाँ-सी लग रही थीं। भतीजी ने कहा—"कहाँ है भैया? चाची, ठहर! मैं लाती हूँ—चलो, कहाँ है।" बूढ़ी माँ बोली नहीं। रो रही थी, रो रही थी, रो रही थी, चुप—मौन रो रही थी। चुपचाप हो उसने बेटी को छाती से लगा लिया। मैं स्त्री को कुछ न कह सका। वह मेरे पैरों पर गिर पड़ी थी—मैं मानों आसमान की ओर उड़ रहा था—आँखें निकली पड़ती थीं—दम घुट रहा था—मैंने कमीज का बटन जोर से तोड़ डाला। मैं खम्भे का सहारा लिए खड़ा रहा।

वह एक बार फिर मिला। संध्या-काल था और गंगा चुपचाप बह रही थी। वह चाँदी-सी रेती में फूल जमा-जमाकर कुछ सजा रहा था। मैं कुछ दूर था। मैंने कहा—"आ, मेरे पास आ।" उसने ताली पीटकर कहा—"ना, मेरे पास आ।" मैं गया। वहाँ हवा सुगन्धों से भर रही थी। मैं कुछ ठंढा-सा होने लगा। उसके चेहरे पर कुछ किरणें चमक रही थीं। मैंने कहा—"बचुआ! धूप में ज्यादा मत खेलो"। उसने हँस दिया। सुन्दरता लहरा

उठी । उसने एक फूल दिखाकर कहा—"अच्छा, इस फूल का क्या रंग है ?" मेरा हृदय नाच उठा। अरे बेटा, तू बोलना सीख गया। मैंने लपककर फूल उसके हाथ से लेना चाहा। वह और दूर दौड़ गया। उसने कहा—"ना, इसे छूना नहीं। इस फूल को दुनिया की हवा नहीं लगी है और न इसकी सुगंध इसमें से बाहर उड़ी है। यह देव-पूजा का फूल है--यह विलास की सजावट में काम न आवेगा।"

इतना कहकर बचुआ गंगा की ओर दौड़कर उसी में खो गया। मैं कुछ दौड़ा तो—पर पानी से डर गया। इतने में आँख खुल गई। घुप अंधकार था। हाय, स्वप्न था ! वह भी आया और गया। अब ?

शब्दार्थ

सौर-गृह = सौरी-घर, जिस घर में बच्चा पैदा हो। बखशीश = इनाम। तत्परता = मुस्तैदी। मृगतृष्णा = झूठी आशा । नूर = रोशनी। विलास = सुख-भोग

साइकल की सवारी

['साइकल की सवारी' शीर्षक कहानी हिन्दी के प्रसिद्ध कहानी-लेखक श्रीसुदर्शनजी की लिखी है । आधुनिक युग में साइकल चलाना सीखने का चाव कितना प्रबल होता है तथा इसे सीखनेवालों की शुरू-शुरू में कैसी दुर्दशा होती है, इसका लेखक ने इस कथा में अत्यन्त मनोरंजक चित्र उपस्थित किया है।]

[१]

भगवान् ही जानता है कि जब मैं किसीको साइकल की सवारी करते या हारमोनियम बजाते देखता हूँ, तब मुझे अपने ऊपर कैसी दया आती है! सोचता हूँ, भगवान् ने ये दोनों विद्याएँ भी खूब बनाई हैं। एक से समय बचता है, दूसरी से समय कटता है; मगर तमाशा देखिए, हमारे प्रारब्ध में कलियुग की ये दोनों विद्याए नहीं लिखी गईं। न साइकल चला सकते हैं; न बाजा बजा सकते हैं। पता नहीं, कब से यह धारणा हमारे मन में बैठ गई है कि हम सब कुछ कर सकते हैं; मगर ये दोनों काम नहीं कर सकते।

शायद १९३२ की बात है कि बैठे-बैठे ख़याल आया, चलो, साइकल चलाना सीख लें। और, इसकी शुरूआत यों हुई कि हमारे लड़के ने चुपके-चुपके ही यह विद्या सीख ली, और हमारे सामने से सवार होकर निकलने लगा। अब आपसे क्या कहें कि लज्जा और घृणा के कैसे-कैसे ख़याल हमारे मन में उठे। सोचा, भाई, क्या हमीं ज़माने भर में फिसड्डी रह गए हैं। सारी दुनिया चलाती है; ज़रा-ज़रा-से लड़के चलाते हैं। मूर्ख और गँवार चलाते हैं। हम तो परमात्मा की कृपा से फिर भी पढ़े-लिखे हैं। क्या हमीं नहीं चला सकेंगे? आख़िर इसमें मुश्किल क्या है? कूदकर चढ़ गए और ताबड़-तोड़ पाँव मारने लगे। और जब देखा कि कोई राह में खड़ा है, तब टन-टन करके घंटी बजा दी। न हटा तो क्रोधपूर्ण आँखों से उसकी तरफ़ देखते

हुए निकल गए। बस, यही तो सारा गुर है इस लोहे के घोड़े की सवारी का! बस, महाराज! हमने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो जाय, साइकल चलाना ज़रूर सीखेंगे।

हम चाहते थे, घर में किसीको कानों-कान खबर न हो, और हम साइकल-सवार बन जायँ। और, इसके बाद जब इस विद्या के पंडित हो जायँ, तब एक दिन जहाँगीर के मकबरे को जाने का निश्चय करें। घरवालों को ताँगे में बिठा दें और कहें, तुम चलो; हम दूसरे ताँगे में आते हैं। और, जब वे चले जायँ तब साइकल पर सवार होकर उनको रास्ते में जा मिलें। हमें साइकल पर सवार देखकर उन लोगों की क्या हालत होगी! हैरान हो जायँगे; आँख मल-मलकर देखेंगे कि कहीं कोई और तो नहीं है! परन्तु हम गर्दन टेढ़ी करके दूसरी तरफ़ देखने लग जायँगे, जैसे हमें कुछ माल्रूम ही नहीं है, जैसे यह सवारी हमारे लिए साधारण बात है।

बस, हमने बाज़ार जाकर ज़म्बक के दो डिब्बे ख़रीद लिए कि चोट लगने पर उसका उसी समय इलाज किया जा सके। इसके बाद बाहर जाकर एक खुला मैदान तलाश किया ताकि दूसरे दिन से साइकल-सवारी का काम शुरू किया जा सके।

[२]

अब यह सवाल हमारे सामने था कि अपना उस्ताद किसे बनावें। पहले तो यह सोचा कि बिना उस्ताद के सीखो। हमारे लड़के ने क्या किसी की शागिर्दी की थी? कहता था, मैंने तो ऐसे

ही सीख लिया। एक बार गिरा, दो बार गिरा, तीसरी बार गिरने की नौबत ही नहीं आई; मगर फिर सोचा कि वह लड़का है, हम तो लड़के नहीं हैं। आदमी जो काम सीखना चाहेगा, क़ायदे से सीखे; नहीं तो नुकसान उठाता है। इसीलिए यह तो निश्चय कर लिया कि किसीको उस्ताद बनावें; मगर यह निश्चय नहीं कर सके कि किसे बनावें। इसी उधेड़-बुन में बैठे थे कि तिवारी लक्ष्मीनारायण आ गए और बोले—"क्यों भाई, हो जाय एक बाज़ी शतरंज की! ज़रा आवाज़ दो लड़के को। शतरंज और मुहरे उठा लावे।"

हमने सिर हिलाकर जवाब दिया—"नहीं साहब! आज तो जी नहीं चाहता।"

तिवारी ने अपने घुटे हुए सिर से टोपी उतारकर हाथ में ले ली और सिर पर हाथ फेरकर बोले—"हम तो इतनी दूर से चलकर आए हैं कि एक-दो बाज़ियाँ खेलेंगे, तुमने कह दिया, जी नहीं चाहता!"

"यदि जी न चाहे तो कोई क्या करे?"

यह कहते-कहते हमारा गला भर आया। तिवारीजी का दिल पसीज गया। हमारे पास बैठकर बोले—"अरे भाई, मामला क्या है?"

हमने कहा—"तिवारी भैया, क्या कहें? सोचा था, लाओ, साइकल की सवारी ही सीख लें; मगर अब कोई ऐसा आदमी नहीं दिखाई देता जो हमारी सहायता करे। बताओ, है कोई ऐसा आदमी तुम्हारे ख़याल में?"

"आदमी तो ऐसा है एक; मगर वह मुफ़्त नहीं सिखाएगा। फ़ीस लेगा। दे सकोगे ?"

"कितने दिन में सिखा देगा ?"

"यही दस-बारह दिनों में।"

"और फ़ीस क्या लेगा हमसे ?"

"औरों से पचीस लेता है। तुमसे बीस ले लेगा हमारी ख़ातिर।"

हमने सोचा—दस दिन में सिखावेगा, और बीस रुपए फ़ीस लेगा। दस दिन—बीस रुपए। बीस रुपए—दस दिन। अर्थात् दो रुपए रोज़ाना, अर्थात् साठ रुपए महीना, और वह भी एक-दो घंटे के लिए। ऐसी तीन-चार 'ड्यूटियाँ' मिल जायँ तो ढाई-तीन सौ रुपया महीना हो गया। हमने तिवारीजी से तो इतना ही कहा कि जाकर मामला तय कर आओ; मगर जी में खुश हो रहे थे कि साइकल चलाना आ जाय तो एक ट्रेनिंग स्कूल खोल दें और तीन-चार सौ रुपया मासिक कमाने लगें।

थोड़ी देर में तिवारीजी ने बाहर से आवाज़ दी। हमने जाकर देखा, उस्ताद साहब खड़े हैं। भद्दी-सी शक्ल-सूरत, मोटी गर्दन, गले में काला तागा, मैली धोती, पाँव में पंजाबी जूता जो पहलवान लोग पहनते हैं, छोटी-छोटी आँखें। पहले तो मन में आया, कह दें, हमें यह उस्ताद पसन्द नहीं; पर फिर सोचा, हमें साइकल सीखना है, हमें इनकी शक्ल-सूरत से क्या काम! यह

सोचकर हमने शरीफ़ विद्यार्थियों के समान श्रद्धा से हाथ बाँधकर प्रणाम किया, और चुपचाप खड़े हो गए।

तिवारीजी—"यह तो बीस पर मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से मनाया है; पर पेशगी लेंगे। कहते हैं, पीछे कोई नहीं देता।"

हम—"अरे भाई, हम देंगे। दुनिया लाख बुरी है; मगर फिर भी भले आदमी से ख़ाली तो नहीं है? यह बीस रुपया तो चीज़ ही क्या है? हम अपना धर्म लाखों के लिए भी न गँवाएँगे। बस, एक बार साइकल चलाना सिखा दें, फिर देखें, हम इनकी क्या-क्या सेवा करते हैं।"

मगर उस्ताद साहब नहीं माने, बोले—"फ़ीस पहले लेंगे।"

हम—"और यदि आपने नहीं सिखाया तो......"

उस्ताद—"नहीं सिखाया तो फ़ीस लौटा देंगे।"

हम—"और यदि फ़ीस नहीं लौटाई तो..."

उस्ताद—"अब इस 'तो' का जवाब तो मेरे पास है नहीं; मगर इतना कह सकता हूँ कि बेईमानियाँ मुझे बदनाम कर देंगी।"

इसपर तिवारीजी ने कहा—"अरे साहब! क्या यह तिवारी मर गया है? शहर में रहना मुश्किल कर दूँ, बाज़ार से निकलना बन्द कर दूँ। फ़ीस लेकर भाग जाना कोई हँसी-खेल है?"

जब हमें विश्वास हो गया कि इसमें कोई धोखा नहीं है, तब हमने फ़ीस के रुपए लाकर उस्ताद की भेंट कर दिए और कहा—"उस्ताद, कल सबेरे-सबेरे ही आ जाना। हम तैयार

रहेंगे। हमने इस काम के लिए कपड़े भी बनवा लिए हैं। और, अगर गिर पड़े तो घाव पर लगाने के लिए ज़म्बक भी ख़रीद लिया है। और हाँ, हमारे पड़ोस में जो मिस्त्री रहता है, उससे साइकल भी माँग ली है। आप सवेरे ही चले आवें तो हरि का नाम लेकर शुरू कर दें।"

तिवारीजी और उस्ताद ने हमें हर तरह से तसल्ली दी और चले गए। इतने में याद आया कि एक बात कहना भूल गए। नंगे पाँव भागे और उन्हें बाज़ार में जा लिया। वे हैरान थे। हमने हाँफते हुए कहा—उस्ताद, हम शहर के पास नहीं सीखेंगे, लारेंस-बाग़ में जो मैदान है, वहाँ सीखेंगे। वहाँ एक तो भूमि नरम है, चोट कम लगती है। दूसरे, वहाँ कोई देखता नहीं है।

[३]

अब रात को आराम की नींद कहाँ? बार-बार चौंकते थे और देखते थे कि कहीं सूरज तो नहीं निकल आया। सोते थे तो साइकल के सपने आते थे। एक बार देखा कि हम साइकल से गिरकर ज़ख्मी हो गए हैं, और अस्पताल में अंग्रेज़ हमारा आपरेशन कर रहा है। दूसरी बार देखा कि हम ज़मीन पर खड़े हैं और हमारी साइकल आसमान पर चल रही है। फिर ऐसा मालूम हुआ कि हमारे उस्ताद ने हमें गोद में उठाकर उछाल दिया। दूसरे क्षण में देखा, तब हम साइकल पर सवार हैं, साइकल आप-से-आप हवा में चल रही है। और लोग हमारी तरफ आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे हैं। एकाएक एक

देवता ने आकर हमारे कंधे पर हाथ रख दिया, और हम ज़मीन पर गिर पड़े। तब हमारी आँख खुल गई—देखा, यह सब सपना था और हम चारपाई पर लेटे हैं।

उठकर देखा। दिन निकल आया था। जल्दी से जाकर पुराने कपड़े पहन लिए, ज़म्बक का डिब्बा हाथ में ले लिया और नौकर को भेजकर मिस्त्री साहब से साइकल मँगवा ली। इसी समय उस्ताद साहब भी आ गए और हम भगवान् का नाम लेकर लारेंस-बाग़ की ओर चले। लेकिन अभी घर से निकले ही थे कि बिल्ली रास्ता काट गई और एक लड़के ने छींक दिया। क्या कहें, हमें उस समय कैसा क्रोध आया; पर दाँत पीसकर रह गए। एक बार फिर भगवान् का पावन नाम लिया, और आगे बढ़े। पर बाज़ार में पहुँचकर देखा कि हर आदमी जो हमारी तरफ़ देखता है, मुसकराता है। अब हम हैरान थे कि बात क्या है। सहसा हमने देखा कि हमने जल्दी और घबराहट में पाजामा और अचकन दोनों उलटे पहन लिए हैं, और लोग इसी पर हँस रहे हैं। सिर मुड़ाते ही ओले पड़े।

हमने उस्ताद से माफ़ी माँगी और घर लौट आए। अर्थात् हमारा पहला दिन मुफ़्त में गया!

दूसरे दिन निकले। हमारे घर के पास जो लाला साहब रहते हैं, वे सामने आ गए और मुसकराकर बोले—"कहिए, कहाँ जा रहे हैं?"

ये लाला साहब यों तो बहुत भले आदमी हैं; लेकिन इनकी एक आदत बहुत बुरी है। जिससे मिलते हैं, उसी से पूछते हैं, कहाँ चले। कई बार समझाया कि जब कोई काम पर निकले और उससे 'कहाँ' पूछा जाय तो वह काम कभी नहीं होता और जिसका काम बिगड़ जाता है वह 'कहाँ' पूछनेवाले को गालियाँ देता है; मगर लाला साहब पर ज़रा असर नहीं होता। इस समय हमने उनसे बचने का कितना यत्न किया, किस-किस तरफ़ मुँह मोड़ा; मगर उनकी 'कहाँ' की तोप से कौन बच सकता है। महात्माजी ने सामने आकर गोला दाग ही तो दिया।

हमने जल-भुनकर जवाब दिया—"नरक को जा रहे हैं। आप भी चलेंगे क्या ?"

लाला साहब—"अरे! मैंने तो पूछा था कि आप कहाँ जा रहे हैं।"

हम—"और मैंने निवेदन किया है कि नरक को जा रहे हैं। दो आदमियों की जगह ख़ाली है। अगर आप न पूछते तो आपका क्या बिगड़ जाता–दुनिया में कौन-सी कमी रह जाती ?"

लाला—"भगवान् जानता है, मुझे मालूम न था कि आप किसी काम के लिए जा रहे हैं।"

हम—"मानों हम बेकार घूमा करते हैं।"

लाला—"अजी जनाब! आप भी क्या बात करते हैं। मैं आपकी शान में ऐसी गुस्ताख़ी कर सकता हूँ ? मेरा मतलब यह था·····"

हम—"कि इनसे 'कहाँ' न पूछा तो प्रलय हो जायगा ? ज़रा सोचिए, आपसे कितनी बार हमने निवेदन किया है कि हमें इस 'कहाँ' से डर लगता है; मगर आपको यह ऐसा रोग लगा है कि पीछा ही नहीं छोड़ता। आज ही साइकल चलाना सीखने जा रहे थे। यह देखिए, पुराने कपड़े और ज़म्बक का डिब्बा और ये उस्ताद साहब और यह साइकल; लेकिन इस 'कहाँ' ने आज का दिन भी खराब कर दिया। आपने तो मुसकराकर पूछ लिया—'कहाँ' ? हमारा दो रुपए का नुक़सान हो गया।"

उधर उस्ताद साहब ने साइकल की घंटी बजाकर हमें अपने पास बुलाया और बोले—"मैं एक गिलास लस्सी पी लूँ। आप ज़रा साइकिल को थामिए।"

लाला साहब ने यह अवसर पाया, तब प्राण लेकर भाग निकले, वर्ना हम उनसे उस दिन काग़ज़ लिखा लेते कि अब फिर किसी से 'कहाँ' नहीं पूछेंगे।

[४]

उस्ताद साहब लस्सी पीने लगे, तब हमने साइकल के पुर्ज़ों की ऊपर-नीचे से परीक्षा शुरू कर दी। फिर कुछ जी में आया, तब उसका हैंडिल पकड़कर ज़रा चलाने लगे; मगर दो ही क़दम गए होंगे कि ऐसा मालूम हुआ, जैसे साइकल हमारे सीने पर चढ़ी आती है। अब तो हमें पूरा विश्वास हो गया कि यह सब लालाजी के 'कहाँ' का प्रभाव है, वर्ना बेजान साइकल में यह साहस कहाँ कि हमारे-जैसे पुरुष-सिंह पर धावा बोल दे। उस समय

हमारे सामने यह गम्भीर प्रश्न था कि क्या करना चाहिए। युद्ध-क्षेत्र में डटे रहें या हट जायँ? सोच-विचार के बाद यही निश्चय हुआ कि यह लोहे का घोड़ा और फिर लालाजी का 'कहाँ' इसके साथ! इनके सामने हम क्या चीज़ हैं? बड़े-बड़े वीर योद्धा भी नहीं ठहर सकते। इसलिए हमने साइकल छोड़ दी, और भगोड़ सिपाही बनकर मुड़ गए; पर दूसरे क्षण में साइकल अपने पूरे ज़ोर से हमारे पाँव पर गिर गई और हमारी राम-दुहाई बाज़ार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूँजने लगी। उस्तादजी लस्सी छोड़कर दौड़ आए और दयावान् लोग भी जमा हो गए। सबने मिल-मिलाकर हमारा पाँव साइकल से निकाला। भगवान् के एक भक्त ने ज़म्बक का डिब्बा भी उठाकर हमारे हाथ में दे दिया। दूसरे ने हमारी बग़लों में हाथ डालकर हमें सँभाला और सहानुभूति से पूछा—"चोट तो नहीं आई? ज़रा दो-चार क़दम चलिए; नहीं, लहू जम जायगा।"

हम बेशर्मों के समान खड़े हो गए, और हमने अपने शरीर का सारा भार पाँव पर डालकर देखा कि पाँव ज़ोर खाता है या नहीं। उस्ताद ने साइकल को अच्छी तरह देखकर कहा—"यह तो टूट गई, बनवानी पड़ेगी।"

और यह हम पहले से ही जानते थे। यह लालाजी के 'कहाँ' की तासीर थी। इस तरह दूसरे दिन हम दोनों, हम और हमारी साइकल, अपने घर से थोड़ी दूरी पर ज़ख्मी हो गए। हम

लँगड़ाते हुए घर लौट आए, साइकल को ठोक-पीटकर ठीक करने के लिए मिस्त्री की दूकान पर भेज दिया।

मगर हमारे वीर-हृदय का साहस और धीरज देखिए—अब भी मैदान में डटे रहे। कई बार गिरे, घुटने तुड़वाए, कपड़े फड़वाए; पर क्या मजाल, जो जी टूट जाय। आठ नौ दिन में साइकल चलाना सीख गए; लेकिन अभी तक उसपर चढ़ना नहीं आता था; कोई परोपकारी पुरुष सहारा देकर चढ़ा देता तो फिर लिए चले जाते थे। हमारे आनन्द की कोई सीमा न थी। सोचते थे, मार लिया मैदान हमने। दो-चार दिन में पूरे मास्टर बन जायँगे, इसके बाद प्रोफेसर और इसके बाद प्रिंसिपल—फिर ट्रेनिंग कालेज, और तीन-चार सौ रुपया मासिक! तिवारीजी देखेंगे और ईर्ष्या से जलेंगे।

उस दिन उस्ताद ने हमें साइकल पर चढ़ा दिया और सड़क पर छोड़ दिया कि जाओ, अब तुम सीख गए।

अब हम साइकल चला रहे थे और दिल ही दिल फूले न समाते थे कि आख़िर हमने सिंहगढ़ को जीत ही लिया; मगर हाल यह था कि कोई आदमी दो सौ गज़ के फ़ासले पर भी होता तो हम गला फाड़-फाड़कर चिल्लाना शुरू कर देते—साहब, ज़रा बाईं तरफ़ हट जाइएगा; हम नये सवार हैं, और साइकल हमारे बस में नहीं है। दूर फ़ासले पर कोई गाड़ी दिखाई देती, और हमारे प्राण सूख जाते। कभी-कभी ऐसा ख़याल आता कि यह गाड़ी सिर्फ़ हमें अपनी लपेट में लेने के लिए आ रही है।

उस समय हमारे मन की जो दशा होती, उसे हमारा परमेश्वर ही जानता। जब गाड़ी निकल जाती, तब कहीं जाकर हमारी जान में जान आती।

सहसा सामने से तिवारीजी आते दिखाई दिए। हमने उन्हें भी दूर से ही चेतावनी दे दी कि ओ तिवारी! बाईं तरफ़ हो जाओ, वर्ना साइकल तुम्हारे ऊपर चढ़ा देंगे।

तिवारीजी ने अपनी छोटी-छोटी आँखों से हमारी तरफ़ देखा और मुसकराकर कहा—"ज़रा एक बात तो सुनते जाओ।"

हमने एक बार हैंडिल की तरफ और दूसरी बार तिवारी की तरफ़ देखकर जवाब दिया—"इस समय कैसे बात सुन सकते हैं। देखते नहीं हो, साइकल पर सवार हैं।"

कहने लगे, एक बात सुनते जाओ!

"अरे भाई! साइकल चला रहे हैं, साइकल!"

तिवारी— "तो क्या, जो साइकल चलाते हैं वे किसीकी बात नहीं सुनते? बड़ी ज़रूरी बात है। ज़रा उतर जाओ।"

हमने लड़खड़ाते हुए साइकल को सँभालते हुए जवाब दिया—"उतर आए तो फिर चढ़ाएगा कौन? अभी चलाना सीखा है, चढ़ना नहीं सीखा।"

तिवारीजी चिल्लाते ही रह गए, हम आगे निकल गए। इतने में सामने से एक ताँगा आता नज़र आया। हमने उसे भी दूर से ही डाँट दिया—"बाईं तरफ भाई! अभी नया चलाना सीखा है।"

ताँगा बाईं तरफ़ हो गया। हम अपने रास्ते चले जा रहे थे। एकाएक, पता नहीं, घोड़ा भड़क उठा या ताँगेवाले को शरारत सूझी। जो भी हो, ताँगा हमारे सामने आ गया। हमारे हाथ-पाँव फूल गए। ज़रा-सा हैंडिल घुमा देते तो हम दूसरी तरफ़ निकल जाते; मगर बुरा समय आता है तब बुद्धि पहले भ्रष्ट होती है। उस समय हमें ख़याल ही न आया कि हैंडिल घुमाया भी जा सकता है। उस समय तो ऐसा मालूम हुआ कि विधाता ने हमारी साइकल के लिए वही रास्ता नियत कर दिया है जिसपर ताँगा आ रहा था।

क्षण-भर में हमारे जीवन की सारी घटनाएँ हमारी आँखों में फिर गईं; और दूसरे क्षण में हम और हमारी साइकल, दोनों, ताँगे के नीचे थे। जब हम होश में आए तब अपने घर में थे, और हमारी देह पर कितनी ही पट्टियाँ बँधी थीं।

उस घटना के बाद फिर कभी हमने साइकल को हाथ नहीं लगाया।

शब्दार्थ

धारणा = विश्वास। शुरूआत = आरम्भ। फिसड्डी = पिछड़ा हुआ। ताबड़तोड़ = जल्दी-जल्दी। गुर = रहस्य, मूल मंत्र, भेद। कानों-कान = एक के कानों से दूसरे के कानों तक। उस्ताद = गुरु। शागिर्दी = शिष्यत्व। नौबत = अवसर। उधेड़-बुन = सोच-विचार। बाज़ी = दाँव, खेल। मुहरे = गोटियाँ। ख़याल = ध्यान। ख़ातिर = वास्ते। शरीफ़ =

सभ्य । लाख = बहुत । पावन = पवित्र करनेवाला । लस्सी = दही, पानी और चीनी का घोल । भगोड़ा = भाग जानेवाला । राम-दुहाई = रक्षा के लिए राम-राम चिल्लाना । तासीर = प्रभाव, असर । सिंहगढ़ = महाराष्ट्र का एक प्रसिद्ध क़िला जिसे शिवाजी ने जीता था ।

बलकारक लड्डू

[हास्यरस-भरी इस कहानी के लेखक हैं हिन्दी के विख्यात नाटककार तथा प्रहसन-लेखक श्री पंडित बदरीनाथ भट्ट । आपने इस कथा में अभागचन्द के चरित्र द्वारा यह शिक्षा दी है कि जीवन-निर्वाह के लिए यद्यपि नौकरी करना आवश्यक नहीं तथापि किसी स्वतंत्र उद्योग में भी—चाहे वह कितना भी छोटा हो—अनुभव के बिना सफलता प्राप्त नहीं हो सकती ।]

पन्द्रह-बीस जगह अर्ज़ियाँ भेजीं, ससुराल के उच्च-पदस्थ सम्बन्धियों तक का ज़ोर डलवाया, पर फिर भी काम नहीं बना—हाई स्कूल की परीक्षा में तीन बार फ़ेल होने पर अभागचन्द को कहीं १५) तक की नौकरी नहीं मिली। अन्त में झुँझलाकर अभागचन्द ने सोचा—"भगवान् की बाँहें लम्बी हैं, वह पत्थर के भीतर रहनेवाले कीड़ों को भी भोजन देता है, फिर मैं ही क्यों अपने मन को दुर्बल होने दूँ । दुनिया नौकरी ही करके पेट-पालन नहीं करती ; और भी बहुत-से काम हैं जो किए जा सकते हैं ।"

अब अभागचन्द कुछ स्वतंत्र व्यवसाय करने की चिन्ता में लगे । एक दिन उन्होंने एक हिन्दी का समाचार-पत्र उठाया और

विज्ञापनों पर दृष्टि दौड़ाई,—"जाड़ा आ गया, हमारा पाक सेवन करके बुढ़ापा भगाइए," "हमारे लड्डू सेवन करके वर्ष-भर के लिए बल-संचय कर लीजिए" आदि शीर्षकों पर इनकी तबीयत कुछ जमती-सी दिखाई दी। इन्होंने सोचा—"मैं भी इसी तरह विज्ञापनबाजी क्यों न करूँ? इसी विज्ञापनबाजी की बदौलत आज 'दुःख-संहारक कम्पनीवाला' लखपती हो गया। 'पीयूष प्यालेवाले' ने सड़क पर अपना नाम लिखवा लिया, 'केश-गंजन-वाले' ने मोटर रख ली और 'बुद्धि-भंजनवाला' नया मकान बनवा रहा है।"

विज्ञापनबाजी के लिए पहले कुछ रुपया चाहिए। इसके नाम पर यहाँ शून्य था; यह भी एक कठिनाई थी। अन्त में बहुत सोच-विचार करने के बाद अभागचन्द भी इस परिणाम पर पहुँचे कि जाड़ा सचमुच आ रहा है, इसलिए बलकारक लड्डू बनाकर पहले अपने मुहल्ले के धनी आदमियों के हाथ बेचूँ और बाद को उसी रुपए से विज्ञापनबाजी शुरू कर दूँ। अभागचन्द ने असली घी में आटे को खूब भूना; यहाँ तक कि वह काला हो गया। उसमें जलाँद आने लगी और बिलकुल ही स्वाद बदल गया। तब उसमें थोड़ा-सा भुना खोया डाला और फिर भूना। लड्डू बाँधते समय बादाम, पिस्ते, इलायची आदि की भरमार कर दी। अब इन्होंने टीन के चार डिब्बे लिए, उनमें पाव-पाव भर बोझ रखा। मूल्य ८) सेर लगाया।

मुहल्ले में एक चुंगी के मेम्बर रहते थे—यानी म्यूनिसिपल

ट

कमिश्नर। पहिले अभागचन्द एक डिब्बा लेकर उनके यहाँ गए। सवेरे कोई ९ बजे जब झाड़ूवाला कभी का सड़क साफ़ करके चला गया था, मेम्बर साहब टूटे तख़्त पर बैठे लम्बी दातुन लिए, अपनी बैठक का आगा अंधाधुंध थूक-थूककर बिगाड़ रहे थे। वे इनको देखते ही उठ खड़े हुए और आदर के साथ उसी तख़्त पर बैठा लिया और बोले—"कहिए, कैसे आना हुआ" अभागचन्द बोले—"जी, काम तो कुछ नहीं, वैसे ही इधर घूमता-घामता चला आया। जाड़ा आ गया है, कुछ बलकारक लड्डू मेरी स्त्री ने बनाए हैं। बोली कि मेम्बर साहब के यहाँ जरूर दे आओ।"

मेम्बर—"आपकी बड़ी मेहरबानी है, मैं कहाँ तक......
........."

अभागचन्द—"जी, कहाँ तक की कोई बात नहीं है, सिर्फ ८) सेर के हैं। इस डिब्बे में पाव भर हैं; २) के हुए।"

मेम्बर(गर्दन हिलाकर)—"ज़रूर-ज़रूर, भला दो रुपए से भी कम के क्या होंगे? अबे बुधुआ, जा, ये लड्डू तो भीतर दे आ।"

बुधुआ के भीतर जाने के बाद मेम्बर साहब ने कहा—"पंडितजी, आप तो कभी मिलते-जुलते ही नहीं और न आपने आज तक हमसे कोई सेवा ही ली। कहिए, आपकी मेहतरानी ठीक तौर से काम करती है न। न करती हो तो जमादार से उसके दो-चार थप्पड़ लगवा दूँ।"

अभागचन्द को मेहतरानी से कोई शिकायत न थी।

मेम्बर साहब बोले—"अब की बार जब आपके घर पर टैक्स लगने लगे तो आप उज्रदारी करने से पहले सलाह ले लीजिएगा। मैं आपका टैक्स बहुत कम करा दूँगा।"

अभागचन्द बहुत प्रसन्न हुए और इधर-उधर की दो-चार बातें करके अपने घर लौटे। चलते समय मेम्बर साहब से, संसार का कटु अनुभव होने के कारण, यह कहना भूल गए कि लड्डुओं के दाम की विशेष चिन्ता न कीजिएगा।

उस दिन साँझ को लड्डुओं का दूसरा पौवा लेकर अभागचन्द एक ऑनरेरी मजिस्ट्रेट के यहाँ गए। मजिस्ट्रेट साहब ने भी आवभगत की और लड्डुओं का डिब्बा भीतर भेजते हुए कहा—"मेरे योग्य कोई सेवा हो तो बताइए। कोई आपके घर में ईंट फेंकता हो या किसी एक्केवाले ने आपसे पैसे ज़्यादा ले लिए हों तो बताइए।"

अभागचन्द ने कहा कि ऐसी कोई बात नहीं है। मजिस्ट्रेट साहब सुनी-अनसुनी करके बोले—"हाँ, इस समय इस नगर में आप ही की धाक समझिए, अब भी बड़े दिन पर मैंने कलक्टर साहब को वह डाली दी कि जितने तहसीलदार और डिप्टी कलक्टर थे सब देखकर दंग रह गए।"

अभागचन्द ने कहा—"क्यों नहीं, भला आपकी कोई बराबरी कर सकता है ?"

कुछ और इधर-उधर की बातें होने के बाद अभागचन्द

बोले—"अच्छा, तो अब चलता हूँ। आप दाम की चिन्ता न कीजिएगा, चाहे जब भिजवा दीजिएगा और यदि लाभकारक जँचे तो और भी मँगा लीजिएगा।"

तीसरा पौवा प्रान्तीय कौंसिल के मेम्बर के भाग्य में बदा था। ये मेम्बर महाशय देखने में तो मरियल थे, पर धन और बुद्धि में बड़े ही मोटे थे। लड्डू लेकर बोले—"पंडितजी! आपने, सच पूछिए तो मुझे बचा लिया। इस इतने बड़े शहर में मैं अकेला पतला-दुबला मेम्बर। सबका काम करूँ; पर मेरे स्वास्थ्य की चिन्ता किसी को भी नहीं। एक आप ही ऐसे निकले कि मेरी आवश्यकता अपने-आप समझ गए! इधर तीन महीने मलेरिया ने झँझोड़ा, कभी खाँसी, कभी बुखार—आप जानते हैं कि यही झगड़ा लगा रहता है। कमज़ोरी तो खूब ही। बोलते-बोलते हँफनी होने लगती है।"

अभागचन्द—"इन लड्डुओं से आपको शर्तिया लाभ होगा और जितने चाहें मँगा लीजिएगा। केवल ८) सेर के तो हैं।"

मेम्बर—"अच्छा, पंडितजी! अब आप यह बतलाइए कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? अगर आपको पुलीस ने तंग किया हो तो कहिए, मैं कौंसिल में सवाल कर दूँगा। अगर आपकी नौकरी कहीं से अन्यायपूर्वक छुड़ा दी गई हो तो कहिए, मैं सवाल कर दूँगा।"

अभागचन्द—"मुझे आपकी दया से अभी········।"

मेम्बर (बीच ही में)—"क्योंकि सरकारी मेम्बर मुझसे बहुत

डरते हैं। जब देखो तब वोट के लिए हाथ जोड़े मेरी खुशामद ही किया करते हैं। मैं उनके लिए वोट देता हूँ, तो मेरा उनसे काम क्यों न निकलेगा ?"

अभागचन्द—"अवश्य, अवश्य, आप क्या कोई ऐसे-वैसे हैं। इसीलिए तो मैं आया था। लड्डू जितने चाहिए और मँगा लीजिएगा। आठ ही रुपए सेर हैं; दाम फिर देते रहिएगा।"

मेम्बर साहब ने कहा—"जी, बहुत अच्छा।"

चौथा पौवा एक सम्पादक को दिया गया। सम्पादक भी एक हिन्दी-साप्ताहिक पत्र निकालते थे। जन्म-रोगी थे। एक ओर नोन-तेल-लकड़ी की चिन्ता, दूसरी ओर देश की; तीसरी ओर लड़के की जो बक्स में से टिकट चुराकर बेच आता था। इन चिन्ताओं के मारे सम्पादकजी घुना बाँस हो गए थे। लड्डू पाकर वे बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"मैं अपने स्तम्भों में इनकी बढ़िया समालोचना करूँगा।"

अभागचन्द—"दाम केवल ८) सेर रक्खा है।"

सम्पादक—"दामों का भी उल्लेख कर दूँगा। कुछ-न-कुछ बिक्री अवश्य होगी।"

अभागचन्द—"आवश्यकतानुसार और मँगा लीजिएगा; दाम चाहे जब मिल जायँगे।"

सम्पादक—"ठीक है; अवश्य मँगाऊँगा। मैं गृहस्थी की चिन्ता के मारे आधा सिड़ी हो गया हूँ।"

अभागचंद—"इनसे काफ़ी फ़ायदा पहुँचेगा।"

सम्पादक—"कहिए तो आपका विज्ञापन छाप दूँ।"

अभागचन्द—"अभी तो थोड़े ही लड्डू बनाए हैं। ख़ैर, छाप दीजिए, और बना लिए जाएँगे। बात यह है कि परिश्रम बहुत पड़ता है।"

सम्पादक—"क्यों नहीं?"

कुछ ही दिनों के बाद अभागचन्द को लड्डू और बनाने पड़े। कारण यह कि चारों ही सज्जनों ने सेर-सेर दो-दो सेर के लिए कहला भेजा। यों लगभग ५०)-६०) के माल की खपत हो गई, किन्तु वसूल अभी तक पाई भी नहीं हुई थी। उधर सम्पादकजी ने समालोचना छाप दी थी और प्रति सप्ताह विज्ञापन भी छप रहा था। इससे कुछ बाहरी आर्डर भी आ गए, लेकिन उसके लिए माल नहीं था। दाम मिलें तो माल बने, वर्ना बने कहाँ से? अभागचन्द समझते थे कि सभी गाहक भलेमानस हैं, बड़े आदमी हैं और प्रतिष्ठित हैं। उन्हें अभी यह अनुभव नहीं हुआ था कि शीघ्र दाम चुकानेवाले दूसरे होते हैं। बड़े आदमियों की बातें बड़ी हुआ करती हैं। वे प्रतिदिन चारों महानुभावों के यहाँ किसी-न-किसी बहाने चक्कर काट आया करते थे; कभी-कभी अपनी दीन दशा की ओर भी संकेत कर देते थे, पर ये आदमी मानों इनकी बात का मतलब ही नहीं समझते थे। अन्त में जब बाहरी गाहकों के उलाहने आने लगे तब उन्होंने सोचा कि अब बिना तक़ाज़ा

किए काम न चलेगा। अब तक़ाज़े के विचार से अपने मन को पक्का करके जाते, पर वहाँ जाने पर कच्चे पड़ जाते और इधर-उधर की बातें करके लौट आते। मार्ग में अपनेको बहुत कुछ धिक्कारते और घर आकर खटिया पर सुस्त पड़े रहते।

एक दिन अभागचन्द ने मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली, चाहे जो हो बिना तक़ाज़ा किए नहीं मानूँगा। अपना रुपया है, क्या कोई फाँसी थोड़े ही दे देगा।

दूसरे दिन अभागचन्द तक़ाज़े को चले। क्रोध था, पर दिल भी धड़क रहा था। पहले म्यूनिसिपल कमिश्नर के यहाँ गए। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करने के बाद जब इन्होंने लड्डुओं के रुपए माँगे तब उन्होंने आश्चर्य-चकित होकर कहा—"रुपए ! मैं तो यह समझ रहा था कि आप इसे मुझे नज़र कर रहे हैं। न जाने लोग कुछ-न-कुछ भेंट मुझे दे जाते हैं। आख़िर मैं भी तो उनके काम आता हूँ।"

अभागचन्द ने कहा—"नहीं साहब, मैंने तो आपको मोल दिए थे।" म्यूनिसिपल कमिश्नर ने पहले तो आँखें दिखाईं और फिर कहा—"पन्द्रह दिन बाद बात कीजिएगा।"

ऑनरेरी मजिस्ट्रेट ने उन्हें मारने को रूल उठाया।

कौंसिल के मेम्बर को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि लड्डू उसे लोक-सेवा के लिए बली बनाने को नहीं, बल्कि रुपए वसूल करने के लिए दिए गए थे। बहुत-सी खरी-खोटी

सुनाने के बाद वह बोला—"घबराइए मत, मैं अब कौंसिल में प्रस्ताव करनेवाला हूँ कि लोग ताक़त की दवा के नाम से न जाने क्या बेचकर पब्लिक को बीमार किए डालते हैं। सरकार को चाहिए कि बनावटी वैद्यों की बाक़ायदा रजिस्ट्री करे और इनकी दवाओं की जाँच कराया करे। आपके लड्डुओं ने मेरे स्वास्थ्य को ढेर कर दिया।"

सम्पादकजी ने कहा—"लड्डुओं से सचमुच लाभ हुआ, रही दामों की सो आपके लड्डुओं के दाम १२) हुए; परन्तु मेरे विज्ञापन के आपपर ५४) हो चुके हैं। १२) काटकर बाक़ी दे दीजिए। चीज आपकी सचमुच अच्छी थी।"

अभागचन्द ने कहा—"मैं तो समझता था कि आप विज्ञापन बिना मूल्य छाप रहे हैं।"

सम्पादक—"मैं भी यही समझता था कि लड्डू आप मुझे बिना मूल्य दे रहे हैं। पर घोड़ा घास से यारी करेगा तो खाएगा क्या। अतएव आपके लड्डुओं के और मेरे विज्ञापन के दाम माँगना ठीक ही है। तो बतलाइए कब भेज दीजियेगा बाकी रुपया!"

अभागचन्द अपना-सा मुँह लेकर घर चले आए।

शब्दार्थ

विज्ञापनबाजी = विज्ञापनों के बल पर व्यवसाय चलाना। जलाँद = जलने की गंध। आवभगत = आदर-सत्कार। भाग्य में बदा होना = भाग्य

में लिखा होना। मरियल=दुबले-पतले। हँफनी होने लगती है=हाँफ जाता हूँ। स्तम्भों=कॉलमों। सिड़ी=पागल। रूल=अँगरेजी रूलर। ढेर करना=नष्ट करना।

तीसमारखाँ

[यह एक हास्यरस की कहानी है। इसके लेखक हैं श्री भारतीयजी। इन्होंने इसमें तीसमारखाँ के चरित्र द्वारा ऐसे व्यक्तियों का व्यंग्य-पूर्ण उपहास किया है, जो वस्तुतः बल-पौरुष-शून्य होते हैं; किन्तु फिर भी अनुकूल परिस्थितियों के कारण कभी-कभी बड़े कार्य कर बैठते हैं और उन्हीं के बल पर जनता में अपने बल-पौरुष के गीत गाने लगते हैं।]

एक गाँव में एक जुलाहा रहता था। दुबला-पतला डेढ़ हड्डी का आदमी, कोटर में धँसी हुई आँखें, ठुड्डी पर बकर-दाढ़ी—ऐसी थी उसकी सूरत। बेचारा गरीब था; साथ-ही-साथ आलसी और डरपोक भी था। किया-धरा उससे कुछ न बनता, पर उसे बात-बात पर ताव आ जाता था। इसी कारण गाँव में उसकी कदर न थी। सभी उसकी उपेक्षा करते—उससे नफरत करते। लोगों ने उसे चिढ़ाने के लिए उसका नाम रक्खा था तीसमारखाँ।

तीसमारखाँ निकम्मे थे ही। उनकी बीबी इसी कारण उनपर बहुत बिगड़ती रहती। बात-बात में उन्हें फटकार सुनाती।

आखिर उन्होंने तंग आकर घर छोड़कर परदेश जाने का निश्चय किया। सोचा, परदेश में चलकर अपना भाग्य आजमाएँगे। अगर लग गई तो तीर, नहीं तुक्का तो है ही। कोई नौकरी लग गई तो अच्छा ही है, नहीं तो भीख माँगकर खाएँगे। अपने गाँव में भीख माँगते नहीं बनती। यही सोचकर एक दिन वे घर से चुपके चल पड़े। दिन भर चलते-चलते वे शाम को एक नगर में पहुँचे। ढूँढ़ते-ढाँढ़ते वे शाम को एक सराय में पहुँचे। सराय में बिना पैसे के कौन पूछे! उनके पास पैसे थे ही कहाँ ? पूछते-पाछते वे एक बुढ़िया भठियारिन के घर पहुँचे। टूटे-फूटे घर में अकेली बुढ़िया किसी तरह अपना पेट पालती थी। उन्होंने सोचा कि इसी के यहाँ रात बिताई जाय। उन्होंने पहुँचते ही कुंडी खटखटाई। बुढ़िया लाठी टेकती हुई बाहर निकली। उन्होंने झट बड़े अदब से झुककर कहा—"बुआ, सलाम"। बुढ़िया ने उन्हें पहचाना नहीं, पर उसके मुँह से निकल गया—"खुश रहो, बेटा।"

तीसमारखाँ झट खाट पर जा बैठे और बुढ़िया से हाल-चाल पूछने लगे। उसने अपनी दुःख-कहानी कह सुनाई। वे उसको दिलासा दिलाने लगे। अब बुढ़िया के यहाँ वे टिक गए। बुढ़िया अकेली से दुकेली हो गई। कुछ वह करती, कुछ वे करते। किसी तरह गुजारा होने लगा। वे ईश्वर को धन्यवाद देते कि उन्हें बिना किचकिच के रोटी मिलने लगी। घर पर होते तो रोज बीवी के ताने सुनते रहते। कुछ दिन इस तरह बीते। अब

बुढ़िया मुसाफिरों को ठहराकर कुछ कमाने लगी। दोनों के दिन अच्छी तरह कटने लगे। वे मुसाफिरों की खिदमत करते और बुढ़िया उन्हें अच्छे-अच्छे खाने पकाकर खिलाती। मुसाफिर चलते समय दोनों को इनाम दे जाते।

नगर के पास जंगल था। उसमें जंगली जानवर बहुत रहा करते थे। इधर कुछ दिनों से एक बाघ नगरवालों को दुःख देने लगा था। कभी किसी की बकरी गायब, कभी किसी का लड़का, कभी किसी का चौपाया। चिराग जलने के पहले ही लोग अपने-अपने किवाड़ बन्द कर लेते थे। राजा ने चारों ओर ढिंढोरा पिटवा दिया था कि जो इस शेर को मारेगा उसे खजाने से इनाम मिलेगा। शेर की घात में बहुत-से शिकारी लगे, पर कोई सफल न हुआ। शेर के मारे चारों ओर कुहराम मचा था।

एक दिन बुढ़िया के यहाँ एक सौदागर ठहरा। वह बहुत दूर से अपना माल बेचता हुआ आ रहा था। उसे शेर के बारे में कुछ पता न था। सराय में पहुँचते ही उसने घोड़ी पर से अपना सामान उतारा और उसे चरने के लिए छोड़ दिया। रात अँधेरी थी। इधर काले-काले बादल भी आ धमके। धीरे-धीरे बूँदा-बाँदी होने लगी। मुसाफिर थका-माँदा था, पड़ते ही सो गया। बुढ़िया ने खाना पकाकर उसे जगाया। सौदागर खाते-खाते हाल-चाल पूछने लगा। जब उसे मालूम हुआ कि यहाँ एक शेर ने बड़ा ऊधम मचा रक्खा है तब वह अपनी घोड़ी के लिए चिन्तित हो उठा कि घोड़ी चरते-चरते कहीं दूर

न निकल गई हो। बुढ़िया ने कहा—"चिन्ता करने की क्या बात है। हमारा भतीजा बड़ा बहादुर है। वह रात-बिरात तुम्हारी घोड़ी ढूँढ़ लाएगा।" सौदागर निश्चिन्त होकर सो गया।

सबको खिला-पिलाकर बुढ़िया जब सोने चली तब उसने कहा—"बेटा तीसमारखाँ, सौदागर की घोड़ी यहीं कहीं आसपास चरती होगी। पकड़कर बाँध देना। तुम्हें इनाम दिला दूँगी।" तीसमारखाँ ने कहा—"अच्छा, बुआ"। वह भी सोने चली गई। तीसमारखाँ लगाम लेकर घोड़ी ढूँढ़ने चले। एक तो उन्हें ऐसे ही रतौंधी आती थी, दूसरे बरसात की अँधेरी रात। बेचारे टटोलते हुए घर से बाहर निकले। बीच-बीच में जो बिजली कौंध जाती तो उन्हें कुछ दूर तक रास्ते का अन्दाजा लग जाता।

तीसमारखाँ ने सोचा—"घोड़ी बहुत दूर न गई होगी। बहुत गई होगी तो गाँव के बाहर।" वे टटोलते-टटोलते गाँव के बाहर पहुँचे। कई जगह फिसलते-फिसलाते बचे। उनका कम्बल भीगकर भारी हो रहा था। अन्त में वे पास के एक आम के पेड़ के नीचे खड़े होकर घोड़ी की आहट लेने लगे। इतने में बिजली चमकी। उनको कुछ दूर पर कोई चौपाया दिखाई पड़ा। फिर चारों तरफ अँधेरा छा गया। वे अन्दाज से लाठी टेकते उसी जानवर के पास पहुँचे। टटोला तो गर्दन के बाल हाथ पड़े। चट उन्होंने लगाम चढ़ा दी, और पीठ पर सवार हो गए। मारते-पीटते वे उसे लेकर घर पहुँचे और थान पर घोड़ी को अगाड़ी-पिछाड़ी लगाकर बाँध दिया। फिर वे जाकर सो रहे।

सवेरा हुआ। सौदागर अपनी घोड़ी को दाना खिलाने पहुँचा। देखता है तो उसकी घोड़ी के थान पर एक शेर अगाड़ी-पिछाड़ी में बँधा खड़ा है। सौदागर चिल्लाकर भागा। शोर मच गया। पूछने पर मालूम हुआ कि यह तीसमारखाँ की करामात है। सब उनकी बहादुरी का बखान करने लगे। बूढ़ी भठियारिन तो उन्हें अपना सगा भतीजा कहकर तारीफ़ के पुल बाँधने लगी थी। तीसमारख़ाँ अपनी ज़ंग खाई हुई तलवार लेकर पैंतरे भरते हुए बतला रहे थे कि मैंने यों शेर को धर दबाया, यों उसकी पीठ पर सवार हो गया, ऐसे लाकर बाँधा। किसी को यह पता न लगा कि शेर को आँखों से कुछ दिखाई न पड़ता था।

शेर मार डाला गया। तीसमारख़ाँ की तारीफ़ राजा के कानों तक पहुँची। वे दरबार में तलब किए गए। बड़े आदर से राजा ने उनका स्वागत किया। उन्हें कपड़े और पाँच सौ रुपए मिले। इतना ही नहीं, उनकी बहादुरी से खुश होकर राजा ने उन्हें अपनी सेना का कप्तान बना दिया। वे अब बड़े पद पर पहुँच गए। उनकी बहादुरी की चर्चा चारों ओर फैल गई।

राजा अब तीसमारखाँ के हाथ में अपनी सेना का भार सौंपकर निश्चिन्त हो गए। उन्हें विश्वास हो गया था कि उनके राज्य पर कोई शत्रु चढ़ाई करने की हिम्मत न करेगा; और अगर भूलकर हमला करने की हिम्मत करेगा भी तो मुँह की खाकर रहेगा।

कुछ दिनों तक अमन-आमान रहा। पर इधर थोड़े दिनों से सरहद पर का एक राजा कुछ उपद्रव करने लगा था। तीसमारख़ाँ को दरबार से हुक्म मिला कि तुम शत्रु पर चढ़ाई कर दो। बेचारे की परीक्षा के दिन आ पहुँचे। वर्षों से गहरी रक़म मार रहे थे, मज़े उड़ा रहे थे। अब अगर भाग निकलते तो ठीक नहीं था। उन्होंने ईश्वर का ध्यान किया। वे चढ़ाई की तैयारी करने लगे। राजा ने हुक्म दे दिया कि फ़ौज के लिए जो चीज़ चाहिए, लो। फ़ौज सजने लगी। हरबे-हथियार तैयार होने लगे। अब यात्रा की तैयारी होने लगी। वे कभी घोड़े पर सवार न हुए थे। उनके लिए राजा ने ख़ास अपना कलारास घोड़ा दिया था। वे बड़े असमंजस में पड़े। ऐसे घोड़े की पीठ पर बड़े-बड़े सवार ही ठहर सकते थे। वे छोटी-सी घोड़ी पर भी बैठने के आदी न थे। पर उन्होंने तरकीब सोच ली थी।

मैदान में पलटन क़तार-की-क़तार में आ पहुँची। घोड़े कस-कसाकर खड़े थे। बस, फ़ौज के कूच के नगाड़े बजाने की देर थी। राजा अपनी फ़ौज को बिदा करने के लिए तैयार थे। तीसमारखँा फ़ौजी जिरह-बख्तर में लैस, ढाल-तलवार बाँधे खड़े थे। उनका घोड़ा सामने खड़ा खूँद रहा था। उनकी चढ़ने की हिम्मत न होती थी। उन्होंने राजा साहब से विनती की—"हुज़ूर, मुझे इस घोड़े पर बैठाकर रस्सी से कसवा दीजिए, जिससे मैं दोनों हाथों से तलवार चला सकूँ।"

राजा को उनकी बात बहुत पसन्द आई। वे घोड़े पर बैठा दिए गए। अच्छी तरह कसकर घोड़े से जकड़ दिए गए। उनके हाथों में दो तलवारें थमा दी गईं। अब फ़ौज के कूच का नगाड़ा बजा। उनको लेकर घोड़ा फ़ौज के आगे-आगे भाग चला। घुड़-सवारों की पलटन उनके पीछे-पीछे चली।

दुश्मन की फ़ौज बहुत दूर न थी। घंटे ही दो घंटे में लड़ाई का मैदान आ पहुँचा। वे आगे-आगे घोड़े पर उड़े जा रहे थे। बेचारे ख़ुदा-ख़ुदा चिल्लाते जाते और मनाते जाते—या ख़ुदा! ऐसी जगह गिरूँ जहाँ मिट्टी गीली हो जिससे चोट न लगे।

पीछे की पलटन का शोर सुनकर उनका घोड़ा भड़का और बेतहाशा भागा। रास्ते में एक जंगल पार करना था। संयोग से उनके सामने एक डाल आ पड़ी। उन्होंने उसे पकड़ लिया। घोड़ा अपने जोश में भागा जा रहा था। उसके झटके से पेड़ की बड़ी डाल टूटकर उनके कंधे पर लटक रही। घोड़ा उसे भी लिए हुए उड़ा चला जा रहा था।

दुश्मन के सिपाही उनकी अद्भुत बहादुरी का बखान सुन चुके थे। उनकी हिम्मत पहले ही से पस्त हो रही थी। पर करते क्या? अपने राजा की आज्ञा से उन्हें लड़ाई के मैदान में आना पड़ा था। पर उनकी हिम्मत तीसमारखाँ का सामना करने की न होती थी। इतने में उन सबने देखा कि एक सवार कन्धे पर समूची डाल रक्खे दोनों हाथों में चमकती हुई तलवारें

लिए, बेतहाशा घोड़ा दौड़ाए, उनकी तरफ बढ़ा आ रहा है। उसके पीछे हजारों सवार ललकारते चले आ रहे हैं। अब तो दुश्मन के सिपाहियों के होश उड़ गए। तीसमारखाँ का नाम उन्होंने सुना ही था। पर उनका यह विकराल रूप देखकर सिपाहियों के पैर उखड़ गए। वे भाग खड़े हुए। तीसमारखाँ ने बिना हाथ उठाए ही दुश्मन को भगा दिया। उनकी बहादुरी का सिक्का और भी बैठ गया।

लौटकर जब वे अपने राजा के यहाँ पहुँचे तब उन्हें बहुत इनाम मिला। पर अब उन्होंने राजा से छुट्टी माँगी। राजा ने उनकी बहादुरी और राज-सेवा के उपलक्ष्य में उन्हें बहुत-सा धन देकर बिदा किया।

जब वे अपने गाँव लौटे, लोग उनके भाग्य की सराहना करने लगे। अब तो उनकी बीबी भी उनका आदर करती थी।

शब्दार्थ

कोटर = गड्ढा। ताव = क्रोध। भठियारिन = सराय चलानेवाली। अदब = शिष्टता। दिलासा = ढाढ़स। ख़िदमत = सेवा। कुहराम = हाय-हाय, रोना-धोना, खलबली। ऊधम = उत्पात। रतौंधी = नेत्र का एक रोग जिसमें रात को दिखाई नहीं पड़ता। अमन-आमान = सुख-चैन। हरबे-हथियार = अस्त्र-शस्त्र। आदी = अभ्यासी अभ्यस्त। जिरह-बख़्तर = कवच। लैस = सुसज्जित, तैयार। बेतहाशा = बहुत ज़ोर से। हिम्मत पस्त होना = हिम्मत टूटना। विकराल = डरावना।

आख़िर विलायत में

[यह गद्यांश महात्मा गान्धी की आत्मकथा से लिया गया है। इसमें विलायत की यात्रा में जहाज पर, और वहाँ पहुँचने के बाद, उन्हें जो-जो अनुभव हुए उनका एक जीवित चित्र उपस्थित किया गया है।]

विलायत की तैयारी कर चुकने के बाद श्रीयुत मजमूदारजी के साथ मैंने ४ सितम्बर १८८८ ई० को बम्बई बन्दर छोड़ा। जहाज़ में समुद्र-यात्रा के कारण मुझे कुछ तकलीफ़ न हुई। पर ज्यों-ज्यों दिन बीतते, मैं असमंजस में पड़ता जाता। अंग्रेज़ी में बातचीत करने की आदत न थी। मजमूदार को छोड़कर बाक़ी सब यात्री अंग्रेज थे। उनके सामने बोलते न बनता था। वे मुझसे बोलने की चेष्टा करते तो उनकी बातें मेरी समझ में न आतीं और यदि समझ भी लेता तो यह औसान नहीं रहता कि जवाब क्या दूँ। हर वाक्य बोलने के पहले मन में जमाना पड़ता था। छुरी-काँटे से खाना जानता न था और यह पूछने की भी जुर्रत न होती कि इसमें बिना मांस की चीजें क्या-क्या हैं। इस कारण मैं भोजन की मेज़ पर तो कभी गया ही नहीं। केबिन (कमरे) में ही खा लेता। अपने साथ मिठाइयाँ वगैरह ले रक्खी थीं—प्रधानतः उन्हीं पर गुज़र करता रहा। मजमूदार को तो किसी प्रकार का संकोच न था। वे सबके साथ हिल-मिल गए। डेक पर भी जहाँ जी चाहा घूमते-फिरते। मैं सारा दिन केबिन में घुसा

रहता। डेक पर जब लोगों की भीड़ कम देखता, तब कहीं जाकर वहाँ बैठ जाता। मजमूदार मुझे समझाते कि सबके साथ मिला-जुला करो और कहते—"वकील ज़बानदाराज़ होना चाहिए।" वकील की हैसियत से अपना अनुभव भी सुनाते। कहते—"अंग्रेज़ी हमारी मातृभाषा नहीं, बोलने में भूलें होना स्वाभाविक है। फिर भी बोलने का रब्त करना ही चाहिए," आदि। परन्तु मेरे लिए अपना दब्बूपन छोड़ना भारी पड़ता था।

मुझपर तरस खाकर एक भले अंग्रेज़ ने मुझसे बातचीत करना शुरू कर दिया; वे मुझसे बड़े थे। मैं क्या खाता हूँ? कहाँ जा रहा हूँ? क्यों किसीके साथ बातचीत नहीं करता? इत्यादि सवाल पूछते। मुझे खाने के लिए मेज़ पर जाने की प्रेरणा करते। मांस न खाने के मेरे आग्रह की बात सुनकर एक रोज हँसे और मुझपर दया प्रदर्शित करते हुए बोले—"यहाँ तो (पोर्ट सईद पहुँचने तक) सब ठीक है; परन्तु बिस्के की खाड़ी में पहुँचने पर तुम्हें अपने विचार बदलने पड़ेंगे। इंगलैंड में तो इतना जाड़ा पड़ता है कि मांस के बिना काम चल ही नहीं सकता।"

मैंने कहा—"मैंने तो सुना है कि वहाँ लोग बिना मांसाहार किए रह सकते हैं।"

उन्होंने कहा—"यह झूठ है। मेरे जान-पहचानवालों में कोई आदमी ऐसा नहीं है, जो मांस न खाता हो। मैं शराब पीने के

लिए तुमसे नहीं कहता; पर मैं समझता हूँ, मांस तो तुम्हें अवश्य खाना चाहिए।"

मैंने कहा—"आपकी सलाह के लिए मैं आपका आभारी हूँ। पर मैंने अपनी माताजी को वचन दिया है कि मैं मांस न खाऊँगा। यदि उसके बग़ैर रह सकना सम्भव न हुआ तो मैं फिर हिन्दुस्तान को लौट जाऊँगा, पर मांस हरगिज़ न खाऊँगा।"

किसी तरह सुख-दुःख उठा हमारी यात्रा पूरी हुई और साउदेम्पटन बन्दर पर हमारे जहाज़ ने लंगर डाला। मुझे याद पड़ता है, उस दिन शनिवार था। मैं जहाज़ पर काले कपड़े पहनता था। मित्रों ने मेरे लिए सफ़ेद फ़लालैन के कोट-पतलून भी बनवा दिए थे। विलायत में उतरने के पहले मैंने उन्हें धारण किया। यह समझकर कि सफ़ेद कपड़े ज्यादा अच्छे मालूम होते हैं, इस लिबास में मैं जहाज़ से उतरा। सितम्बर के अंतिम दिन थे। ऐसे लिबास में मैंने सिर्फ़ अपने ही को वहाँ पाया। मेरे सन्दूक और उनकी तालियाँ ले गए थे ग्रिंडले कम्पनी के गुमाश्ते लोग। जैसा और लोग करते हैं, वैसा ही मुझे भी करना चाहिए, यह समझकर मैंने अपनी तालियाँ भी उन्हें दे दी थीं।

मेरे पास चार परिचय-पत्र थे—एक डाक्टर प्राणजीवन मेहता के नाम, दूसरा दलपतराम शुक्ल के नाम, तीसरा प्रिंस रणजीतसिंहजी के नाम और चौथा दादाभाई नौरोजी के नाम। मैंने साउदेम्पटन से मेहता को तार दे दिया था। जहाज़ में

किसीने सलाह दी थी कि विक्टोरिया होटल में ठहरना ठीक होगा, इसलिए मजमूदार के साथ मैं वहाँ गया। मैं तो अपने सफेद कपड़ों की शर्म में बुरी तरह झेंप रहा था। फिर होटल में जाकर ख़बर लगी कि कल रविवार होने के कारण सोमवार तक 'ग्रिंडले' के यहाँ से सामान न आ सकेगा। इससे मैं बड़ी दुबिधा में पड़ गया।

सात-आठ बजे डाक्टर मेहता आए। उन्होंने मित्रभाव से मेरा खूब मज़ाक उड़ाया। मैंने अनजान में उनकी रेशमी रोएँवाली टापी देखने के लिए उठाई और उसपर उलटी तरफ हाथ फेरने लगा। टोपी के रो एँ उठ खड़े हुए। यह डाक्टर मेहता ने देखा। मुझे तुरन्त रोक दिया, पर कसूर तो हो चुका था। उनकी रोक का फल इतना ही हो पाया कि मैं समझ गया कि आगे फिर ऐसी हरकत न होनी चाहिए।

यहाँ से मैंने यूरोपियन रस्म-रवाज का पहला पाठ पढ़ना शुरू किया। डाक्टर मेहता हँसते जाते और बहुतेरी बातें समझाते जाते—"किसी की चीज़ को यहाँ छूना न चाहिए। हिन्दुस्तान में परिचय होते ही लोग जो बातें सहज ही में पूछ लेते हैं, वे यहाँ न पूछनी चाहिए। बातें जोर-जोर से न करनी चाहिए। हिन्दुस्तान में साहबों के साथ बातें करते हुए 'सर' कहने का जो रवाज है वह यहाँ अनावश्यक है। 'सर' तो नौकर अपने मालिक को अथवा अपने अफ़सर को कहता है।" फिर उन्होंने यह भी कहा कि होटल में तो खर्च ज़्यादा पड़ेगा

इसलिए किसी कुटुम्ब के साथ रहना ठीक होगा। इस सम्बन्ध में विचार सोमवार तक मुल्तवी रहा। और भी कितनी ही बातें बताकर डाक्टर मेहता बिदा हुए।

होटल में तो हम दोनों को ऐसा मालूम हुआ मानों कहीं से आ घुसे हों। खर्च भी बहुत पड़ता था। माल्टा से एक सिंधी यात्री सवार हुए थे। मजमूदार की उनके साथ अच्छी जान-पहचान हो गई थी। वह सिंधी यात्री लन्दन के जानकार थे। उन्होंने हमारे लिए दो कमरे ले लेने का ज़िम्मा अपने ऊपर लिया। हम दोनों रज़ामन्द हुए और सोमवार को ज्यों ही सामान मिला, हम होटल का बिल चुकाकर उन कमरों में दाख़िल हुए। मुझे याद है कि होटल का खर्च लगभग तीन पौंड मेरे हिस्से में आया था। मैं तो भौचक रह गया। तीन पौंड देकर भी भूखा ही रहा। वहाँ की कोई चीज़ अच्छी न लगी। एक चीज़ उठाई, वह न भाई; तब दूसरी ली। पर दाम तो दोनों ही का देना पड़ा। मैं अभी तक प्रायः बम्बई से लाए खाद्य पदार्थों पर ही गुज़ारा करता रहा।

उस कमरे में तो मैं बड़ा दुखी हुआ। देश खूब याद आने लगा। माता का प्रेम साक्षात् सामने दिखाई पड़ता। रात होते ही रुलाई शुरू होती। घर की तरह-तरह की बातें याद आतीं। उस तूफ़ान में नींद भला क्यों आने लगी? फिर उस दुःख की बात किसी से कह भी तो नहीं सकता था। नेकह से लाभ भी क्या था? मैं खुद न जानता था कि मुझे

किस उपाय से साहस मिलेगा। लोग निराले, रहन-सहन निराली और मकान भी निराले, घरों में रहने का तौर-तरीक़ा भी निराला। फिर यह भी अच्छी तरह नहीं मालूम कि किस बात के बोल देने से अथवा क्या करने से यहाँ के शिष्टाचार का अथवा नियम का भंग होता है। इसके अलावा खान-पान का परहेज़ अलग; और जिन चीजों को मैं खा सकता था, वे रूखी-सूखी मालूम होती थीं। इस कारण मेरी हालत साँप-छछूँदर की सी हो गई। विलायत में कुछ अच्छा नहीं लगता था और देश को भी वापस नहीं लौट सकता था। फिर, विलायत आ जाने के बाद तो तीन साल पूरा करके ही लौटने का निश्चय था।

शब्दार्थ

बन्दर = पोर्ट, जहाजों के टिकने का अड्डा। असमंजस = आगा-पीछा, कठिनाई। औसान = सुधि-बुधि, चेतना, होश। जुर्रत = साहस। ज़बानदाराज़ = बढ़बढ़कर बोलनेवाला। रब्त = अभ्यास। लिबास = पहरावा। गुमाश्ता = एजेंट। परिचय-पत्र = जान-पहचान कराने के लिए लिखी हुई चिट्ठी। झेंपना = लज्जित होना।

दक्षिणी ध्रुव की खोज

[इस लेख में श्री विश्वम्भरनाथ महरोत्र ने दक्षिणी ध्रुव की खोज के लिए पहले पहल वहाँ जानेवाले स्काट आदि पाँच उत्साही अँगरेजों

की यात्रा का रोचक वर्णन किया है। उन्होंने एक नये प्रदेश का पता लगाने के लिए अपने प्राण तक की आहुति दे दी, इन सभी बातों का उल्लेख लेखक ने बड़े ही अच्छे ढंग से किया है।]

बहुत-से लोग जानते होंगे कि दक्षिणी ध्रुव कहाँ है। नक्शे या ग्लोब में नीचे की तरफ देखिए, दक्षिणी ध्रुव है। यहाँ हमेशा जाड़ा ही रहता है। यहाँ पर न जमीन है न पानी; समुद्र की लहरें बर्फ़ के पहाड़ के सदृश हैं। चारों तरफ़ बर्फ़ ही बर्फ़ दिखलाई देती है। यहाँ अँधेरा भी बहुत रहता है। कई महीने तक रात ही रहती है। इस स्थान पर आँधी भी बहुत चलती है और ऐसे समय में बर्फ़ के टुकड़े इधर-उधर उड़ते हैं। जब आँधी आती है तब हवा में इतनी ठंढक होती है कि किसी जीवधारी का वहाँ जीवित रहना कठिन है।

ऐसे स्थान में कई वर्ष पहले इंगलैंड से पाँच आदमी गए थे। पाठक आश्चर्य से पूछेंगे कि ऐसे देश में इन लोगों के जाने की आवश्यकता ही क्या थी? जहाँ जीव-जन्तु न रहते हों, जहाँ बर्फ़ की जमीन हो और बर्फ़ की ही आँधी चलती हो, वहाँ वे लोग किस लालच से गए होंगे? किन्तु उन्हें यह याद रखना चाहिए कि यह इच्छा मनुष्य में स्वाभाविक होती है कि जितनी बातें उसके जानने योग्य हों उनको वह जाने। नया ज्ञान प्राप्त करने की रुचि मनुष्यमात्र में पाई जाती है। दूसरी बात यह भी जानने योग्य है कि संसार के बहुत-से आदमियों में यह इच्छा भी

स्वाभाविक होती है कि वे अपनेको खतरे में डालें। हम लोगों में बहुत-से लोग कठिनाइयों का सामना करने से भागते हैं।

परन्तु संसार में ऐसे लोग भी अनेक हैं जिनका साहस, ज्यों-ज्यों उनकी कठिनाइयाँ बढ़ती जाती हैं, त्यों-त्यों बढ़ता जाता है। तीसरी बात यह भी जानने योग्य है कि इस दुनिया में जितने स्थान हैं उन सबकी प्राकृतिक शोभा में कुछ न कुछ विशेषता है। जिस देश में सदा सर्दी रहती
प्राकृतिक नियम ही विचित्र हैं। वैज्ञानिकों का यह कर्तव्य है कि उन नियमों को खोज निकालें। यदि आप में नये स्थानों को देखने की अभिरुचि, नये ज्ञान की प्राप्ति के लिए उत्साह, कठिनाइयों का सामना करने में प्रेम और साहस के काम करने का हौसला उत्पन्न होगा तो निश्चय ही आपमें से अनेक आविष्कारक, अनुसन्धानकर्त्ता, विद्वान् और यशस्वी बनेंगे।

इंगलैंड के पाँच वीर उस अज्ञात देश को एक जहाज़ पर रवाना हुए; जहाज़ का नाम रक्खा 'टेरा-नोवा,' जिसका अर्थ है 'नवीन भूमि'। इन पाँचों के नाम थे—कैप्टन स्काट, जो इनके नेता थे, कैप्टन ओट्स, लेफ्टिनेंट वावर्स, डाक्टर विलसन और हवांस। इनके अतिरिक्त जहाज़ में बहुत-से नौकर-चाकर थे। जितनी दूर तक हो सका, ये लोग जहाज़ ले गए। जब ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ जहाज़ बर्फ़ में फँस गया तब इन्होंने उसको छोड़ दिया और छोटी-छोटी गाड़ियों में बर्फ़ के रास्ते से ध्रुव की ओर चले। वहाँ पहुँचकर इन्होंने अपनी पहुँच

का चिह्न बना दिया। जितनी बातें जानने की थीं उनको जान भी लिया। तब वहाँ से ये इस आशा से लौटे कि जहाज़ पर पहुँचकर इंगलिस्तान लौटेंगे, परन्तु अब इनकी कठिनाइयाँ आरम्भ हुईं। सर्दी इनके अनुमान से बहुत अधिक हो गई। चारों तरफ़ बर्फ़ की वर्षा आरंभ हो गई। हवांस, जो सबसे अधिक बलवान् था, बीमार पड़ा और बर्फ़िस्तानी ऊँची-नीची जगह पर ठोकर खाकर सिर के बल गिरा; तुरन्त ही उसके प्राण निकल गए।

अब कप्तान ओट्स, जो फ़ौजी अफ़सर था, बीमार पड़ा। उसके हाथों और पैरों की अंगुलियाँ गलकर गिर गईं, जिसके कारण उसको भयानक पीड़ा हुई। उससे चला नहीं जाता था, परन्तु फिर भी वह बर्फ़ पर अपने पैर घसीटता हुआ चलता ही रहा। एक दिन भी उसने आह नहीं की। वह सदा प्रसन्न-चित्त और आशायुक्त रहता था। जब उसकी पीड़ा बढ़ने लगी तब उसको निश्चय हो गया—"अब मैं इस संसार में नहीं रहूँगा।" परन्तु दूसरे दिन वह जीवित था। उठते ही खेमे से उसने झाँक कर देखा तो बाहर भयंकर आँधी दिखाई दी। हवा ठंढी और तीक्ष्ण थी, यह देखकर तुरन्त उसने अपने तीनों मित्रों से कहा कि मैं बाहर जाता हूँ और संभव है कि मुझे वहाँ देर तक रहना पड़ जाय। वह जानता था कि मैं मरने जाता हूँ। उसके मित्र भी जानते थे कि अब वह नहीं लौटेगा, परन्तु वह यह नहीं चाहता था कि मेरी मृत्यु कप्तान

स्काट और दो मित्रों के सामने हो; क्योंकि वह समझता था कि इससे उन तीनों को अत्यन्त दुःख होगा।

ओट्स की वीरता संसार के वैज्ञानिक इतिहास में स्मरणीय रहेगी। उसके चले जाने पर तीनों मित्रों को निश्चय हो गया कि अब उनका भी काल आ गया है। स्काट ने अपना समय अपनी यात्रा का संक्षिप्त विवरण लिखने में व्यतीत किया। उनके भोजन का सब सामान नष्ट हो गया। वे समझते थे कि हमारे पास इतना भोजन है जो इंगलैंड पहुँचने तक काम आवेगा। पर आँधी ने कुछ नहीं छोड़ा। वे धीरे-धीरे आगे चलते रहे। नौ दिनों तक आँधी चलती रही। इस अवस्था का वर्णन स्काट के शब्दों में ही करना उचित होगा—

"हम लोग निर्बल हो गए हैं। लिखना कठिन है; परन्तु मुझे ऐसी यात्रा पर आने का कुछ भी दुःख नहीं है, क्योंकि इस यात्रा ने हमें निश्चय करा दिया है कि अँगरेज लोग कठिनाइयाँ सह सकते हैं। हमने अपनेको खतरे में डाला, हम जानते थे कि हम अपनेको खतरे में डाल रहे हैं। यहाँ आकर कुछ घटनाएँ ऐसी हुईं जिनसे हमारी कठिनाइयाँ बढ़ गईं, परन्तु इसकी हमको कोई शिकायत नहीं। हम परमेश्वर की इच्छा के सामने सिर झुकाते हैं, और अब भी इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि अन्त समय तक धैर्य और साहस नहीं छोड़ेंगे। यदि इस यात्रा में हम अपना जीवन अपने देश के लिए प्रसन्नता-पूर्वक देने को तैयार हैं, तो क्या हमारे देशबन्धु इस

बात का प्रबन्ध न करेंगे कि जिनका जीवन हमारे ऊपर निर्भर है उनकी रक्षा हो ? यदि हम लोग जीवित रहते तो हम अपने साथियों की सहनशीलता, वीरता और साहस की कहानी सुनाते, जो प्रत्येक अँगरेज बच्चे को हृदय को हिला देती, परन्तु अब हमारा यह अधूरा लेख और हमारे मरे हुए शरीर यह कहानी सुनावेंगे और हमारा धनाढ्य और महान् देश उन लोगों की रक्षा अवश्य करेगा जो हमारे ऊपर निर्भर हैं। "

ये शब्द २५ मार्च सन् १९१२ ई० को लिखे गए थे। इसके अनन्तर बाक़ी तीनों वीर भी मृत्यु का ग्रास बने। इंगलैंड में यह शोक-समाचार पहुँचा। देश भर में शोक छा गया। बादशाह से लेकर साधारण जन तक ने इन वीरों के स्मारक के निमित्त और इनके कुटुम्ब के पोषणार्थ थोड़ा-बहुत धन दिया।

धन्य है वह देश जहाँ ऐसे वीर उत्पन्न हों, जो ज्ञान की वृद्धि के लिए अपने शरीर का बलिदान करें।

शब्दार्थ

रुचि = इच्छा। आविष्कारक = नई-नई बातों की खोज करके दुनिया के सामने रखनेवाला। अनुसन्धान = खोज। स्मरणीय = याद रखने योग्य। पोषणार्थ = पालने-पोसने के लिए। बलिदान = क़ुर्बान।

———

हैदराबाद से बम्बई तक

[इस लेख में डाक्टर खुर्शीद हुसैन ने हवाई सैर के अनुभव लिखे हैं। उनके लिखने का ढंग बड़ा सुहावना है। पढ़ते समय मालूम होता है कि हम भी हवाई जहाज पर हैं। सीधी-सादी भाषा में वर्णन बड़ा स्वाभाविक है।]

जब मैं हवाई जहाज में बैठा, मुझे ऐसा मालूम हुआ कि किसी छोटे-से कमरे में आकर बैठ गया हूँ। मेरे बैठ जाने के बाद ड्राइवर सवार हुआ। थोड़ी देर में, एक ज़ोर की आवाज़ के साथ, जहाज़ में हलचल पैदा हुई। यह आवाज़ इतने ज़ोरों की थी कि मुझे ऐसा मालूम हुआ, कान के पर्दे फट जायँगे। इसलिए मैंने कानों में अँगुलियाँ डाल लीं।

जहाज़, हवा को चीरता हुआ, बड़ी तेज़ी के साथ उड़ने लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि दुनिया आहिस्ता-आहिस्ता बहुत ही छोटी होती जा रही है—ज़मीन की लम्बाई-चौड़ाई में धीरे-धीरे कमी हो रही है—बल्कि यों कहना चाहिए कि ज़मीन सिमट रही है। अजीब समाँ बँध रहा था।

साढ़े छ बजे दक्खिन-हैदराबाद (निज़ाम) से रवाना हुआ। सवा नौ बजे बम्बई पहुँच गया। पूरे पौने तीन घंटे में सैकड़ों मील दूर का सफर खतम। जैसे ज़मीन सिमट गई—हैदराबाद और बम्बई एक दूसरे के नज़दीक हो गए।

मुझे यह सुनकर ताज्जुब हो रहा था कि सुबह की चाय मकान पर पी और नाश्ता बम्बई में किया। मुझे एकाएक वह पुराना ज़माना याद आ गया, जब हममें से किसीको अगर हैदराबाद से बम्बई जाने की ज़रूरत पड़ती थी तब वह दो महीने पहले से सफ़र की तैयारियाँ करता था, और पूरे चार महीनों में हैदराबाद से बम्बई पहुँचता था।

ग़रज़, जब मैं ... र मशीन में हरकत हुई,
तो मुझे मालूम ... ज़ कब ज़मीन से ऊँचा
हो गया। जह... ाया, दिलचस्पी भी
उतनी ही ज़्या... तकलीफ़ या डर
कहाँ ? आरा... किसी तरह का
हिल-डोल भी ... रहा था कि मैं
बहुत ऊँचे प... फ़ की ज़मीन मेरी
तरफ़ सिमटी ... -छोटे होकर सिर्फ़
धब्बे रह गए थे... याँ छोटे नाले बन
गईं। मालूम होते... टे रुपहले साँप ज़मीन
पर रेंग रहे हैं। बड़े... छोटे हरे रंग के नज़र
आते थे – मानों पाव-पाव या आध-आध इंच के धब्बे हैं, जैसे नक्शे पर बने हुए होते हैं। बड़े-बड़े शहर भी ईंट की कतारों की तरह मालूम होते थे। शायद सैकड़ों मील लम्बी-चौड़ी दीवार अगर बनी हुई होती तो वह भी एक इंच की दीवार दिखाई देती। मकानों की तो क्या गिनती, शहर और क़स्बे सिर्फ़ चन्द गज़ के

हैदराबाद से बम्बई तक

[इस लेख में डाक्टर खुर्शीद हुसैन ने हवाई सैर के अनुभव लिखे हैं। उनके लिखने का ढंग बड़ा सुहावना है। पढ़ते समय मालूम होता है कि हम भी हवाई [illegible] -सादी भाषा में वर्णन बड़ा स्वाभाविक है।]

जब मैं हव [illegible] मालूम हुआ कि किसी छोटे-से [illegible] मेरे बैठ जाने के बाद ड्राइवर स [illegible] की आवाज़ के साथ, जहाज़ [illegible] इतने ज़ोरों की थी कि मुझे ऐ [illegible] जायँगे। इसलिए मैंने कानों में [illegible]

जहाज़, ह [illegible] तेज़ी के साथ उड़ने लगा। मुझे ऐसा मा [illegible] आहिस्ता-आहिस्ता बहुत ही छोटी होती जा रही [illegible] लम्बाई-चौड़ाई में धीरे-धीरे कमी हो रही है—बल्कि यों कहना चाहिए कि ज़मीन सिमट रही है। अजीब समाँ बँध रहा था।

साढ़े छ बजे दक्खिन-हैदराबाद (निज़ाम) से रवाना हुआ। सवा नौ बजे बम्बई पहुँच गया। पूरे पौने तीन घंटे में सैकड़ों मील दूर का सफर खतम। जैसे ज़मीन सिमट गई—हैदराबाद और बम्बई एक दूसरे के नज़दीक हो गए।

मुझे यह सुनकर ताज्जुब हो रहा था कि सुबह की चाय मक़ान पर पी और नाश्ता बम्बई में किया। मुझे एकाएक वह पुराना ज़माना याद आ गया, जब हममें से किसीको अगर हैदराबाद से बम्बई जाने की ज़रूरत पड़ती थी तब वह दो महीने पहले से सफ़र की तैयारियाँ करता था, और पूरे चार महीनों में हैदराबाद से बम्बई पहुँचता था।

ग़रज़, जब मैं जहाज़ पर बैठा और मशीन में हरकत हुई, तो मुझे मालूम ही नहीं हुआ कि हमारा जहाज़ कब ज़मीन से ऊँचा हो गया। जहाज़ जितना ही ऊँचा होता गया, दिलचस्पी भी उतनी ही ज्यादा होती गई। किसी तरह की तकलीफ़ या डर कहाँ ? आराम के साथ हवा में उड़ रहा था। किसी तरह का हिल-डोल भी नहीं हो रहा था। ऐसा मालूम हो रहा था कि मैं बहुत ऊँचे पहाड़ पर आ गया हूँ और चारों तरफ़ की ज़मीन मेरी तरफ़ सिमटी हुई चली आ रही है। दरख़्त छोटे-छोटे होकर सिर्फ़ धब्बे रह गए थे। तालाब छोटे गढ़े और नदियाँ छोटे नाले बन गईं। मालूम होता था कि चाँदी के छोटे-छोटे रुपहले साँप ज़मीन पर रेंग रहे हैं। बड़े-बड़े खेत बिलकुल छोटे हरे रंग के नज़र आते थे — मानों पाव-पाव या आध-आध इंच के धब्बे हैं, जैसे नक्शे पर बने हुए होते हैं। बड़े-बड़े शहर भी ईंट की कतारों की तरह मालूम होते थे। शायद सैकड़ों मील लम्बी-चौड़ी दीवार अगर बनी हुई होती तो वह भी एक इंच की दीवार दिखाई देती। मकानों की तो क्या गिनती, शहर और क़स्बे सिर्फ़ चन्द गज़ के

दिखाई देते थे और चन्द सेकेंड में नज़र से ग़ायब हो जाते थे। पहाड़ और जंगल तो ऐसे दिखाई देते थे जैसे किसी सफ़ेद काग़ज़ पर स्कूल के किसी बच्चे ने खेल में ड्राइंग की हो।

मेरे जहाज़ का ड्राइवर खुश-मिज़ाज आदमी था। मैंने उससे कहा कि इस वक्त़ नज़ारा बहुत अच्छा मालूम हो रहा है। यह सुनते ही उसने जहाज़ और भी ऊँचा कर दिया। चाल भी बढ़ा दी। इसी चाल में जहाज़ को कलाबाज़ियाँ भी खिलाईं। कभी एकदम तेज़ी के साथ जहाज़ को नीचे कर देता, कभी फिर उसी तेज़ी से ऊँचा उठा लेता। एक और जहाज़ भी साथ था। इस तरह दो जहाज़ों का साथ उड़ना बहुत भला मालूम हो रहा था। कुछ अजीब बहार थी।

हैदराबाद से रवाना होने के बीस मिनट बाद 'बिदर' शहर आ गया। शहर का गुम्बद और क़िला दोनों एक ही नज़र में दिखाई दिए और चन्द सेकेंड में ग़ायब भी हो गए। फिर 'उसमानाबाद' आ गया। इस तरह गाँव के गाँव नज़र से ग़ायब होने लगे। मुझको यह भी न मालूम हुआ कि हम कब रियासत हैदराबाद की सरहद से बाहर हो गए।

जहाज़ एक सौ बीस मील की चाल से उड़ता रहा। कभी पाँच सौ फ़ीट की ऊँचाई पर, कभी सात सौ और कभी एक हज़ार। पूरे ढाई घंटे बाद जब जहाज़ पश्चिमी घाट पर पहुँचा तब कुछ अजीब सीन आँखों के सामने आ गया, जो देखने क़ाबिल था। 'घाट' पहाड़ के ऊपर हम हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर उड़ रहे थे।

उस वक्त बादल पहाड़ों में टकरा रहे थे और उनके ऊपर से सूरज की रोशनी कुछ अजीब ही रंग पैदा कर रही थी। यह मालूम हो रहा था कि ज़मीन-आसमान के बीच एक बड़ा रंगीन समुन्दर मौजें मार रहा है। ऊपर हम हैं और नीचे बादल है, जैसे हम बादल के ऊपर दुनिया-जहान की सैर कर रहे हैं, या हम उजले तूफ़ानी बादलों के समुन्दर में जहाज़ चला रहे हैं।

थोड़ी ही देर में हम बम्बई पहुँच गए। वहाँ के ऊँचे मकानों की छतों पर उड़ने लगे। आलीशान इमारतें गुड़ियों के छोटे-छोटे घरौंदों की तरह आँखों से गुज़र रही थीं। मकान बहुत साफ़ दिखाई दे रहे थे; क्योंकि जहाज़ बहुत नीचे उतरकर आहिस्ता-आहिस्ता उड़ रहा था।

बम्बई में हवाई जहाज़ के उतरने की जगह का नाम 'जुहू' है। उसके नज़दीक पहुँचकर जहाज़ ने सारे शहर का दूसरी बार चक्कर लगाया। चन्द मिनट के बाद जहाज़ ज़मीन पर उतर आया। मुझे यह भी न मालूम हुआ कि ज़मीन पर जहाज़ कब आ गिरा।

अब दरवाज़ा गिरा। एक आदमी मेरी तरफ़ मुड़कर कहने लगा—"क्या आपका सामान गाड़ी में रख दिया जाय? गाड़ी हाज़िर है।"

मैंने बहुत ताज्जुब के साथ पूछा—"क्या हम ज़मीन पर उतर आए हैं?"

वह मुसकुराया और बोला—"जी हाँ। अब आप हवाई दुनिया से ज़मीन पर आ गए हैं। यह बम्बई का जुहू स्टेशन है।"

शब्दार्थ

समाँ बँधना = मनोहर दृश्य उपस्थित होना। सफर = यात्रा। ताज्जुब = आश्चर्य। ग़रज़ = मतलब। हरकत = गति, चाल। रुपहला = चाँदी के रंग का। चन्द = कुछ। नज़ारा = दृश्य। बहार = शोभा। गुम्बद = गोल मंडप। सरहद = सिवाना, सीमा। सीन = दृश्य। मौज = लहर। आलीशान = विशाल, भड़कीला। घरौंदा = बच्चों के खेल में बना हुआ छोटा घर।

हवाई जहाज़ की यात्रा

[इस संकलित लेख में हवाई जहाज़ द्वारा कलकत्ता से ईरान के प्रमुख नगर बुशायर (अबूशहर) तक की यात्रा का मनोरंजक एवं ज्ञानवर्द्धक वर्णन है। लेखक के व्यक्तिगत अनुभव पर आश्रित होने के कारण इस वर्णन का महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है।]

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ से एक दिन सुना कि ईरान-सरकार ने उन्हें फिर से अपने देश में आने का निमंत्रण दिया है। कवि की उम्र सत्तर से ऊपर हो चुकी थी। तन्दुरुस्ती भी अच्छी नहीं रहती, उसपर से इतना लंबा दूर-दराज़ का ख़ुश्की सफ़र। इसलिए कोई भी उन्हें नहीं जाने देना चाहता था; मगर यह

मालूम हुआ कि हवाई-जहाज़ से यह खुश्की सफ़र आसानी से तय हो सकता है। वक्त भी कम लगेगा, और कलकत्ता से बुशायर (अबूशहर) तक डच हवाई जहाज़ों की बाक़ायदा हफ़्तेवार सर्विस भी है। कवि इन्हीं हवाई जहाज़ों के द्वारा यात्रा करना चाहते थे। उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि मैं भी उनके साथ चलूँ। फ़ारस की यात्रा, हवाई सफ़र और कवि का साथ। नेकी और पूछ-पूछ। मैं फ़ौरन् तैयार हो गया।

ऐरोप्लेन की आवाज़, उसके झकझोरे और हिलना-डोलना मामूली आदमियों को ही सहना मुश्किल होता है, इसलिए कवि की वृद्धावस्था और तन्दुरुस्ती देखकर लोग तरह-तरह की बातें करने लगे; मगर कवि ने किसीकी बात पर ध्यान न देकर स्वयं हवाई-जहाज़ की यात्रा का अनुभव करना निश्चित किया, और एक दिन एक डच ऐरोप्लेन पर डच कौंसल और उनकी स्त्री के साथ उड़कर कलकत्ता के ऊपर चक्कर लगाए। इस अनुभव के बाद कवीन्द्र ने ऐरोप्लेन से ही जाना निश्चित किया।

चूँकि कवीन्द्र सपरिवार जाना चाहते थे और जहाज़ में इतनी जगह न थी, इसलिए यह तय हुआ कि मैं पहले प्लेन से ४ अप्रैल को चलूँ, बाक़ी लोग ११ को रवाना हों। अतएव मैं ४ अप्रैल को सबेरे ३ बजे रात से उठकर तैयार हुआ। इतना सुबह उठने का अभ्यास नहीं है, इसलिए उस वक्त भला कुछ खाना-पीना कैसे होता? फिर भी मार-पीटकर दो-तीन संदेश और एक प्याली काफ़ी गले के नीचे उतारकर जल्दी-जल्दी मोटर

पर बैठ, दमदम ऐरोड्रोम की तरफ़ भागा। दमदम कलकत्ता से कुछ मील पर कलकत्ता का एक उपान्त है। यहीं पर हवाई-जहाज़ों का अड्डा बनाया गया है। ऐरोप्लेन सबेरे पाँच बजे छूटनेवाला था। अभी तक पौ नहीं फटी थी, उसपर कुहरा अलग छाया हुआ था, इसलिए ऐरोड्रोम का रास्ता मिलना ही मुश्किल हो गया। खैर, इधर-उधर थोड़ा-बहुत चक्कर काटकर ऐरोड्रोम पहुँचे। उस वक्त ऐरोड्रोम में लोग अस्तबल का दरवाज़ा खोलकर ऐरोप्लेन को बाहर निकालने की कोशिश कर रहे थे। जहाज़ का रंग नीला था, जिसपर सुनहरे अक्षरों में नाम लिखा था।

पाँच बजे खलासियों ने जहाज को बाहर निकालकर खड़ा किया। कोई दस मिनट बाद डच कम्पनी के एजेंट 'ड्रेसिंग गौन' पहने, चट्टी सटकाते हुए, आ मौजूद हुए। एक कर्मचारी ने मेरा असबाब तौला। पन्द्रह किलोग्राम (लगभग १५ सेर) असबाब बिना महसूल लिया गया; बाक़ी पर कलकत्ता से बुशायर तक का ६) फ़ी सेर किराया लगा।

इतने में जहाज़ के कर्मचारी भी आ गए। इंजन और कल-पुर्जों की जाँच हो चुकने पर, सबसे बिदा लेकर मैं, जहाज़ पर सवार हुआ। दरवाज़ा ज़ोर से बन्द कर दिया गया। मैं पहले-पहल हवाई जहाज़ पर चढ़ा था, इसलिए कौतूहल का कोई ठिकाना ही न था। यात्रा शुरू हुई। पहले जहाज़ गड़-गड़ करके मैदान के दूसरी ओर ज़मीन पर चला, क्योंकि हवाई-

जहाज़ हवा की विपरीत दिशा को छोड़कर उड़ नहीं सकता। इसलिए हरएक ऐरोड्रोम की चोटी पर हवा का रुख बताने का यंत्र लगा रहता है। मैदान में घूमकर जहाज हवा के रुख के विपरीत खड़ा हुआ। तीनों इंजन भयंकर शब्द के साथ गरज उठे। हवाईजहाज़ पहले ज़मीन पर ज़ोर से दौड़ा, फिर ऐसे झोंके लेने लगा मानों घोड़ा सरपट दौड़ रहा है। उस समय वह ज़मीन छोड़ रहा था—रह-रहकर ज़मीन छोड़ देता था, फिर ज़मीन पर टिक जाता था। ज़रा-सी देर में सब झोंके बन्द हो गए। नीचे देखा, तो ज़मीन से बीस-तीस फुट ऊपर थे। ज़रा-सा और ऊपर उठने पर सारा दमदम एक अजीब नज़ारा दिखाने लगा। चारों तरफ़ खेत, पेड़ों की कतारें, घर-झोपड़े—सभी चीज़ें बौना-सी दीख पड़ने लगीं। एकाएक ऐसा जान पड़ा, मानों खेत-ज़मीन सभी करवट के बल हो गए हों। बहुत नीचे ऐरोड्रोम में अनेक रूमाल और चादरें हिल रही थीं, और मेरा छोटा भाई दोनों हाथों से इशारा कर रहा था। देखते-ही-देखते बहुत ऊपर उठ गए और गंगा की ओर बढ़े। कुहरे का झीना आवरण ओढ़े कलकत्ता शहर सोता पड़ा था।

जमीन से हवाई-जहाज की ऊँचाई का अंदाज़ लगाना मुश्किल है। पूछने की भी सूरत न थी, क्योंकि इंजन ऐसे ज़ोरों से गरज रहे थे कि उनकी आवाज़ से बचने के लिए सभी कानों में रुई ठूँसे हुए थे। फिर भी पहाड़ पर चढ़ने के अंदाज़ से कोई दो हज़ार फुट की ऊँचाई से हम लोगों ने गंगा पार की। दूर पर

बाली का पुल दीख पड़ा। गंगा की धार नागिन की तरह बल खाती हुई कुहरे में ग़ायब हो गई। गंगा-पार होकर थोड़ा आगे बढ़ने पर खेत और ज़मीनें शतरंज के खानों-सी दीख पड़ती थीं।

तीनों इंजनों की भयंकर आवाज़ के साथ जहाज़ थर-थर काँपता था, बीच-बीच में हवा के झोंकों में पड़कर वह हिंडोले की तरह ऊपर-नीचे जाता-आता था। बहुत नीचे छोटे-छोटे तालाब, खेत, मैदान—जिनमें बीच-बीच में चौपायों का झुंड चींटियों की पंक्ति की तरह धूल उड़ाता जाता था—नज़र आता था। जहाँ पर पेड़-पत्ते ज़्यादा थे, वहाँ गाढ़ा हरा रंग दिखलाई पड़ता था।

कुछ देर बाद एक महाशय काग़ज़ पर यह प्रश्न लिखे हुए मेरे सामने आ मौजूद हुए कि मेरा वज़न कितना है। पूछने पर मालूम हुआ कि वे हिसाब लगा रहे हैं कि जहाज़ पर कुल कितना बोझ है। मैंने लिखकर पूछा कि कितनी ऊँचाई पर जा रहे हैं। उन्होंने पाइलेट के यहाँ जाकर पता लगाकर बताया—११०० मीटर, यानी लगभग ३५०० फुट पर। इतना ऊपर उठने पर भी गर्मी में विशेष कमी नहीं मालूम होती थी। देखते-देखते नीचे के कछार का रंग हरे और धूसर वर्ण से बदलकर लाल हो गया। पेड़-पत्ते भी कम हो गए, बीच-बीच में ताल-तलैयाँ ऐसी मालूम होती थीं, जैसे ताड़ के पेड़ों के फ्रेम में जड़ा हुआ आइना चमक रहा हो। उनके पास खपरैल के झोपड़ों के गाँव बच्चों

के खेल के घरों-से दिखाई पड़ते थे। ज़मीन भी कहीं जोती-बोई थी, और कहीं ऊसर। जान पड़ा कि वीरभूमि का ज़िला पार कर रहे हैं। थोड़ा आगे बढ़ने पर छोटी-बड़ी पहाड़ियाँ दीख पड़ने लगीं। उसके बाद बड़े-बड़े पहाड़ नज़र आए। दूर पर बालू से भरी हुई नदी दिखाई देती थी। उसके बाद बारी-बारी से पहाड़, पहाड़ियाँ, वन, जंगल और कहीं-कहीं पर कम आबाद हिस्से मिलते रहे।

नौ-साढ़े-नौ बजे पहाड़ों से घिरी हुई एक बड़ी नदी दिखाई दी। इतने ऊपर से देखने पर भी इस जगह को न पहचानना ना-मुमकिन था, क्योंकि सोन नदी और रोहतास पहाड़ को एक बार देखने के बाद भूलना असंभव है। नदी के समीप हमारा जहाज किसी कारण से नीचे उतर आया। अब तो गाय-भैंसों के बाड़े, नदी-तट के बालू पर चरवाहे लड़कों की दौड़ादौड़, जल में लोगों का तैरना और औरतों का कपड़े धोना—सभी चीजें खूब साफ दिखाई पड़ने लगीं। सोन के बालू-भरे विशाल वक्ष पर स्वच्छ जल की धारा बह रही थी।

नदी पार करने के बाद जहाज़ धीरे-धीरे ऊपर उठने लगा। इधर इस तरह से पहाड़-पर-पहाड़ आने लगे, मानों उनका अन्त ही नहीं। प्रत्येक पहाड़ के बाद थोड़ी-सी समतल भूमि और उसके बाद फिर उससे भी ऊँचा पहाड़। मालूम होता था कि दैत्यों का ज़ीना हो। ख़ैर, जहाज़ ने ऊपर उड़कर इन पहाड़ों को पार किया। एक बार फिर मैदान और समतल भूमि दिखाई

दी। जगह-जगह खपरैलों के मकानों के ग्राम और दो-एक छोटे-छोटे शहर तथा एक-आध छोटी नदियाँ भी मिलीं। ग्यारह बजे यमुना की नीली धारा दीख पड़ी। उसे पार करते समय दाहिनी ओर यमुना का पुल और इलाहाबाद का क़िला नज़र आया। कुछ क्षणों में इलाहाबाद पीछे छूट गया। इतने में इंजन की आवाज़ एकदम कम हो गई। नीचे देखा, तो जान पड़ा, एक ऐरोड्रोम धीरे-धीरे आगे बढ़ा चला आ रहा है। धीरे-धीरे जहाज़ ज़मीन की ओर उतरने लगा। ऐरोप्लेन का नीचे उतरना बड़े आराम का है। न हिलता-डोलता है, न धक्के या झोंके लगते हैं। इंजन बंद होने से आवाज़ भी नहीं होती।

इलाहाबाद में बड़ी गरमी थी। डा० ललित मोहन वसु खाने-पीने का सामान लिए हुए आ मौजूद हुए। खाना समाप्त करके मैं सवार हो गया, और जहाज़ फिर चला।

नदी-नद, खेत, ऊजड़ मैदान, शहर और गाँवों को नीचे छोड़कर जहाज़ हू-हू करता हुआ, तूफ़ान की तरह, दौड़ने लगा। ऊपर हवा का रुख़ विरुद्ध दिशा में था। हवा का रुख़ विपरीत होने से जहाज़ बहुत नीचे उतर आया था। अब लोगों के अस्पष्ट चेहरे भी दिखाई देने लगे। वे लोग भी हमारे जहाज़ की तरफ़ ताकते थे, और एक दूसरे को ऊपर इशारा करके जहाज़ दिखाते थे।

धीरे-धीरे नीचे की मिट्टी का रूप-रंग बदलने लगा। पेड़-पौधे नदारद होने लगे। छोटे-छोटे पहाड़ भी मिलने लगे।

मालूम हुआ कि राजपूताने की सीमा में प्रवेश कर रहे हैं। अब आदमियों की पगड़ियों और स्त्रियों के रंगों का बाहुल्य दिखाई देने लगा। ऊपर से खेतों के बीच-बीच में उज्ज्वल, लाल, नारंगी रंग के घाँघरे पहने और गहरे नीले रंग के दुपट्टे ओढ़े स्त्रियों का दल बहुत सुंदर दीख पड़ता था। दो-चार ऊँट भी दिखाई दिए। प्रायः पाँच बजे शाम को दूर से ही जोधपुर का क़िला और उसके नीचे बसा हुआ शहर दिखाई दिया। पाँच बजे जोधपुर जा उतरे। रात में ऐरोप्लेन नहीं चलता, इसलिए रात जोधपुर-होटल में काटी।

सबेरे साढ़े चार बजे अर्द्धनिद्रित अवस्था में ही ऐरोड्रोम पहुँचा। चारों ओर सन्नाटे और अंधकार का राज्य था। मालूम हुआ कि हमारे प्लेन के बीच का इंजन बहुत ठीक नहीं था। आठ बजे इंजन ठीक हुआ। इंजन भीम वेग से गर्जन करने लगे, और हमारा पुष्पक विमान आकाश में उड़ने लगा।

जोधपुर छूटने पर रेगिस्तान अपने असली रूप में दीखने लगा। चारों ओर सफेद बालू-ही-बालू था। कहीं-कहीं पर एक-आध दीवारों से घिरे हुए अहाते और दो-चार घर दिखाई पड़ जाते थे। यह सब देखते-देखते, निद्रा आने लगी और मैं सो गया। आँख खुलने पर देखा कि नीचे की ज़मीन आश्चर्यजनक समतल और सफ़ेद थी। कहीं पर ज़रा भी ऊँचा-नीचा नज़र न आता था। पेड़-पत्ते और आदमी-आदमजाद का कोई निशान नहीं दिखाई देता था। अब काफी सर्दी मालूम पड़ने लगी,

मगर उस समय उसका कारण समझ में न आया। इसके बाद सुना कि हम लोग १०,५०० फुट की ऊँचाई पर जा रहे हैं, क्योंकि नीचे रेगिस्तान में बालू की आँधी का डर है। बारह बजते-बजते हम कराँची जा पहुँचे।

साढ़े बारह बजे कराँची छोड़कर ऐरोप्लेन सीधा समुद्र के ऊपर उड़ने लगा। कुछ ही देर बाद पृथ्वी के ओर-छोर अदृश्य हो गए। जबतक तट के पास थे, तबतक मछुओं की दो-एक नावें दीख पड़ जाती थीं, मगर कुछ मिनटों में वे भी ग़ायब हो गईं। चारों तरफ़ बस अथाह पानी-ही-पानी था। जिन उड़ाकों ने अटलांटिक को पार किया था, उनके हृदय में कैसे भाव उठते होंगे, इसका कुछ-कुछ अनुभव होने लगा। पानी और आकाश, आकाश और पानी। चारों तरफ़ निर्जन निस्तब्धता फैली थी। केवल ऐरोप्लेन के कुछ प्राणी इंजन के गर्जन के साथ सागर पार कर रहे थे। इस प्रकार प्रायः डेढ़ घंटे चलने के बाद दाहिनी तरफ़ ज़मीन का किनारा दिखाई पड़ा। कुछ ही क्षणों में वह टेढ़ा-मेढ़ा होकर आगे आ गया, मगर उसपर पेड़-पत्ते या बस्ती का कोई चिह्न न था। अरब-सागर की लहरों से धोया हुआ, सीधा बालुकामय तट था, जिसपर समुद्रफेन का हाशिया चढ़ा था।

ऐरोप्लेन जब ऊपर उठता था, तब समुद्र का जल तालाब की भाँति निश्चल और काँच-सा साफ़ दिखाई देता था, और जब हवा का थपेड़ा खाकर नीचे उतरता था, तब जल के

वक्षस्थल पर लहरों का नृत्य और फेन की माला दीखने लगती थी।

घंटे-पर-घंटे बीत रहे थे। लगातार आठ घंटे से ऐरोप्लेन चल रहा था। इतने में सहकारी पाइलेट साहब ने पेट्रोल-गेज नापने के यंत्र की ओर ताकना शुरू किया। यह व्यापार देखकर मेरा हृदय सिहर उठा। यदि पेट्रोल खतम हो जाय तो ? आठ घंटे उड़ने के बाद जस्क ऐरोड्रोम जा पहुँचे।

पहले ही सुन रक्खा था कि इस देश में चुंगी और पासपोर्ट आदि के सम्बन्ध में बड़ी कड़ाई और देख-रेख होती है, इसलिए इन झंझटों से बचने के लिए मैं बम्बई के ईरानी राजदूत की चिट्ठी साथ लाया था, जिसमें ईरानी सरकार के निमंत्रण का हवाला था। थका-माँदा मैं उतरा ही था कि चुंगीवालों का दल माल-असबाब देखने के लिए आ धमका। मैंने वह चिट्ठी और पासपोर्ट उनके आगे धर दिया। चिट्ठी ने जादू का काम किया। प्रधान कर्मचारी ने कहा—"आप सीधे विश्राम-घर में मय अपने सामान के चले जाइए। आपके सामान की जाँच-पड़ताल की ज़रूरत नहीं।" ऐरोप्लेनवाले भी यह देखकर भौचक रह गए। उन्होंने कभी कल्पना में भी यह नहीं सोचा था कि मैं चुंगीवालों से ऐसी आसानी से छुटकारा पा जाऊँगा।

सुबह जब ऐरोप्लेन रवाना हुआ तब खूब कुहरा छाया हुआ था। हवा भी प्रतिकूल थी, इसीलिए समुद्र के ऊपर बहुत नीचाई पर ही जा रहे थे। थाड़ी देर बाद आँख

खुलने पर देखा कि किनारे के पास जा पहुँचे हैं और सामने मेघों से ढका हुआ पहाड़ है। कुहरे और अंधकार से सभी चीजें अस्पष्ट दिखाई देती थीं। ऐरोप्लेन एकाएक सीधा ऊपर उठने लगा। जितना ही ऊपर उठते जाते थे, उतनी ही छोटे-बड़े पहाड़ों की नुकीली चोटियों की पंक्तियों पर पंक्तियाँ नज़र आती थीं। मालूम पड़ता था, मानों कोई हिंस्र जन्तु ऐरोप्लेन को निगलने के लिए मुँह बाए बढ़ा चला आता हो। कुहरा और हवा सभी विरोधी थे। इसके अलावा प्लेन को पहाड़ से टकराने से बचाने के लिए दाएँ-बाएँ घुमाना पड़ता था। पहाड़ों की ओर देखने में भय मालूम होता था। डर लगता था कि अब टकराए, अब टकराए !

सहसा इंजन की आवाज़ धीमी पड़ गई। प्लेन का अगला भाग भी नीचे की ओर झुक गया। बहुत नीचे समुद्र का विशाल वक्ष नज़र आने लगा। यह जानकर कि पहाड़ लाँघने की पारी समाप्त हो गई, मैंने एक दीर्घनिश्वास लिया। कोई सवा दस बजे हम लोग बुशायर जा पहुँचे। मुझे यहीं तक आना था। यहाँ ऐरोप्लेन से सम्बन्ध छूटता था, इसलिए सब प्लेनवालों को अनेक धन्यवाद देकर और हाथ मिलाकर उनसे बिदा ली।

शब्दार्थ

दूर-दराज = बहुत दूर। सफर = यात्रा। झकझोरा = झटका। उपान्त = 'सबर्ब' उपपुर। पौ फटना = सबेरा होना। अस्तबल =

विमान-घर। खलासी=जहाज़ का कुली। पहले-पहल=पहली बार। बौना=नाटा। सूरत=उपाय। कछार=नदीतट के पास की तर भूमि। नदारद=लुप्त। भीम=भयानक। आदमजाद=मनुष्य-जाति। मछुआ=मल्लाह। निस्तब्धता=सन्नाटा। हाशिया=गोट।

लन्दन नगर का वर्णन

[पं० लज्जाशंकर झा के इस लेख में अंग्रेजी साम्राज्य की राजधानी तथा संसार के सबसे बड़े नगर 'लन्दन' का संक्षिप्त विवरण है। इसमें विश्व-व्यापार के प्रमुख केन्द्र इस नगर के सम्बन्ध में जानने योग्य प्रायः सभी बातों का समावेश हो गया है।]

लन्दन शहर अंग्रेजी साम्राज्य की राजधानी है। इसके समान बड़ा नगर इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। इसकी मनुष्य-संख्या सत्तर लाख के ऊपर है। केवल अमेरिका का न्यूयार्क नगर इसकी बराबरी करने का दावा कर सकता है। इस समय तो, क्या मनुष्य-संख्या में, क्या धन और व्यापार में, क्या सभ्यता-सूचक अनेक संस्थाओं में, अंग्रेजी साम्राज्य की राजधानी अर्थात् लन्दन एक अद्वितीय नगर हो रहा है।

एक अमेरिका-निवासी ने इस विषय में लिखा है कि मैंने पृथ्वी पर के प्रायः सभी बड़े-बड़े नगर देखे हैं, परन्तु लन्दन शहर में विचित्रता यह है कि वहाँ दिन-रात बिना रुके भयंकर,

परन्तु गम्भीर नाद जारी रहता है। सड़कों पर गाड़ियों, घोड़ों, बग्घियों, मोटरों, ट्रामों आदि की, मेले के समान, लगातार चौबीसों घंटे आमदरफ्त रहती है। सड़क के इस पार से उस पार जाना अपने प्राणों को संकट में डालना है; जानेवाला जरा चूका कि उसके ऊपर से कुछ-न-कुछ निकल जायगा। परन्तु सड़कों पर इतनी भीड़ होने पर भी ऐसा बहुत कम होता है कि गाड़ियाँ लड़ जायँ अथवा मनुष्य कुचल जायँ। हर एक प्रकार का वाहन अपने नियत मार्ग से बिना औरों को अड़चन दिए चला जाता है।

इसका क्या कारण है? यही कि उस शहर में सब कोई नियमों का पालन करते हैं। प्रत्येक सवारी और मनुष्य अपने बाईं ओर दबा चला जाता है—मनुष्य पगडंडियों पर और वाहन बीच सड़क पर; इस कारण आमने-सामने से आकर कोई टकराते नहीं। सड़कों के प्रत्येक संगम पर नीली वर्दी पहने एक पुलिसवाला खड़ा रहता है। उसके हाथ उठाते ही सब सवारियाँ रुक जाती हैं। फिर कोई भी मनुष्य, चाहे वह बड़ा रईस क्यों न हो, चाहे उसे बड़ी जल्दी क्यों न हो, बिना पुलिसवाले का इशारा पाए अपनी सवारी आगे न बढ़ावेगा। नीली वर्दी की आज्ञा सबको माननीय है। उसकी सहायता करने को छोटे-बड़े सभी तैयार रहते हैं। लोग जानते हैं कि पहरेवाला जो कुछ हुक्म देता है, वह सर्वसाधारण के लाभ के हेतु है। उसका कहना मानने ही से लन्दन-सरीखे महानगर में आना-जाना भयरहित हो सकता है।

इस नगर की पुलिस की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी

है। लालच, दुष्टता और पक्षपात तो एक मामूली सिपाही को भी छू नहीं गए। अफसरों तथा सिपाहियों की यह अटल धारणा है कि पुलिस प्रजा की सेवक है और उसे वही करना चाहिए, जिससे प्रजा की भलाई हो। गरीब-से-गरीब मनुष्य को सहायता देने में वे तत्पर रहते हैं और सदैव उससे नम्रतापूर्वक बोलते हैं। दुष्ट लोगों को गिरफ्तार करते समय भी वे जबान नहीं चलाते और यही कहते हैं कि हमें आपको कष्ट देने में क्लेश होता है; परन्तु कानून के आज्ञानुसार ऐसा करना आवश्यक है। इस नगर में दुष्ट लोगों की संख्या भी अधिक है, परन्तु उनको व्यर्थ क्लेश दिए बिना पुलिस उनपर पूरी निगरानी रखती है। जो परदेशी इंग्लिस्तान जाता है, वह लौट आने पर मुक्त कंठ से वहाँ की पुलिस की प्रशंसा करता है। उसके उत्तम व्यवहार ही के कारण वहाँ की प्रजा अपने पुलिसवालों का इतना मान करती है।

लन्दन शहर पृथ्वी भर के व्यापार का केन्द्र है। वहाँ लक्ष्मीपतियों की भरमार है। करोड़पति होना तो वहाँ कोई बात नहीं है। एक मजदूर आदमी महीने में १०० से १५० रुपए कमा लेता है। संवत् १९५६ में जब हिन्दुस्तान में भारी अकाल पड़ा था, तब यहाँ के पीड़ितों के लिए उस नगर के निवासियों ने चन्दा किया था और दो-तीन दिन में ही कई करोड़ रुपए इकट्ठे हो गए थे। इसी से उस शहर की लक्ष्मी का तथा वहाँ के निवासियों की उदारता का अनुमान हो सकता है। इस भूतल पर कोई विरला ही देश ऐसा होगा जिसके निवासी वहाँ व्यापार अथवा शिक्षा

के लिए थोड़े बहुत, न जा पहुँचे हों। हिन्दुस्तानी भी वहाँ हजारों मिलेंगे।

उस नगर की विशालता इसीसे प्रकट होती है कि उसके बारह-तेरह मील के व्यास में कोई दो सौ साठ रेल के स्टेशन हैं और यदि उसकी हद्द के भीतर रेल की पाँतों की समस्त लम्बाई नापी जाय तो ढाई सौ मील की लम्बाई निकलेगी। मकानों की संख्या नौ लाख है; गिरजाघरों तथा अन्य धर्मों के उपासनालयों की संख्या एक हजार छ सौ है। वहाँ आठ हजार तो बार (शराबखाने) हैं और सत्रह सौ चाय-घर हैं।

लन्दन शहर टेम्स नदी के किनारे पर बसा हुआ है, जिसका पाट चौड़ा और पानी गहरा है। समुद्र-तट के निकट होने और टेम्स नदी में काफी पानी रहने के कारण लन्दन एक विशाल बन्दरगाह भी है। वहाँ रोज हजारों जहाज़ आते-जाते हैं और दूर से देखने पर टेम्स नदी के ऊपर मस्तूलों का जंगल मालूम होता है। यहाँ से पृथ्वी की सभी दिशाओं को माल जाता और वहाँ से आता है। लन्दन तथा इंगिलस्तान की भोजन-सामग्री का बहुत-सा भाग इसी बन्दरगाह पर पहुँचता है। यदि एक सप्ताह के लिए जहाज़ों का आना-जाना बन्द हो जाय, तो उस देश में त्राहि-त्राहि मच जाय। इसीलिए ब्रिटिश साम्राज्य ने अपनी नाविक शक्ति इतनी प्रबल कर ली है कि इस दुनिया में कोई भी राजशक्ति उससे समुद्री युद्ध में टक्कर नहीं ले सकती।

टेम्स नदी के किनारे पार्लियामेंट का विशाल भवन है। यहाँ प्रजा की ओर से चुने हुए पंच एकत्र होकर राज-सम्बंधी कार्यों पर विचार करते हैं और मंत्रिगण विशाल ब्रिटिश राज्य की सब व्यवस्था, उसका राजकीय प्रबन्ध आदि इन्हीं पंचों की सम्मति से करते हैं।

यहाँ देखने के लायक कई जगहें हैं जैसे अजायब-घर, पुस्तकालय, बकिंघम महल, सेंट पॉल का गिरजाघर, टेम्स नदी का पुल, जन्तुशाला आदि।

लन्दन नगर में देखने योग्य स्थान इतने हैं कि यदि कोई मनुष्य और कोई काम न करे तथा कई महीने बराबर घूमता ही रहे, तो भी वह सारे स्थान न देख सकेगा। परन्तु उसे पग-पग पर अंग्रेज-जाति की सभ्यता, वैज्ञानिक ज्ञान, कलाकुशलता तथा अतुल सम्पत्ति के उदाहरण मिलेंगे।

शब्दार्थ

आमदरफ्त = आना-जाना। वाहन = सवारी। संगम = क्रौस। व्यास = फैलाव। पाँत = पंक्ति, कतार। पाट = चौड़ाई। मस्तूल = 'मास्ट'। त्राहि-त्राहि = हाहाकार। जन्तुशाला = चिड़ियाघर।

अमृतसर का स्वर्ण-मन्दिर

[श्री जगन्नाथ पुच्छरत के इस निबन्ध में पंजाब-प्रान्त के प्रमुख नगर 'अमृतसर, में बने हुए सिक्खों के प्रसिद्ध 'स्वर्ण-मन्दिर' का विस्तृत वर्णन किया गया है।]

पंजाब में अमृतसर पहले एक छोटा-सा गाँव था; उस समय उसका नाम 'चक' था। पर अब मनुष्य-गणना के अनुसार वह भारतवर्ष में उन्नीसवाँ और पंजाब में दूसरा शहर है। सिक्खों के चौथे गुरु रामदास ने तीसरे गुरु अमरदास की आज्ञा से विक्रम-संवत् १६२९ में इस शहर की नींव डाली और अपने नाम पर नगर का नाम रामदासपुर रक्खा। गुरुजी ने पहले अपने ही रहने के लिए वहाँ मन्दिर बनवाए। वे अबतक 'गुरु के महलों' के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके बाद गुरुजी ने उन मकानों के आसपास भिन्न-भिन्न जातियों के लोग बसाए। विक्रम-संवत् १६३४ के माघ मास में गुरुजी ने अपने अनेक शिष्यों को बुलाकर शहर के बीच में एक बड़ा तालाब खुदवाना आरम्भ किया। गुरुजी खुद भी अपने हाथों से कभी-कभी इसकी मिट्टी निकालते थे। बनने पर इसका नाम आपने अमृतसर रखा। तब से, विशेष करके रणजीत सिंह के समय से, इसकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। अब इस समय यह तालाब ४७५ फुट लम्बा और इतना ही चौड़ा है। इसके चारों ओर संगमर्मर और काले तथा भूरे पत्थरों से बना हुआ चौबीस फुट चौड़ा फर्श है। तालाब में सब तरफ नीचे

से ऊपर तक संगमर्मर की सीढ़ियाँ हैं। इसके तीन तरफ़ राजाओं और सरदारों के मकान हैं। उत्तर की तरफ़ एक बड़े भारी बुर्ज में घंटाघर है, जिसका शब्द सारे शहर में सुनाई देता है। तालाब में जल बहुत गहरा है। इस पवित्र तालाब के पास कोई आदमी जूता पहनकर नहीं जा सकता और न उसमें अपवित्र कपड़े ही धो सकता है।

तालाब के बीच में स्वर्ण-मन्दिर अर्थात् सिक्खों का गुरु-द्वारा है। इस मन्दिर के चार नाम हैं—(१) दरबार-साहिब, (२) हरि-मन्दिर (३) गुरु-द्वारा (४) स्वर्ण-मन्दिर। तालाब के बीच में ६५ फुट लम्बे और इतने ही चौड़े चबूतरे पर मन्दिर बना हुआ है। तालाब के पश्चिमी किनारे से मन्दिर तक दो सौ फुट लम्बा पुल है। इसके पश्चिम तरफ़ एक मेहराबदार फाटक है। पुल का फ़र्श सफ़ेद और नीले मार्बल (संगमर्मर) की पटियों से बना है। उसके दोनों किनारों पर चमकीले संगमर्मर के खम्भों पर बीस सुनहरी बत्तियाँ लगी हैं।

मन्दिर की लम्बाई पश्चिम से पूर्व तक ५५ फुट और चौड़ाई लगभग ३५ फुट है। मन्दिर के शिरोभाग पर, बीच में एक बड़ा गुम्बज है। चारों कोनों पर भी चार छोटे गुम्बज हैं। मन्दिर की दीवार के नीचे का भाग सफ़ेद संगमर्मर का है। उसपर अनेक रंगों के बहुमूल्य पत्थर जड़कर स्थान-स्थान पर चित्र बनाए गए हैं। ऊपर के भाग तथा सब गुम्बजों पर ताम्बे के पत्र जड़कर सोने का मुलम्मा किया हुआ है। इसीलिए यह स्वर्ण-मन्दिर

नि

के नाम से प्रसिद्ध है। मन्दिर की दीवार पर गुरुमुखी अक्षरों में ग्रन्थ-साहिब के बहुत से पद्य खुदे हुए हैं। मन्दिर के दरवाजे पर चाँदी का काम बहुत ही सुन्दर है। मन्दिर के भीतरी-बाहरी दृश्य दोनों बहुत ही हृदयग्राही हैं। छत में छोटे-छोटे काँच जड़कर कुन्दन किया हुआ है, फ़र्श में सफ़ेद और नीले कीमती पत्थर के टुकड़े बड़ी ही खूबसूरती से जड़े हुए हैं।

पूर्व की ओर मन्दिर का प्रधान 'ग्रंथी' चमर हाथ में लिए बैठा रहता है। बीच में एक चादर बिछी रहती है। उसपर यात्री लोग रुपए, पैसे, कौड़ी, फूल, मोहनभोग इत्यादि चढ़ाते हैं।

सिक्ख लोग अपने ग्रंथ को ईश्वर के समान मानते हैं। इसलिए वे लोग प्रतिदिन प्रातःकाल ग्रंथ को सँवारते हैं और उसे चाँदनी के भीतर गद्दी पर रखकर उसपर चमर करते हैं। सन्ध्या-समय उसे निकट के पवित्र मन्दिर में ले जाते हैं; जहाँ रात को सुनहरे बिस्तर पर उसे सुलाते हैं। मन्दिर के ऊपरी खंड में एक छोटा-सा परन्तु खूब सजा हुआ शीशमहल है, जहाँ सिक्खों के गुरु बैठते थे। वहाँ मोर-पंख के झाड़ू से बुहारी लगाई जाती है। चाँदी के पत्रों से जड़े हुए दरवाज़े के पास से खज़ाने को सीढ़ियाँ गई हैं। खज़ाने में नौ फुट लम्बे और साढे-चार इंच व्यास के चाँदी के इकतीस चोब हैं। चार इनसे भी बड़े हैं। खज़ाने में एक बड़ा-सा सन्दूक है, जिसमें सुनहरे मुलम्मे के तीन सोंटे, एक पंखा, और दो चमर हैं। पाँच सेर खालिस सोने की एक चाँदनी है, जिसपर लाल, पन्ने और हीरे जड़े हुए हैं।

मन्दिर का एक नक़्शा भी यहाँ बहुत अच्छा है। इसके सिवा मोतियों की झालरवाला हीरे का एक सुंदर मुकुट भी है, जिसे नौनिहालसिंहजी (महाराज रणजीतसिंह के पौत्र) पहनते थे। और भी बहुत-सी दर्शनीय चीज़ें वहाँ रक्खी हैं। ग्रंथ-यात्रा के समय ये सब चीज़ें उसके साथ जाती हैं।

मन्दिर के चारों तरफ़ जो फ़र्श है उसपर सफ़ेद और नीले संगमर्मर के टुकड़े बहुत ही सुन्दरता से खचित किए हुए हैं। जगह-जगह पर संगमर्मर के गुम्बजदार छोटे-छोटे खम्भे हैं।

मन्दिर में और उसके आसपास नानकशाही लोग दिन-रात भजन-पूजन किया करते हैं; यात्रियों की सदा भीड़ रहती है। विशेष करके दिवाली और वैशाखी को बड़ा मेला होता है। मन्दिर में नानकशाही पुजारी रहते हैं, उसके आसपास कोई जूता नहीं ले जा सकता।

यूरोपियन और मुसलमान आदि लोग उत्तर की ओर से मन्दिर का दर्शन करते हैं।

तालाब के पश्चिमी किनारे पर पुल के पास बड़े-बड़े दो झंडे हैं। उनसे थोड़ी ही दूर पर, पाँचवें गुरु अर्जुन सिंह के समय का बना हुआ एक सिक्ख-मन्दिर है। उसे अकाल-बुंगा कहते हैं। उसके भी गुम्बज पर सुनहरा मुलम्मा है। सीढ़ियों द्वारा मन्दिर में जाना होता है। मन्दिर में सुनहरे सिंहासन पर वस्त्र से ढँकी हुई कई चीज़ें रक्खी हैं। उनमें से चार फुट लम्बी गुरु

गोविंदसिंहजी की एक तलवार और उनका एक सोंटा है। यहीं सिक्ख लोगों का 'पौहल-संस्कार' होता है।

तालाब से दक्षिण की तरफ़ गुरु का एक बहुत बड़ा बाग है। उसमें अनेक सुन्दर-सुन्दर फ़व्वारे हैं। बाग के पूर्व बिजली का इंजन है, जिससे समस्त दरबार में रोशनी होती है। दिवाली और वैशाखी पर साधु महात्मा इस बाग में आकर ठहरते हैं। यहीं पर गृहस्थ आदमी उन्हें अन्न, वस्त्र आदि देते हैं।

बाग में भी गुरु का लंगर (क्षेत्र) है। वहाँ भी साधुओं को अन्न मिलता है।

शब्दार्थ

मनुष्य-गणना = मर्दुमशुमारी, आदमियों की गिनती जो प्रत्येक १० वर्ष पर होती है। अनुसार = मुताबिक। प्रसिद्ध = मशहूर। उत्तरोत्तर = क्रमशः अधिक से अधिक। उन्नति = तरक्की। बुर्ज = मीनार के आकार की इमारत का एक हिस्सा। मेहराब = 'आर्च'। पटिया = पत्थर का चौकोर टुकड़ा। शिरोभाग = ऊपर का हिस्सा। मुलम्मा = गिलट करना। हृदयग्राही = हृदय को आकृष्ट करनेवाले। कुंदन करना = सोने का पत्र चढ़ाना। ग्रंथी = सिक्ख-मंदिर का पुजारी। खालिस = शुद्ध। चाँदनी = चँदवा, चँदोवा। खचित करना = जड़ना। नानकशाही = सिक्ख। पौहल-संस्कार = सिक्खों का एक धार्मिक संस्कार।

———

कुछ पुरानी यादगारें

[संसार के भिन्न-भिन्न देशों की पुरानी यादगारों के सम्बन्ध में लिखा गया ठाकुर श्रीनाथ सिंह का यह लेख उन देशों की सभ्यता एवं संस्कृति का संक्षेप में अच्छा परिचय देता है ।]

बीते युग का हाल हमें उस समय की पुस्तकों, सिक्कों, मूर्तियों, शिलालेखों, गुफाओं, क़ब्रों और राजमहलों तथा देवालयों के खँडहरों से मालूम होता है। आर्य लोग अपने मुर्दों को जलाते थे, इसलिए उन्होंने क़ब्रें नहीं बनवाईं। पर देवालय अच्छे-अच्छे बनवाए थे। इनमें से उत्तर हिन्दुस्तान के क़रीब-क़रीब सभी देवालयों को मुसलमानों ने नष्ट कर डाला। मुसलमान हिन्दुस्तान में उस समय आए थे जब हिन्दू राजा आपस में लड़कर कमज़ोर हो गए थे। वे मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़ना अपना धर्म समझते थे। इसलिए जहाँ-जहाँ वे जीते वहाँ कोई मन्दिर नहीं बचा। यही कारण है कि इमारत के रूप में उत्तर हिन्दुस्तान में आर्यों की कोई साबित यादगार नहीं है। पर दक्षिण हिन्दुस्तान में और जावा आदि में, जहाँ आर्य लोग बाद को फैल गए थे, बड़े-बड़े मन्दिर अब भी मिलते हैं।

आर्य राजाओं के सिक्के और शिला-लेख मिलते हैं। बौद्धों के समय के शिलालेख तो और भी अधिक मिलते हैं। अगर आप इलाहाबाद या दिल्ली जावें तो आप अशोक की लाट

देख सकते हैं। यह गोलों और मज़बूत पत्थरों का एक ऊँचा स्तम्भ है जिसमें बौद्ध धर्म के सिद्धान्त लिखे हैं। अशोक ने ऐसी लाटें बहुत से स्थानों में गड़वाई थीं। दक्षिण में कुछ पुरानी गुफाएँ भी मिलती हैं जो पृथ्वी के भीतर बड़ी-बड़ी पत्थरों की चट्टानें काटकर बनाई गई हैं। इन गुफाओं में बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ हैं और उनकी रँगाई बड़ी सुन्दर है। इससे हमें दो बातें मालूम होती हैं। एक तो यह कि उस समय के लोग चित्रकला में कैसे निपुण थे, दूसरी यह कि उस समय के लोगों का पहनावा आदि कैसा था।

आर्यों की सबसे सुन्दर यादगार उनकी किताबें हैं। वेदों के बारे में आपने यह पढ़ा होगा कि वे सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। वेदों में ज्ञान की बातें लिखी हैं। वेद का अर्थ ही है ज्ञान। आजकल के लोग कोई ऐसी ऊँची बात नहीं सोच सकते जो वेदों में मौजूद न हो। जरा सोचिए तो कि जिन आर्यों ने वेद की रचना की, उनका दिमाग कितना ऊँचा रहा होगा। वेदों के बाद दो ग्रन्थ और हैं जिनसे आर्यों की सभ्यता का पता चलता है। ये ग्रन्थ हैं रामायण और महाभारत। रामायण में राम और रावण की लड़ाई का वर्णन है और महाभारत में आर्यों की आपस की लड़ाई का हाल है। ये पुस्तकें भी बड़ी पुरानी हैं। इनके पढ़ने से पता चलता है कि आर्य लोग कैसे वीर थे और उनके विचार कितने गहरे और सुन्दर थे।

बैबिलोनिया में जो जाति बसी थी उसका कोई सबूत नहीं

मिलता। सिर्फ़ एक बाग़ है जिसे 'झूलता हुआ बाग़' कहते हैं। यह बाग़ बहुत ऊँचाई पर बनाया गया था और इसमें बड़े-बड़े वृक्ष लगे थे। बाग़ के नीचे बड़े-बड़े कमरे थे। यह बाग़ पुरानी दुनिया के सात आश्चर्यों में एक है।

मिस्र में जो लोग रहते थे उनकी यादगारें बड़ी ठोस हैं। उस समय के कुछ राजाओं और रानियों की तो लाशें अब तक रक्खी हैं। इन लाशों को 'ममी' कहते हैं। मिश्र के लोगों का ख़याल था कि मरा हुआ मनुष्य अगर उसकी लाश ठीक अवस्था में रक्खी जाय तो कभी न कभी जी उठेगा। उसकी आत्मा घूम-फिरकर ज़रूर उसमें वापस आ जायगी। इसीलिए वे लाशों की ममी बनाते थे। एक काठ के सन्दूक में ये लाशें रक्खी जाती थीं और उनमें कुछ ऐसे मसाले लगा दिए जाते थे कि वे अब तक ज्यों-की-त्यों बनी हैं। इससे आप यह अनुमान कर सकते हैं कि रसायन विद्या में ये लोग कितने बढ़े-चढ़े थे।

ये लाशें बड़े-बड़े मकबरों में रक्खी जाती थीं जिन्हें 'पिरामिड' कहते हैं। पिरामिडों को आप छोटा-मोटा पहाड़ ही समझें। इनके बराबर इमारतें न तो पुराने समय में थीं और न आजकल ही हैं। सबसे बड़ी पिरामिड 'गेज' में है। यह कोई चार हजार वर्ष पुरानी है। बीस लाख आदमी इसके बनाने में लगे और लगातार २० वर्ष तक काम होता रहा। तब यह पिरामिड तैयार हुई है। प्रायः सभी पिरामिडें चौकोर बनी हैं और

ऊपर क्रम से पतली होती गई हैं। इनके अन्दर बड़े-बड़े कमरे और तहख़ाने हैं जिनमें उस समय के राजाओं की लाशें (ममी) रक्खी हैं। इन लाशों के पास ही पहनने और ओढ़ने की वस्तुएँ और हथियार रक्खे हैं। मिस्रवाले सोचा करते थे कि शायद मरने के बाद भी उन्हें इन वस्तुओं की ज़रूरत पड़े।

पिरामिडों की बग़ल में एक तरह की मूर्तियाँ बनी हैं जिन्हें 'स्फिंग्स' कहते हैं। ये मूर्तियाँ ऊँची-ऊँची ठोस चट्टानों को काटकर बनाई गई हैं। इनका सिर स्त्री का-सा है पर शेष धड़ शेर की शकल का है। स्फिंग्स का क्या मतलब है यह किसी को नहीं मालूम। शायद ये पिरामिडों में पड़ी लाशों की रखवाली करने के ख़याल से बनाई गई थीं। चित्र में देखकर आप स्फिंग्स की कल्पना नहीं कर सकते। ये विशालकाय मूर्तियाँ जिन्होंने पास से देखी हैं उनका कहना है कि इन्हें वे कभी भूल नहीं सकेंगे। इससे यह पता चलता है कि मिस्र के लोग पत्थर काटने के काम में कितने निपुण थे।

पत्थर काटने के काम में यूनान के लोग भी बहुत निपुण थे। प्राचीन समय में यूनान में मनुष्य की आकृति की जो सुन्दर मूर्तियाँ बनी थीं वे दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों में अजायब घरों में रक्खी हैं। यूनानियों ने एक बड़ा सुन्दर मन्दिर बनाया था जो आजकल 'एक्रोपोलिस' के नाम से प्रसिद्ध है। अब इस मन्दिर का खँडहर मात्र शेष है। पर उसके देखने से जान पड़ता

है कि प्राचीन काल में यह मन्दिर कितना सुन्दर रहा होगा। इस मन्दिर की बहुत-सी सुन्दर मूर्तियाँ अँगरेज़ सरकार ने ३५ हज़ार पौंड में सन् १८६६ में ख़रीदी थीं। तब से ये मूर्तियाँ ब्रिटिश म्यूज़ियम (लन्दन) में रक्खी हैं।

संसार की प्राचीन इमारतों में 'कोलोसियम' का ख़ास स्थान है। यह क़रीब पाँच एकड़ ज़मीन पर बना हुआ था। इसमें एक बड़ा कमरा था जिसमें खेल-तमाशे और घुड़दौड़ आदि हुआ करते थे। लगभग एक लाख आदमी इस कमरे में बैठकर इन खेलों को देख सकते थे। इसी से आप अनुमान कर सकते हैं कि यह विनोद-भवन कितना बड़ा रहा होगा। अब इसका एक हिस्सा ही शेष रह गया है। रोमन लोग मकान बनाने और शहर बसाने की कला में बड़े निपुण थे। इसका सबसे सुन्दर नमूना 'पम्पियायी' है। पम्पियायी विसूवियस ज्वालामुखी के नीचे एक सुन्दर शहर था। चौड़ी पक्की सड़कें थीं और बढ़िया मकान थे। अनेक नाच-घर, पुस्तकालय, बाग़ और स्कूल थे। एकाएक ज्वालामुखी से आग, लावा और राख निकलने लगी और यह सुन्दर शहर उसी में दब गया। जो जहाँ था वह वहीं रह गया। अब यह शहर खोदा जा रहा है और सब चीज़ें ज्यों-की-त्यों निकल रही हैं। खेलते हुए लड़के, पहरा देते हुए पुलिस के सिपाही, खाना पकाती हुई स्त्रियाँ, बिस्तर, तसवीरें, सजे-सजाए कमरे आदि चीज़ें ज्यों-की-त्यों निकली हैं। मृतकों के इस शहर को देखने से पता चलता है कि

अब से दो हज़ार वर्ष पूर्व रोमन लोग शहर बसाने की कला में कितने निपुण थे।

गृह-निर्माण-कला में चीन के लोगों ने भी बड़ी उन्नति की थी। इसका सबसे बड़ा प्रमाण चीन की दीवार है। यह समुद्र के किनारे से ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों तक बनाई गई थी ताकि दुश्मनों से हिफ़ाज़त हो। यह दीवार १४०० मील लम्बी, ३० फ़ुट ऊँची और २५ फ़ुट चौड़ी है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर इसपर क़िले और बुर्ज बने हैं। अगर हमारे देश में ऐसी दीवार बने तो वह लाहौर से लेकर मद्रास तक पहुँचेगी।

इनके अलावा बीते युग की और भी बहुत-सी स्मृतियाँ हैं। स्थानाभाव के कारण उन सबका जिक्र यहाँ नहीं किया जा सकता। जब आप बड़े होंगे और कभी दुनिया की सैर करने निकलेंगे तब उन चीज़ों को स्वयं देखेंगे। पर अगर आपको उन वस्तुओं का कुछ अन्दाज़ा लगाना हो तो कम से कम दिल्ली और आगरा हो आवें। वहाँ आपको पुरानी इमारतों के कुछ दृश्य मिलेंगे। यद्यपि ये इमारतें बहुत पुरानी नहीं हैं। इनमें अधिकांश मुग़ल बादशाहों की बनवाई हैं और ३०० वर्ष के आसपास ही की हैं। पर वे प्राचीन युग की ही चीज़ें कही जाएँगी क्योंकि वे आजकल के तरीके से नहीं बनाई गईं। दिल्ली में लोहे का एक स्तम्भ है जो कुतुबमीनार के पास है। बहुत-से लोग इसको दिल्ली की 'किल्ली' कहते हैं। यह लोहे का एक बड़ा बेलन है जो ढालकर बनाया गया है। आजकल के लोगों

की समझ में नहीं आता कि लोगों ने इसे कैसे ढाला होगा। यह किल्ली बहुत पुरानी है; पर आश्चर्य की बात यह है कि इसमें अभी तक मोरचा नहीं लगा। आगरा का ताजमहल संसार-प्रसिद्ध इमारत है। यह संगमर्मर का बना है और देखने से जान पड़ता है, मानो आज ही बनकर तैयार हुआ हो। इसे शाहजहाँ बादशाह ने अपनी बेगम मुमताजमहल के दफ़नाने के लिए बनवाया था। यह बीस वर्ष में तैयार हुआ था और हज़ारों मज़दूर इसके बनाने में लगे थे।

अब उतनी मज़बूत इमारतें नहीं जितनी प्राचीन काल में बनती थीं। इसका कारण शायद यह है कि अब इमारतों में छिपने से दुश्मनों से बचाव नहीं हो सकता। हवाई जहाज़ से गोले बरसाकर मज़बूत से मज़बूत क़िले तोड़े जा सकते हैं। इसलिए आजकल के लोग इन चीज़ों को फ़िज़ूल समझते हैं। मकबरे वग़ैरह बनाने का रवाज भी उठता जा रहा है। इन चीज़ों का बनाना भी आजकल के लोग फ़िज़ूल समझते हैं। आजकल सिर्फ़ वे चीज़ें देखने को मिलेंगी जिनसे व्यापार में मदद मिलती है या अधिक से अधिक आदमियों का हित हो सकता है। जैसे रेल, पुल, स्टेशन, बन्दरगाह आदि। अगर आजकल कोई राजा पिरामिड जैसी चीज़ें बनवाना शुरू करे तो लोग उसे पागल कहेंगे। इतना ही नहीं, उसके खिलाफ़ आन्दोलन करने लगेंगे कि वह प्रजा के धन और बल को बरबाद कर रहा है। आजकल जो राजा या नवाब अपने आराम में ज़्यादा पैसे

ख़र्च करते हैं उनको ऐसी ही बातें सुननी पड़ती हैं। प्राचीन काल में प्रजा में इतनी जागृति नहीं थी। इसलिए भी राजा लोग मनमानी करते थे और इस तरह की फ़िज़ूलख़र्चियाँ होती थीं। पर उनके इन व्यर्थ कामों का भी एक उपयोग निकल आया जो शायद उन्होंने न सोचा होगा। इन चीज़ों से हमें उस युग का इतिहास तैयार करने में सहायता मिलती है।

शब्दार्थ

देवालय = मन्दिर। यादगार = स्मारक। लाट = मोटा और ऊँचा खम्भा। मकबरा = क़ब्र। विनोद-भवन = खेल-तमाशे के लिए बनी इमारत। मृतक = मुर्दा। गृह-निर्माण-कला = घर बनाने की विद्या। स्मृतियाँ = यादगारें। किल्ली = लोहे का खम्भा। मोरचा = ज़ंग।

कपड़े की आत्म-कहानी

[इस लेख में श्री गोपाल नेवटिया ने कपास को ओटकर रूई बनाने, उसे धुनकर उससे सूत तैयार करने और फिर सूत से कपड़ा तैयार करने की प्रक्रियाओं का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। लेख के अन्त में, पुराने कपड़ों के चिथड़े कागज बनाने के काम में लाए जाते हैं, इस तथ्य की ओर भी संकेत किया गया है।]

हमारी कहानी बड़ी विचित्र है। हमने इतने ऊँच-नीच देखे हैं, जितने शायद ही किसीने देखे हों। हमारा जन्म रूई

से हुआ है। आदमी अपने स्वार्थ के लिए हमारी माता रूई की बड़ी दुर्दशा करते हैं। परन्तु जब उसके आत्म-त्याग से सुन्दर-सुन्दर वस्त्र तैयार होकर मनुष्यों के उपयोग में आते हैं, तब उसके सन्तोष का ठिकाना नहीं रहता। रूई हम भाइयों की माँ है। कुछ भाई रेशम, टसर और ऊन के भी बेटे हैं। माँ के कष्ट सहने पर भी यदि बेटा परोपकार करे तो माँ को उससे सन्तोष क्यों न होगा ?

जब हम माँ के पेट में—अर्थात् कपास के खेत में हरी-भरी जगह में—लहलहा रहे थे, तो हम फूले न समाते थे। हमारे ही जैसे हज़ारों भाई हमारे चारों ओर थे। अपने स्वजातियों को देख-देखकर कौन हर्षित नहीं होता ? दुर्भाग्य से हरियाली सूखने लगी। सिर पर तेज़ सूरज चमकने लगा। उस तपस्या में भी हमें सन्तोष था। एक दिन दस-बारह बरस का एक बालक हमारे पास आया। आते ही हमारे रूप-रंग पर वह हँसा, और दूसरे ही क्षण हमें पौधे से अलगकर उसने हमें अन्य भाइयों के साथ मिला दिया। उस समय हमारे दुख का ठिकाना न था, पर उपाय ही क्या था ?

अपनी जन्मभूमि छोड़ने पर हमें मालूम हुआ कि हम एक किसान की सम्पत्ति हैं। एक दिन बड़े-बड़े बोरों में भरकर, बैलों की गाड़ी पर लादकर, न जाने वह हमें कहाँ ले चला ? सूरज निकलते-निकलते हम एक गाँव में पहुँचे। वैसी ही सैकड़ों गाड़ियाँ वहाँ खड़ी थीं। थोड़ी देर में सैकड़ों आदमी वहाँ इकट्ठे हो गए।

वे आपस में इस बुरी तरह से चिल्ला रहे थे कि हम तो डर गए। तीन-चार घंटे में झगड़ा समाप्त हुआ। तब हम एक व्यापारी की शरण में पहुँचे। एक चीज में एक तरफ़ हम लटकाए गए, दूसरी तरफ़ लोहे के टुकड़े रखे गए। वहाँ हमारे और भी भाई पहले से मौजूद थे। उनसे पूछने पर मालूम हुआ, कि यह काँटा है और यहाँ हमारा वज़न हो रहा है।

अब हम जिस नई जगह में पहुँचे, वह बड़ी भयानक थी। सैकड़ों आदमी दौड़-धूप कर रहे थे। एक बड़े मकान से ऐसी कर्कश आवाज़ आ रही थी कि हम तो बहरे से हो गए। हम कुछ सोच ही रहे थे कि इतने में न जाने कहाँ से बरसात आ पड़ी। ऊपर आँख उठाकर देखा, तो वे बादल न थे जो खेतों में दिखाई देते थे, यहाँ तो वही दो हाथ, दो पैरवाला आदमी एक लम्बी-सी नाली से पानी उछालकर हमें भिगो रहा था। हम ठिठुरे जा रहे थे; लेकिन अभी तो न जाने कितने कष्टों का सामना करना था।

दो दिन के बाद हमें एक ऐसे यन्त्र का सामना करना पड़ा जिसकी बेदर्दी देखकर हम सब घबरा गए। हमारे जितने बिनौले थे सब हमसे अलग किए जाने लगे। इस आफ़त का सामना करलेने पर तो हमें मृत्यु का ही सामना करना पड़ा। एक लोहे के लम्बे से कुएँ में हम भरे जाने लगे। मज़दूरों की लात खाते-खाते हम हैरान हो गए। उसके बाद एक लोहे का भारी वज़न ऊपर से हमें दबाने लगा। हमारे तो प्राण सूख गए,

हम जो फूले-फूले फिर रहे थे, पिचक गए। लोहे की पत्तियों से बाँधकर हम क़ैदी बना दिए गए। अब हमें लोग रूई की गाँठ कहने लगे।

इसके बाद हमारी लम्बी यात्रा शुरू हुई। एक लम्बी-सी गाड़ी में हम सब भर दिए गए। जंगलों, पहाड़ों और नदियों की हवा खाते हुए हम न जाने किधर दौड़े जा रहे थे। एक दिन हमने अपने-आपको एक विशाल नगरी में पाया। सोचा, थोड़े से आदमियों ने ही मिलकर हमारी यह दुर्दशा कर डाली, तो यहाँ के लाखों आदमी न जाने हमारा क्या करेंगे। खैर, राम-राम कहते हम एक बड़े से घर में पहुँचे।

पीछे से मालूम हुआ कि इस नगरी का नाम बम्बई है, और यही हमारी बिक्री का सबसे बड़ा स्थान है। हम भावी सुख-दुख की आशा-निराशा में बैठे ही थे कि अकस्मात् हमें उनके लोहे के बन्धनों से मुक्ति मिल गई। एक आदमी हमारा गला पकड़कर एक सुन्दर मकान में ले गया। बढ़िया कागज में सजाकर हम रख दिए गए। कई आदमी रोज आते और हमारे दर्शन कर अपना अहो-भाग्य समझते। हम बड़े खुश होते; पर एक दिन हमें वहाँ से भी उठना पड़ा। मकान बहुत बड़ा था, चारों ओर हमारा ही राज्य था। हम जिस आदमी के साथ जा रहे थे, उसके हाथ से छूटकर कई दिनों तक उस मकान के आँगन में लोगों के पैरों की ठोकरें खाते रहे। सौभाग्य से इतने में ही एक लड़का आया। उसने हमें अपनी टोकरी में उठा लिया। उस समय

हमें खेत का वही दृश्य याद आ गया जिसमें एक लड़के द्वारा हम चुन लिए गए थे। इस बार धूल से भर गए थे, इसलिए हमें बहुत लज्जित होना पड़ा।

यहाँ से हमारा नवीन जीवन आरम्भ हुआ। अपने उन भाइयों से हम अलग हो गए। अब हम थोड़े से धूलि-धूसरित भाई एक गरीब के हाथ बेच दिए गए। हमारी हजारों गाँठें वहाँ रोज बिकती थीं—न जाने कहाँ जाती थीं; किन्तु हमें तो फिर गरीब की ही कुटिया देखनी थी। बम्बई से फिर देहात में पहुँचे।

किसान ने बड़े प्रेम से हमारी धूल साफकर हमें धुना, धुनने में हमें कष्ट तो हुआ, पर फूले न समाए। हमारा शरीर फूल-फूलकर चौगुना हो गया। उसके बाद हमें सूत का रूप दिया गया। एक औरत बड़े प्रेम से चर्खे को चलाती और मधुर-मधुर गीत गाती हुई सूत कातती। सूत तैयार हो जाने पर कपड़ा बुना गया। जुलाहा हमको लेकर बाजार में गया। हमारा नाम खादी पड़ा। हम बेच दिए गए।

हमारा ख़रीदार एक साधारण स्थिति का आदमी था। उसने उस खादी का एक कुर्ता बनवाया। गर्मी, धूप और शीत से हम सब भाई मिलकर उसकी रक्षा करते। एक दिन अकस्मात् हमारी भेंट उन भाइयों से हो गई, जिन्हें हम बम्बई में छोड़ आए थे। उनका नया रंगरूप देखकर तो हम दंग रह गए। हम खादी के कुर्ते के रूप में थे, और वे एक बढ़िया विलायती कपड़े के कोट

के रूप में आकर हमारे ऊपर लद गए। हम दोनों की बातें होने लगीं। हमने अपनी कहानी पूरी कर दी तो उसने भी अपनी कहानी इस प्रकार सुनाई—

"बम्बई से हमलोग जहाज़ पर सवार हुए। कई दिन तक समुद्र की हवा खाते-खाते हम विलायत—सात समुद्र पार—पहुँचे। उस जगह का नाम 'मैनचेस्टर' था। वहाँ बड़े-बड़े कल-कारखाने थे। मशीनों में हम कूटे-पीसे गए—धुने गए, मशीनों में ही काते गए और उसके बाद कपड़ा बनकर फिर अपने ही देश को लौट आए।"

हमने कई महीने इस रूप में बिताए। अन्त में हम बूढ़े हो गए। जगह-जगह झुर्रियाँ पड़ गईं। अब हम फटा-पुराना चिथड़ा बन गए। पर इस रूप में भी हमारा उपयोग कम न हुआ। हम भी अपने उन विदेशी भाइयों की भाँति मशीनों के फेर में जा पड़े। कई दिनों तक पानी में पड़े सड़ते रहे। उसके बाद कुट-पिट कर मशीन पर चढ़े। अब हम कागज बन गए और आज इस पुस्तक के रूप में आपके हाथ में आ पहुँचे हैं। अब आगे हमारी क्या गति होती है, सो देखी जायगी !

शब्दार्थ

स्वार्थ = मतलब। दुर्दशा = बुरी हालत। परोपकार = दूसरे की भलाई। काँटा = तराजू। कर्कश = कटु। बेदर्दी = क्रूरता, कठोरता। बिनौले = कपास के बीज। अकस्मात् = अचानक। मुक्ति = छुटकारा। अहोभाग्य = सौभाग्य। धूलि-धूसरित = धूलि से भरा हुआ। शीत = ठंढा। गति = दशा।

सुरंग की रेलगाड़ी

[लन्दन-जैसे दुनिया के बड़े-बड़े शहरों में यात्रियों की सुविधा के लिए जमीन के अन्दर सुरंगों में चलनेवाली रेल गाड़ियों की व्यवस्था की गई है। श्री रघुवंश पाण्डे के इस लेख में उसीका संक्षिप्त विवरण दिया गया है।]

इतिहास के पन्नों में जब हम मानव-जाति के अतीत पर नज़र डालते हैं, तो हमें आश्चर्य होता है। पहले लोग रेल के इंजनों को देखकर शैतान की कल्पना करते थे और घर छोड़कर भाग जाते थे। किन्तु, आज का मनुष्य हँस-हँसकर मृत्यु से भी अठखेलियाँ करता है। आकाश, पाताल और पृथ्वी पर मनुष्य ने अपने लिए क्या नहीं किया? जीवन के उपयोगी साधनों से लेकर विध्वंस तक की उसने प्रचुर सामग्री इकट्ठी कर रक्खी है। जहाज़, रेल, हवाई जहाज़, रेडियो, टेलिविज़न, बम, मृत्यु-किरण, बेलून और गोताखोर आदि आश्चर्यजनक वैज्ञानिक करिश्मे अब हमारे लिए आश्चर्य की सामग्री नहीं। इस वैज्ञानिक आविष्कार की होड़ में कब क्या-क्या देखने को मिलेगा यह नहीं कहा जा सकता। ज़मीन के अन्दर चलनेवाली तेज़ गाड़ियाँ भी आधुनिक विज्ञान की देन हैं। हम इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि ज़मीन के अन्दर ज़्यादा गहराई में गाड़ियाँ भला कैसे चल सकती हैं? वहाँ न प्रकाश मिल सकता है, न हवा। कभी धरती धँस

जाय तो क्या हाल हो और इतनी गहराई में दूर-दूर तक लाइन बैठाई किस तरह जा सकती हैं ? लेकिन सैकड़ों कठिनाइयों के बावजूद भी दुनिया के बड़े-बड़े शहरों में ज़मीन के अन्दर गाड़ियाँ चलती हैं। यही नहीं, उनमें न ख़तरे की सम्भावना है, न कोई कठिनाई। ज़्यादा आराम पाने और ख़तरे से खाली होने के लिए ही तो ऐसी तरकीब निकाली गई। दुनिया के बड़े-बड़े शहरों की भीड़ की बात सोचिए। वहाँ कितनी दुर्घटनाएँ रोज़ होती हैं! लन्दन की ही बात लीजिए।

लन्दन इंगलैंड की राजधानी और दुनिया का सबसे बड़ा शहर है। इसकी आबादी अस्सी लाख और क्षेत्रफल ६९९ वर्ग मील है। यहाँ ट्राम गाड़ी, मोटर, बस, टैक्सी, बाइसिकिल आदि के अलावा माल-असबाब ढोने के लिए घोड़ागाड़ी, लारी, और मोटरें भी अनगिनत हैं। इनसे सफ़र करनेवाले लोगों के अतिरिक्त फुट-पाथ से चलनेवाले लोगों की ही संख्या भारत के किसी प्रधान शहर की जन-संख्या के लगभग होती है। आमद-रफ़्त के इतने साधन और लोगों की अपार भीड़ में यदि दुर्घटनाएँ हों तो ताज्जुब क्या? इसी तरह न्यूयार्क, बर्लिन, पेरिस, टोकियो आदि में भी आम सड़कों पर दुर्घटनाओं की सम्भावना बनी रहती है। सुरंग की रेलगाड़ी से यह आशंका बहुत अंशों में दूर हो जाती है।

सुरंग की रेलगाड़ी के लिए शुरू-शुरू में ज़मीन के थोड़े ही नीचे रेल की लाइनें बिछाई गईं। उनपर भाप से चलनेवाले

छोटे-छोटे इंजन पेसेंजर गाड़ियों को खींचते थे। इससे यात्रियों की असुविधाएँ अंशतः कम ज़रूर हुईं; लेकिन, विशेष सुविधा नहीं हुई। कोयले के धुएँ से, भाप से सारा मार्ग आच्छादित रहता। इतना ही नहीं, नीचे न तो प्लेटफ़ार्म था, न बिजली का प्रकाश, न शुद्ध हवा मिलने का प्रबन्ध। पहले ज़मीन के अन्दर ट्रेन चलाने के लिए उसमें खाई खोदकर लाइन बिछा दी जाती और उसे पाटकर गाड़ी चलने भर की जगह छोड़ दी जाती थी। किन्तु आजकल दूसरी ही प्रणाली से काम लिया जाता है।

नई प्रणाली से चलनेवाली गाड़ी को ट्यूब-रेलवे ट्रेन कहते हैं। इसके लिए ज़मीन को नब्बे फुट गहरा खोदकर मशीन की सहायता से ट्यूब लगा दी जाती है। ट्यूब का व्यास ८ फुट होता है। यह धातु की बनी होती है। इन ट्यूबों के अन्दर रेल की लाइन बिछाई जाती है, जिसपर बिजली की सहायता से छोटी-छोटी आरामदेह गाड़ियाँ चलती हैं।

सुरंग में जो ट्यूब बिछाई जाती हैं उनकी मोटाई ८, ९ फुट से अधिक नहीं होती। केवल प्लेटफ़ार्म का स्थान कुछ चौड़ा होता है। प्लेटफ़ार्म का स्थान बिजली की रोशनी से बराबर जगमगाता रहता है। साफ़ हवा यंत्र के बल से बराबर नीचे पहुँचाई जाती है। हवा न अधिक गर्म रहती है न सर्द ही। शीतकाल, वर्षा और कुहासे के दिनों में लोग

ट्यूब रेल से ही यात्रा करने में विशेष सुविधा का अनुभव करते हैं। इसके यात्रियों को स्टेशन मालूम करने में भी कोई कठिनाई नहीं होती, क्योंकि जहाँ-जहाँ स्टेशन होते हैं वहाँ-वहाँ विशेष प्रकार की रोशनी लगी रहती है। साधारण सीढ़ियाँ भी रहती हैं; किन्तु लोग 'लिफ़्ट' से ही आते-जाते हैं जिससे लोगों को कष्ट नहीं उठाना पड़ता। लिफ़्ट बिजली की सहायता से आता-जाता है। स्टेशन पहुँचने पर न टिकट-बाबू की मिन्नत करनी पड़ती है, न भीड़ ही पीछे ढकेलती है और न किसी से यही पूछना पड़ता है कि अमुक जगह का क्या भाड़ा लगेगा। टिकट मिलने के लिए जगह-जगह स्टेशनों पर 'स्लाट' मशीनें बनी रहती हैं जिनमें निश्चित स्थान के टिकट की पूरी कीमत डालने से टिकट निकल आते हैं। उसपर स्थान तथा क्या भाड़ा लगेगा, यह भी लिखा रहता है। ऐसी तो नहीं, किन्तु प्लेटफार्म-टिकट देने या वज़न आदि बताने-वाली इस तरह की कुछ मशीनें यहाँ के भी कई बड़े शहरों में लगाई गई हैं।

मुसाफिरों की सुविधा के ख़याल से प्लेटफार्म पर बेंचें रखी रहती हैं। लेकिन उनकी, मुसाफ़िरों को ज़रूरत ही नहीं पड़ती, क्योंकि गाड़ियाँ बहुत जल्दी-जल्दी आती-जाती रहती हैं। कभी-कभी पर्वों तथा विशेष अवसरों पर हर डेढ़ मिनट पर विशेष ट्रेनें छूटती हैं। प्लेटफार्म पर गाड़ी के पहुँचते ही ट्रेन के डब्बे आप-से-आप खुल जाते हैं। कभी-कभी सुस्त आदमियों को बड़ी

दिक्कतें उठानी पड़ती है। अगर उनके चढ़ते-चढ़ते ट्रेन छूटने लगती है तो वे दरवाजे में ही दब जाते हैं, मगर गिर नहीं पाते। थोड़ा आघात आने से ही ट्रेन की गति रुक जाती है और दबा हुआ आदमी बच जाता है।

केवल दो ही व्यक्ति—ड्राइवर और गार्ड—इसे चलाते हैं। ड्राइवर गाड़ी के आगे रहता है जो बिजली की सहायता से गाड़ी चलाता है। एक ट्रेन में कई छोटी-छोटी बोगियाँ (डब्बे) रहती हैं। ड्राइवर के कान के पास गाड़ी में फोन लगा रहता है, जिससे वह गाड़ी के बनने-बिगड़ने या आकस्मिक घटनाओं की सूचना हेड आफिस को दे सके। लेकिन शायद ही ऐसी कोई घटना होती हो। गाड़ी के दरवाजों का खुलना, बन्द होना सब कुछ ड्राइवर पर ही निर्भर रहता है। मुसाफिरों को अपना टिकट ट्रेन में चढ़ते उतरते समय ही दिखाना पड़ता है। प्लेटफार्म या ट्रेन में इसकी जाँच की कोई व्यवस्था नहीं रहती।

विद्युत् की सहायता से ये गाड़ियाँ खूब तेज़ चलती हैं; किन्तु स्टेशन पास-पास रहने के कारण इनकी गति पचीस मील से ज्यादा नहीं होती। लन्दन में यह ट्यूब रेल ९१ मील की दूरी में दौड़ती है, जिसमें सुरंग की राह से ६२ मील और शेष खुली राह से। इसके स्टेशनों की संख्या १९४ है और गाड़ियाँ लगभग २००० हैं। ये ट्रेनें सुबह ५ बजे से रात्रि के १२ बजे तक दौड़ती हैं। इनसे लगभग बीस लाख या इससे भी अधिक यात्री नित्य यात्रा करते हैं। इसी गाड़ी की लाइन लन्दन की

टेम्स नदी के नीचे से उस पार को गई है। नदी के ऊपर बड़े-बड़े जहाज चलते हैं और नीचे आदमियों से लदी गाड़ियाँ। कितना आश्चर्य, किन्तु कितना आनन्ददायक !

शब्दार्थ

मानव-जाति = मनुष्य जाति । अतीत = भूतकाल । अठखेलियाँ करना = खेलना, क्रीड़ा करना । विध्वंस = नाश । प्रचुर = बहुत । करिश्में = अद्भुत कार्य । आधुनिक = आजकल का । आमद-रफ़्त = आना-जाना । अंशतः = किसी अंश में । आच्छादित = ढका हुआ । प्रणाली = तरीका । आघात = चोट । व्यवस्था = प्रबन्ध । विद्युत् = बिजली । आनन्ददायक = आनन्द देनेवाला ।

रुपया

['रुपया ही सब कुछ है। दुनिया का हरेक आदमी इसी के लिए मरता-जीता है'—श्री पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने इसी रुपए की आत्मकथा के रूप में इसके व्यापक प्रभाव का जीवन्त वर्णन किया है। इसके साथ-साथ व्यंजना द्वारा उसकी सर्वशक्तिमत्ता की निन्दा भी की है।]

मैं लड़कों के लड़कपन का खिलौना हूँ, मिठाई हूँ। मैं जवानों की जवानी की जान हूँ, मस्ती हूँ। मैं बूढ़ों की बुढ़ौती की लकड़ी हूँ, सहारा हूँ। मैं रुपया हूँ।

मनुष्य मेरा गुलाम है। मैं उसे हजार नाच नचा सकता हूँ, नचा चुका हूँ, नचा रहा हूँ। दुनिया मुझसे दबती है। मैं उसे उलट सकता हूँ, उलट चुका हूँ, उलट रहा हूँ। प्रकृति मेरी वशवर्तिनी है। मैं उसे बनाता हूँ, बिगाड़ता हूँ, तोड़ता हूँ, मोड़ता हूँ। मैं रुपया हूँ।

इस विशाल विश्व में यदि कोई ईश्वर हो तो मैं हूँ, धर्म हो तो मैं हूँ, प्रेम हो तो मैं हूँ। मैं सत्य हूँ, मैं शिव हूँ, मैं सुन्दर हूँ। मैं सत् हूँ, मैं चित् हूँ, मैं आनन्द हूँ। परलोक मैं हूँ, लोक मैं हूँ, हर्ष मैं हूँ, शोक मैं हूँ, क्षमता मैं हूँ, ममता मैं हूँ। मैं रुपया हूँ।

मेरी झनझनाहट में जो अलौकिक मधुरिमा है वह वीणापाणि की वीणा में कहाँ? कोयल की कूक में कहाँ? मुरलीधर की मुरली में कहाँ? सितार-जलतरंग में कहाँ? यहाँ कहाँ? वहाँ कहाँ? मैं सप्त स्वरों से ऊपर अष्टम स्वर हूँ, परम मधुर हूँ। मैं रुपया हूँ।

गीता के गायको, भागवत के भक्तो, रामायण के अनुरागियो, महाभारत के माननेवालो—मेरा गीत गाओ, मेरा पाठ पढ़ो, मेरे भक्त बनो, मेरी कथा सुनो, मुझसे अनुराग करो। मुझे मानो, मेरी शरण आओ। भव-भय-हरण मैं हूँ, जन-दुख-हरण मैं हूँ। मैं रुपया हूँ।

मुझको आँख दिखाकर, मुझे ठुकराकर, मुझसे विद्रोह कर, कोई बच सकता है? कोई नहीं।

जमींदार मैं हूँ, राजा मैं हूँ, बादशाह मैं हूँ, बादशाहों का बादशाह मैं हूँ, मैं ईश्वर हूँ। मैं रुपया हूँ।

देवताओं में वह आकर्षण नहीं, जो मुझमें है। ईश्वर में वह तेज नहीं, जो मुझ में है। यह युग तर्क का है, प्रत्यक्षवाद का है। मैं प्रत्यक्ष हूँ, सद्यः फलदानी हूँ। मैं ईश्वर हूँ, ईश्वर से बड़ा हूँ। मैं रुपया हूँ।

मुझसे वरदान लेकर पाप करो, तुम देवताओं से पूजे जाओगे। मुझसे वरदान लेकर एक दो नहीं, सात खून करो—साफ बच जाओगे। साम्राज्य को साम्राज्य से भिड़ा दो। मनुष्यता की बढ़ी हुई खेती को बेरहमी से कटवा डालो—जलवा डालो। संसार को विधवाओं, बच्चों, बूढ़ों और अपाहिजों की हाय से भर दो। भूकम्प उठा दो, प्रलय कर दो; मगर मुझसे वरदान लेकर। मैं सर्वशक्तिमान हूँ। मैं रुपया हूँ—

"सबको छोड़कर मेरी ही शरण में आओ"।

शब्दार्थ

बुढ़ौती = बुढ़ापा। वशवर्तिनी = वश में रहनेवाली। विशाल = बड़ा। विश्व = संसार। शिव = कल्याण करनेवाला। क्षमता = सामर्थ्य। ममता = मोह। मधुरिमा = मिठास। वीणापाणि = सरस्वती। मुरलीधर = कृष्ण। भव-भय-हरण = (भगवान के पक्ष में) आवागमन के दुःख को दूर करनेवाला, (रुपये के पक्ष में) सांसारिक दुःखों को दूर करने-वाला। जन-दुख-हरण = मनुष्यों का दुख दूर करनेवाला। विद्रोह = बग़ावत, विरोध। प्रत्यक्षवाद = प्रत्यक्ष प्रमाण में ही विश्वास करने का सिद्धान्त। सद्यः = फ़ौरन। साम्राज्य = सलतनत।

———

शिकागो का रविवार

[स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के इस लेख में अमरीका के सुप्रसिद्ध नगर 'शिकागो' के निवासी रविवार की छुट्टी किस तरह मनाते हैं तथा इस नगर में कौन-कौन से स्थान दर्शनीय हैं, इन विषयों का वर्णन किया गया है। यह वर्णन मनोरंजक होने के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है]

शिकागो संसार के प्रसिद्ध नगरों में से एक है। जगद्विख्यात धनी जान-डी-राकफेलर का स्थापित विश्वविद्यालय यहीं पर है। अमरीका के बड़े-बड़े कारखाने यहीं पर हैं। इन कारखानों में हरएक क़ौम के लोग काम करते हैं। इतने बड़े प्रसिद्ध नगर के लोग अपने अवकाश का समय कैसे काटते हैं? वे अपना दिल कैसे बहलाते हैं? उस नगरी में देखने लायक क्या कुछ है? हम पाठकों के विनोदार्थ इन प्रश्नों का उत्तर इस लेख में देते हैं। आइए, आपको शिकागो की सैर करावें, इसके अजीब-अजीब दृश्य दिखावें और आपको बतलावें कि प्रसिद्ध नगरी में कौन-कौन स्थान दर्शनीय हैं। साथ ही हम इस नगर के निवासियों के रहन-सहन का ब्योरा भी देते जायँगे, जिसमें आपको अमरीका के इस प्रान्तवालों की जीवन-चर्य्या के विषय में भी कुछ ज्ञान हो जाय। इस काम के लिए हमने रविवार का दिन चुना है। उसी की महिमा हम इस लेख में वर्णन करेंगे। इससे हमारा

अभीष्ट भी सिद्ध हो जायगा और आपको यह भी मालूम हो जायगा कि शिकागो के निवासी रविवार की छुट्टी किस तरह मनाते हैं।

रविवार छुट्टी का दिन है। भारतवर्ष में छोटे-छोटे बच्चे, जो स्कूलों में पढ़ते हैं, वे भी यह बात जानते हैं। एशिया और अफ्रीका में जहाँ-जहाँ ईसाई लोगों का राज्य है, सब स्कूलों और दफ़्तरों में रविवार को छुट्टी रहती है। परन्तु रविवार की छुट्टी किस तरह मनानी चाहिए, यह बात ईसाई-धर्मावलम्बियों के बीच रहे बिना अच्छी तरह नहीं अनुभव की जा सकती। रविवार की छुट्टी मनाने के लिए शिकागो में कैसे स्थान बनाए गए हैं और किस प्रकार यहाँवाले जीवन का आनन्द लूटते हैं, इसका संक्षिप्त हाल सुनिए।

ईसाई-धर्म में रविवार को काम करना मना है। इसलिए सब दूकानें, पुस्तकालय, कारखाने आदि इस दिन बन्द रहते हैं। क्या निर्धन, क्या धनवान्, क्या नौकर, क्या स्वामी, क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या स्त्री, क्या पुरुष, सबके लिए आज छुट्टी है। दस या ग्यारह बजे, नियत समय पर, प्रातःकाल, प्रायः सब लोग अपने-अपने गिरजाघरों में जाते हुए दिखाई देते हैं। वहाँ ईश्वराराधना के बाद घर लौटकर भोजन करते हैं। फिर कुछ देर आराम करके सैर को निकलते हैं।

शिकागो बहुत बड़ा शहर है। संसार के बड़े शहरों में इसका तीसरा नम्बर है। यहाँ एक 'फ़ील्ड म्यूज़ियम' अर्थात्

अजायब-घर है। यह मिशिगन झील के किनारे, शिकागो विश्वविद्यालय से थोड़ी ही दूर पर है। रविवार को सवेरे नौ बजे से शाम के पाँच बजे तक सबको यहाँ मुफ़्त सैर करने की आज्ञा है। इसलिए इस दिन यहाँ बड़ी भीड़ रहती है। आठ नौ बरस के बालक और बालिकाएँ ऐसे ही स्थानों से अपनी विद्या का आरम्भ करते हैं। क्योंकि यहाँ पर संसार की उन सब अद्भुत वस्तुओं का संग्रह है, जो शिकागो के प्रसिद्ध विश्व-मेले में इकट्ठी की गई थीं। यहाँ यह बात यथाक्रम दिखलाई गई है कि पृथ्वी के ऊपर प्राणियों का जीवन, प्राकृतिक नियमों के अनुसार, किस प्रकार वर्तमान अवस्था को पहुँचा है। भूगर्भ-विद्या-सम्बन्धी पदार्थों को भिन्न-भिन्न कमरों में दरजे-ब-दरजे रखकर उनका क्रम-विकास अच्छी तरह बतलाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उत्तरी अमरीका के हिरन किस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओं में अपना रंग बदलते हैं। किस प्रकार प्रकृति-माता बर्फ़ के दिनों में उनको भोजन देती है। उत्तरीय ध्रुव में रहनेवाले रीछों के बर्फ़ के भीतर बने हुए घर क्या ही अच्छी तरह दिखाए गए हैं। यहाँ यह बात प्रत्यक्ष मालूम हो जाती है कि अमरीका के प्राचीन निवासी किन देवी-देवताओं की पूजा करते थे, कैसे घरों में रहा करते थे, किस प्रकार किन चीज़ों की मदद से पहनने के वस्त्र बनाते थे। उनकी नौकाएँ, उनके खाने-पीने का सामान, उनके देवालय, उनके युद्ध के शस्त्र, सब चीज़ें बहुत ही अच्छी तरह दिखाई

गई हैं। सबसे अधिक समर्थ प्राणी ही संसार में बाकी रहते हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि इन दृश्यों को देखते ही हो जाती है।

इस अजायब-घर के मध्य में महात्मा कोलम्बस की विशाल मूर्ति विराजमान है। इस जिनोआ-निवासी को देखकर दर्शक के मन में भाँति-भाँति के विचार उत्पन्न होने लगते हैं और एक अद्भुत दृश्य आँखों के सामने घूम जाता है। पुराने अमरीका और आज के अमरीका में कितना अन्तर है? वे यहाँ के प्राचीन निवासी कहाँ गए? पिछली तीन शताब्दियों में यहाँ की भूमि का कैसा रूप बदला है? कहाँ योरोप? कहाँ अमरीका? हज़ारों कोस का अन्तर! भारतवर्ष की तलाश में एक पुरुष भूल से इधर आ निकला है। उसका आना क्या है, यमराज के आने का संदेशा है। हज़ारों वर्षों से रहनेवाले, क्या पशु, क्या पक्षी, क्या मनुष्य—सभी तीन ही शताब्दी के अन्दर स्वाहा हो जाते हैं। करोड़ों भैंसे अमरीका के जङ्गलों में न जाने कब से आनन्दपूर्वक विचरते थे; पर आज उसका नामोनिशान तक नहीं मिलता। उन सब जीवों ने क्या अपराध किया था? क्यों एक दूर देश में बसनेवाली जाति, जिसका कोई अधिकार इस देश पर नहीं था, आकर यहाँ के असली रहनेवालों को नष्ट करने का कारण हुई? क्या यही ईश्वर का न्याय है? नास्तिकता से भरे हुए ऐसे ही प्रश्न यहाँ दर्शक के मन में उठते हैं। तत्काल एक आवाज़ कान में आती है—"प्रकृति का यह अटल सिद्धान्त है कि सबसे अधिक समर्थ, सबसे

अधिक योग्य ही का दुनिया में गुजारा है। यदि तुम अपना अस्तित्व चाहते हो तो अपने पास-पड़ोसवालों की बराबरी के बन जाओ। वही जाति अपना नाम संसार में स्थिर रख सकती है, जो इस नियम के अनुकूल चलती है।"

इस अजायब-घर में भिन्न-भिन्न विद्याओं के सम्बन्ध की सामग्री भी विद्यमान है। 'एक पंथ दो काज'—छुट्टी का दिन है, सैर भी कीजिए और कुछ सीखिए भी। उन्नति के कैसे अच्छे मौक़े यहाँ के निवासियों को दिए जाते हैं। बालकपन से ही खेल के बहाने यहाँवाले इतनी वाकफ़ियत हासिल कर लेते हैं, जो हमारे देश में दस बरस स्कूल में पढ़ने से भी नहीं होती।

अजायब-घर से बाहर निकलकर देखिए झील के किनारे-किनारे सड़क बनी है। बेंचें रक्खी हुई हैं। वहाँ स्त्री, पुरुष, बालक आनन्द से बैठे हैं और हँस-खेल रहे हैं। उनके चेहरों को देखिए—'स्वतन्त्रता' उनके माथे पर जगमगा रही है। इस समय भगवान सूर्य अपने दिन के कार्यों को पूर्णकर पश्चिम की ओर गमन करते हैं।

इस अजायब-घर के सिवा और भी बहुत-से स्थान शिकागो-निवासियों को रविवार मनाने के लिए हैं। कितने ही उद्यान (पार्क) ऐसे हैं, जहाँ 'पियानो' बाजे तथा मन बहलाने के और अनेक सामान रखे रहते हैं। वहाँ आकर लोग बैठते हैं, संगीत सुनते हैं और आनन्द-मग्न होकर घर जाते हैं।

यहाँ एक उद्यान है, जिसका नाम 'हम्बोल्ड-पार्क' है।

इसमें नहर के ढंग के जल के बड़े-बड़े कुंड हैं। उनमें जल भरा रहता है। छोटी-छोटी नावें पानी पर तैरा करती हैं। ये नावें खेल के लिए हैं। ग्रीष्म-काल में यहाँ नावों की दौड़ होती है। रविवार के दिन इन उद्यानों का दृश्य बहुत ही मनोहर हो जाता है। नवयुवक नौकाएँ खेते हुए हँसते, खेलते, गाते, जीवन का आनन्द लेते हैं। प्रायः सभी उद्यानों में ऐसे जल-कुंड हैं। जो स्थान जिसके निकट हो, वह वहीं जाकर रविवार को आनन्द मनाता है।

कोई शायद पूछे कि क्या और रोज़ वहाँ जाना मना है? ऐसा नहीं है। परन्तु कारण यह है कि अधिकांश लोगों को सिवा रविवार के और रोज़ छुट्टी ही नहीं मिलती; इसलिए रविवार को ही इन उद्यानों में लोग एकत्रित होते हैं। रोज़ सिर्फ़ कहीं-कहीं टेनिस खेलते हुए स्त्री-पुरुष दिखाई देते हैं। यह बात ग्रीष्म-ऋतु की है। जाड़ों में जब इन कुंडों का पानी जम जाता है, तब वहाँ पर लोग 'स्केटिंग' करते हैं। स्केटिंग एक प्रकार का खेल है। हर साल दिसम्बर में स्केटिंग का समय होता है।

लिंकन-उद्यान भी बहुत प्रसिद्ध है। इसमें अमरीका के विख्यात योद्धा वीरवर ग्राण्ड की मूर्ति है। घोड़े पर सवार ग्राण्ड, इस देश के इतिहास के ज्ञाता को एक भयंकर युद्ध का स्मरण कराते हैं। यह युद्ध गुलामों के व्यापार को बन्द कराने के लिए आपस में हुआ था। अमरीका के उत्तर के लोग चाहते थे कि

गुलामों का व्यापार बन्द हो जाय। उनका सिद्धान्त था—"स्वतन्त्रता की दृष्टि से सब आदमी बराबर हैं, जीवन और स्वतन्त्रता के स्वाभाविक नियमों में सबका हक एक-सा है। हम नहीं चाहते कि अमरीका-जैसे स्वतन्त्र देश में मनुष्य भेड़-बकरियों की तरह बिकें।" इस सत्य सिद्धान्त की रक्षा के लिए एक भयानक युद्ध उत्तर और दक्षिण के निवासियों में हुआ और परिणाम में सत्य की जय हुई। शूर-वीर ग्राण्ड इस युद्ध में उत्तरवालों की ओर से सेनापति थे। वे काले हबशियों को वैसा ही चाहते थे, जैसा कि गोरे चमड़ेवाले अमरीका के निवासियों को। इस महात्मा का स्मारक चिह्न दर्शक को एक नया जीवन प्रदान करता है। वह उसे सूचना देता है कि किसी मनुष्य को दूसरे पर शासन करने का अधिकार नहीं है। सब मनुष्य इस विषय में बराबर हैं। समाज एक यन्त्र की भाँति है; मनुष्य-समुदाय उसके पुरजे हैं। अपनी-अपनी योग्यतानुसार सब समाज के सेवक हैं। किसी से घृणा मत करो; क्या काला, क्या गोरा, सब एक ही पिता के पुत्र हैं।

इस उद्यान के एक भाग में भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधे रक्खे हुए हैं। जो वृक्ष जिस तापमान में जी सकता है, उसके अनुसार वहाँ उसे उष्णता पहुँचाई गई है और उसकी रक्षा की गई है। उष्ण देशों के अनेक वृक्ष यहाँ देखने में आते हैं। दर्शक को वनस्पति-विद्या-सम्बन्धी बहुत-सी बातें यहाँ मालूम हो जाती हैं।

उद्यानों के सिवा बहुत-से और भी स्थान लोगों के बैठने, उठने, हँसने, खेलने के लिए हैं। शिकागो बड़ा नगर है। इससे नगर-निवासियों के आराम और शुद्ध वायु की प्राप्ति के लिए, जगह-जगह पर गलियों में 'बुलवार्ड' नामक विहार-स्थल बनाए गए हैं। यहाँ की गलियाँ हमारे देश की-सी नहीं हैं। इन्हें हम गलियाँ न कहकर बाजार कह सकते हैं। पत्थर के मकानों के सामने सड़क के दोनों किनारों पर लोगों के चलने के लिए सड़क से ऊँचा, पाँच फुट के करीब रास्ता बना हुआ है। बीच की सड़क गाड़ी, घोड़े, मोटर आदि के लिए है। खुले मकानों और चौड़ी सड़कों के कोनों पर भी हवा साफ़ रखने के लिए और गरीब आदमियों के मनोरंजन तथा लाभ के लिए थोड़ी-थोड़ी दूरी पर विहार-वाटिकाएँ बनी हुई हैं, जहाँ बैठने के लिए बेंचें रक्खी रहती हैं। काम से थके हुए स्त्री-पुरुष रोज़ सायंकाल में यहाँ दिखाई देते हैं; क्योंकि और स्थानों में गाने-बजाने और जल-विहार आदि के लिए थोड़ा-बहुत खर्च करना पड़ता है, जो थोड़ी आमदनी के लोग नहीं कर सकते। उनके लिए ऐसे स्थानों, उद्यानों और अजायब-घरों में घूमने की स्वतन्त्रता है। यत्न यह किया गया है कि सबको इस स्वतन्त्र देश में आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिले। यहाँ जो धन व्यय किया जाता है, वह शारीरिक और मानसिक—दोनों प्रकार की उन्नति के लिए किया जाता है।

यह तो हुई दिन की बात, अब रात की सुनिए। यहाँ

सि

बहुत-से नाटक-घर, प्रदर्शनियाँ और समाज हैं, जहाँ अपनी-अपनी रुचि के अनुसार लोग रात को जाते हैं। शिकागो में लोग अकसर रात को भी गिरजों में जाते हैं। रात को भी वहाँ उपदेश, गायन और हरिकीर्तन होता है। यहाँ एक जगह 'ह्वाइट सिटी' (श्वेतनगर) है। बहुत-से लोग वहाँ जाते हैं। इस जगह को 'श्वेतनगर' इसलिए कहते हैं कि यहाँ बिजली की स्वच्छ रोशनी होती है, जिससे रात को भी दिन ही-सा रहता है। इसके विशाल द्वार पर बड़े मोटे-मोटे बिजली के प्रकाश के अक्षरों में 'दि ह्वाइट सिटी' लिखा हुआ है। बिजली की महिमा यहाँ खूब ही देखने को मिलती है। स्थान-स्थान पर प्रकाशमय रंग-बिरंगे अक्षर-चित्र बने हुए हैं, जो मिनट-मिनट में रंग बदलते हैं। इस श्वेतनगर के भीतर अनेक मनोरंजक स्थान हैं; कहीं पर गाना हो रहा है, कहीं बड़े-बड़े 'हॉलों' में नाच हो रहा है; कहीं 'सरकस' का तमाशा है। दुनिया-भर के तमाशा करनेवाले यहाँ लाए जाते हैं। गरमी के दिनों में तीन-चार मास में वे हज़ारों रुपये कमा लेते हैं। यह श्वेतनगर एक कम्पनी का है। उसके नौकर सारी दुनिया में तमाशा करनेवालों को लाने के लिए घूमा करते हैं। भारतवर्ष के यदि दो-तीन अच्छे-अच्छे पहलवान, किसी देशी कम्पनी के साथ, अमरीका में आवें तो हज़ारों रुपये कमाकर ले जाएँ। हमारे देश में अभी लोगों ने रुपया पैदा करने का ढंग नहीं सीखा। एक साधारण मनुष्य इंगलिस्तान से आकर, हिन्दुस्तान में

विज्ञापनों-द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करके, लाखों बटोरकर ले जाता है, परन्तु हमारे स्वदेशी कारीगर, पहलवान, बाजीगर आदि कभी इस ओर आने का साहस नहीं करते।

इस श्वेतनगर में रविवार को बड़ा भारी मेला होता है गाड़ियाँ स्त्री-पुरुषों से लदी हुई जाती हैं। हजारों दर्शक इकट्ठे होते हैं। रात के ८ बजे से ११ या १२ बजे तक मेला रहता है। यह स्थान केवल गरमियों में खुलता है; क्योंकि जाड़ों में शीत के कारण यहाँ कोई नहीं आता। शीत-ऋतु के लिए नगर के भीतर और अनेक स्थान हैं, जहाँ और ही तरह के मनोरंजक खेल होते हैं।

शब्दार्थ

जगद्विख्यात = दुनिया में मशहूर। अवकाश = फ़ुरसत। विनोद = आनन्द। दर्शनीय = देखने लायक। अभीष्ट = प्रयोजन। ईश्वराराधन = ईश्वर की उपासना। तलाश = खोज। यमराज = मृत्यु का देवता। स्वाहा = नष्ट। अस्तित्व = वर्त्तमान रहना। वाकफ़ियत = जानकारी। स्मारक-चिह्न = यादगार। उष्णता = गर्मी। विहार-स्थल = आनन्द-स्थान। शारीरिक = शरीर-सम्बन्धी। मानसिक = मन-सम्बन्धी। शीत = ठंढ।

हमारा देश

[श्रीकालिदास कपूर ने अपने इस लेख में हिन्दुस्तान के विभिन्न नामों का इतिहास, उसकी अनोखी भौगोलिक स्थिति तथा उसकी अन्य विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन करते हुए भारतभूमि के वसुन्धरा कहे जाने की सार्थकता प्रमाणित की है।]

जिस देश में हम रहते हैं उसे भारतवर्ष, हिन्दुस्तान या हिन्द कहते हैं। देश का पुराना नाम भारतवर्ष ही है और यह नाम इस तरह पड़ा कि भरत नाम के हमारे एक पुरखा थे। कहा जाता है कि उन्हीं ने सबसे पहले इस देश को बसाया था। हिन्दुस्तान या हिन्द नाम तो विदेशियों का दिया हुआ है। हमारे देश में बहुत-से लोग समय-समय पर बाहर से आते रहे। जिस समय आए, उस समय तो वे विदेशी थे, परन्तु जब यहाँ आकर बस गए, तो यहीं के हो गए। इन बाहरवालों में से बहुत-से लोग उत्तर-पश्चिम के रास्तों से सिन्धु नदी पार करके इस देश में आए अर्थात् सिन्धु नदी ही उनके लिए इस देश की सीमा थी। भारतवर्ष के उत्तर-पश्चिम में जो देश हैं, उनमें सिन्धु नदी को हिन्द कहते हैं। इसलिए सिन्धु नदी के नाम पर इस देश का नाम हिन्द, फिर हिन्दुस्तान पड़ा और यहाँ के रहनेवाले हिन्दी या हिन्दू कहलाने लगे।

दुनिया का नकशा देखिए। हमारा देश उस महाद्वीप में है जिसे यूरेशिया कहते हैं। उस महाद्वीप के भी दो भाग हैं।

पश्चिमी भाग का नाम यूरोप है और पूर्वी भाग का नाम एशिया। भारतवर्ष एशिया के दक्खिन में है।

हमारे देश को प्रकृति ने इस तरह बनाया है कि कोई भी विदेशी आसानी से यहाँ नहीं आ सकता। लेकिन फिर भी हम दुनिया की बिरादरी से अलग नहीं रहे। उत्तर में हिमालय पहाड़ बहुत ऊँचा है। इसे कोई भी पार नहीं कर सकता। पूरब में पहाड़ बहुत ऊँचे नहीं हैं, तो भी उनपर इतने घने जंगल हैं कि ये भी दुर्गम ही हैं। परन्तु पश्चिम में जो पहाड़ियाँ हैं, वे बहुत सूखी हैं और इस देश में आने के लिए उनमें बहुत-से रास्ते भी हैं, जिन्हें दर्रे कहते हैं। इनके द्वारा अफ़गानिस्तान और फ़ारस ऐसे देशों से हमारे देश का सम्बन्ध बहुत पुराने समय से है। इस देश में जो लोग बाहर से आकर बसे, उनमें से बहुतेरे इन्हीं रास्तों से आए। पूरब में बंगाल की खाड़ी और दक्खिन-पश्चिम में अरबसागर भी बड़े विकट हैं। बरसात के मौसम में इनमें बड़े-बड़े तूफान आया करते हैं। इसीलिए ये समुद्र भी बहुत समय तक हमारे देश को अन्य देशों से मिलने की राह में रुकावट डालते रहे। परन्तु तो भी हमारा थोड़ा-बहुत व्यवहार और मिलना-जुलना समुद्री रास्तों द्वारा रूम, अरब, फ़ारस, जावा, स्याम, इंडोचीन और चीन ऐसे देशों से होता रहा। जब से मनुष्य ने भाप से चलनेवाले बड़े-बड़े जहाज बनाकर समुद्र को जीत लिया है, तब से तो हमारे देश का दूसरे देशों से बहुत-कुछ सम्बन्ध समुद्री रास्तों से

ही हो गया है। हमारे देश पर जिन विदेशियों का इस समय राज्य है वे समुद्री मार्ग से ही इस देश में आए हैं।

हमारा देश बहुत बड़ा है। इसकी बड़ाई का अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है कि यदि आप उत्तर से दक्खिन, काश्मीर से कुमारी अन्तरीप तक, दस मील रोज़ चलकर पार करें तो कम से कम आठ महीने चाहिए। और इतना ही समय पूरब से पश्चिम, आसाम से सिन्ध तक, पार करने में लगेगा। यह देश इतना बड़ा है कि कोई भी महीना हो, आपको इसमें हर प्रकार का जलवायु मिल सकता है। गर्मियों में सर्दी का अनुभव करना हो तो हिमालय के किसी पहाड़ी स्थान पर चले जाइए। बरसात में सूखी सैर का शौक हो तो सिन्ध या राजपूताने का दौरा कर डालिए और जाड़ों में भी बिजली के पंखे की हवा खानी हो तो मद्रास चले जाइए। कोई ऐसा फल नहीं, कोई ऐसा अन्न नहीं, जो इस देश में न होता हो। हमारे पुरखों ने हमारे देश की भूमि को वसुन्धरा कहा है, जो आज तक अपने इस नाम को सार्थक बना रहा है।

शब्दार्थ

पुरखा = बाप-दादा। बिरादरी = सम्बन्ध, रिश्ता। दुर्गम = कठिन। दर्रा = दो पहाड़ों के बीच का रास्ता। वसुन्धरा = पृथ्वी (चूंकि पृथ्वी अपने अन्दर वसुओं अर्थात् रत्नों को धारण करती है इसलिए वह वसुन्धरा कहलाती है)।

स्काउट

[इस लेख में लेखक ने 'बालचर' संस्था का इतिहास, उसके नियम और उसकी उपयोगिता इन तीन विषयों का प्रतिपादन संक्षेप में किन्तु बड़ी स्पष्टता से किया है।]

स्कूलों में बहुत-से लड़के ख़ाकी कमीज़, ख़ाकी जाँघिया पहने और हरा साफ़ा बाँधे दिखाई देते हैं। जब ये सब अपनी वरदियाँ पहने एक साथ चलते हैं, तो मालूम होता है कि छोटे-छोटे सिपाही जा रहे हैं। इन्हें 'स्काउट' कहते हैं।

ख़ाकी कमीज़, जाँघिये और हरे साफ़े के सिवा 'स्काउट' के पहनावे में और भी कई ख़ास बातें हैं, जो सब लोगों के पहनावे में नहीं होतीं। ये अपने गले में एक रूमाल बाँधते हैं, घुटनों तक के मोज़े पहनते हैं। इनकी कमीज़ में दाहिने-बाएँ दो जेबें होती हैं, जिनके मुँह ढके होते हैं और ये सब एक चाकू और एक रस्सी भी अपने पास रखते हैं।

स्काउट ज़रूरत के वक्त सभी लोगों के बहुत काम आते हैं। सभा का इन्तज़ाम करते हैं, अन्धे-अपाहिजों की मदद करते हैं, भूले-भटकों को रास्ता बताते हैं, बीमारी में दुखियों की ख़बर लेते हैं। किसी के घर में आग लग जाती है तो अपनी जान जोखिम में डालकर आग बुझाते हैं। इनके सामने कोई आदमी तालाब में डूबने लगता है या कुएँ में गिर जाता है तो फ़ौरन उसकी जान बचाते हैं। ये लड़के तरह-तरह से लोगों

का हाथ बटाने को तैयार रहते हैं। इनसे सबको बहुत मदद पहुँचती है। स्काउट इन सब कामों का किसी से कुछ बदला नहीं लेते। लोग इनकी बहुत इज़्ज़त करते हैं।

हमारे देश में स्काउट हज़ारों और लाखों की तादाद में हैं। मेलों, तीर्थ-स्थानों और सभाओं वगैरह में बहुत-से स्काउट दिखाई दिया करते हैं। वे सब वहाँ का इन्तज़ाम करते हैं, भीड़ के समय लोगों को सैकड़ों आफ़तों से बचाते हैं, खोए हुए बच्चों और औरतों का पता लगाते हैं, कमज़ोर और बूढ़ों को सहारा देते हैं, बीमारों की देख-भाल करते हैं और चोर-उचक्कों से लोगों का माल बचाते हैं।

सबसे पहले स्काउट का रवाज विलायत में शुरू हुआ था। इसकी नींव का भी इतिहास है। सन् १९०० ई० में अफ्रीका के बोअरों और अंग्रेज़ों में लड़ाई हुई। उस लड़ाई में जब अंग्रेज़ी फ़ौज के सिपाहियों की तादाद बहुत कम रह गई, तब फ़ौज के अफ़सर (बेडन पावेल) ने बहुत-से लड़कों को जमा किया और उनको फ़ौजी क़वायद सिखाने लगे। ये लड़के फ़ौजी वरदी पहनकर बहुत खुश होते थे, बड़े चाव से क़वायद सीखते थे और फ़ौज के बहुत-से काम करते थे। उस वक्त वहाँ रेल नहीं थी, इसलिए ख़बरें भेजना एक कठिन काम था। इन स्काउट लड़कों ने ख़बरें पहुँचाने में फ़ौज को बहुत मदद पहुँचाई। ये लड़के चौकीदार और सिपाहियों की तरह पहरा देने का काम भी करते थे और चाहे तोपें चलती हों या

बन्दूक की गोलियाँ बरसती हों, मगर ये बराबर अपना काम करते ही रहते थे। इन स्काउट लड़कों ने ऐसी बहादुरी से काम किया कि अंग्रेज़ों ने लड़ाई जीत ली। इनकी हिम्मतें देखकर बेडन पावेल साहब के दिल में यह खयाल पैदा हुआ कि इंगलैंड पहुँचकर सब स्कूलों में स्काउट की टोलियाँ खुलवा देंगे।

जब बेडन पावेल साहब लड़ाई के सब कामों से निबटकर इंगलैंड पहुँचे, तो उनके कहने से वहाँ के सब स्कूलों में टोलियाँ बना दी गईं और उनका नाम 'ब्वॉय स्काउट' रखा गया। इन टोलियों का रवाज बढ़ते-बढ़ते अब दुनिया के कोने-कोने में फैल गया है और अब हर जगह स्काउट दिखाई देते हैं।

पहले तो 'ब्वॉय स्काउट' की जमात में एक तरह से उन्नीस साल तक के लड़के शामिल किए जाते थे। मगर लड़कों का शौक देखकर अब छोटे बच्चों को भी इस जमात में शामिल किया जाने लगा। बारह वर्ष तक के बच्चों को 'कब्स' (शेर के बच्चे) कहते हैं और उनसे बड़े 'स्काउट' कहलाते हैं। दोनों की पहचान यह है कि एक 'कब' दूसरे 'कब' को दो उँगलियों से प्रणाम करता है और जब दो स्काउट एक दूसरे से मिलते हैं, तो आपस में तीन उँगलियों से प्रणाम करते हैं।

स्काउटों की जमात कई हिस्सों में बाँट दी जाती है। हर एक हिस्सा ट्रूप कहलाता है। हर-एक ट्रूप में नौ-नौ लड़कों के कई पैट्रोल (दल) रहते हैं। पहचान के लिए हर पैट्रोल का नाम

किसी जानवर या किसी मशहूर आदमी के नाम पर रक्खा जाता है। पैट्रोल का अफ़सर 'पैट्रोल लीडर' कहलाता है। स्काउट का काम सिखानेवाले का नाम 'स्काउट मास्टर' है।

जब कोई लड़का स्काउट की जमात में भरती होता है, तो उसको तीन प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती हैं।

पहली प्रतिज्ञा—'मैं ईश्वर, देश और राजा के प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करूँगा।'

दूसरी प्रतिज्ञा—'मैं सबकी भलाई करूँगा।'

तीसरी प्रतिज्ञा—'मैं स्काउट के सभी नियमों का पालन करूँगा।'

जो लड़का ये तीन प्रतिज्ञाएँ कर लेता है उसको स्काउट बना लेते हैं। 'कब' को शुरू की सिर्फ़ दो प्रतिज्ञाएँ ही करनी पड़ती हैं।

स्काउट की सबसे ज़्यादा कीमती चीज़ इज़्ज़त है। जब वह इज़्ज़त की कसम खाकर कहता है, तो सब लोग उसकी बात मान लेते हैं। जब उसका अफ़सर कोई हुक्म देकर कहता है कि मैं इस काम को तुम्हारी इज़्ज़त पर छोड़ता हूँ, तो स्काउट उस काम में अपनी जान तक लड़ा देता है। मुसीबत से घबराना तो जानता ही नहीं। बड़ी-से-बड़ी कठिनाइयों में भी उसकी हिम्मत बँधी रहती है। वह कभी एक पैसा भी बेकार नहीं खर्च करता। सबसे मीठी बात करता है और ज़बान से वही बात कहता है, जो उसके दिल में होती है। ये ही सब बातें स्काउट के क़ायदे और क़ानून हैं, जो हर स्काउट में पाई जाती हैं।

शब्दार्थ

साफ़ा = पगड़ी । वरदी = पोशाक । इन्तज़ाम = प्रबन्ध । अपाहिज = लूला-लँगड़ा । जोखिम = खतरा । तादाद = संख्या । उचक्का = गठरीमार, ठग । क़वायद = 'ड्रिल' । रवाज = प्रचार । मुसीबत = आपत्ति । क़ायदे और क़ानून = नियम ।

हवाई लड़ाई

[पहली हवाई लड़ाई कब और कहाँ लड़ी गई, हवाई जहाज़ों के प्रकार और उनके विविध उपयोग तथा हवाई हमलों से बचने के उपाय आदि के सम्बन्ध की अनेक जानने योग्य बातें इन पंक्तियों में सरलता से कही गई हैं।]

पहले जबकि लड़ाई ज़मीन पर हुआ करती थी, लोग मज़बूत क़िलों, ऊँची-ऊँची दीवारों और गहरी खाइयों की मदद लेकर अपनेको बचाते थे। पर जब से हवाई लड़ाई शुरू हो गई है ये सभी बातें बेकार हो गईं। क्योंकि हवाई जहाज़ को तो कोई भी अड़चन रोक नहीं सकती, हाँ, बहुत ऊँचे पहाड़ों को तो वह अवश्य ही आसानी से पार नहीं कर सकता। उसे रोकने के लिए और उससे लड़ने के लिए हवाई जहाज़ ही काम में आते हैं। साथ-साथ कुछ तोपें ज़मीन पर से हवाई जहाज़ों पर हमला करती हैं।

सबसे पहली हवाई लड़ाई की कोशिश सन् १९०८ में हुई थी। फ्रान्स के दो आदमियों ने लड़ने की ठानी और वे गुब्बारों की मदद से आकाश में पहुँच गए। आपस में गोली चली। एक की गोली दूसरे के गुब्बारे में लगी और वह फट गया। फटते ही गुब्बारे की गैस निकल गई और उस गुब्बारे का आदमी ऊपर से गिरकर मरगया। विजयी कुछ दूर पर उतर गया। यह पहली हवाई लड़ाई थी। पर अब तो हवाई लड़ाई में इतनी तरक्की हो गई है कि वह कोई हँसी-खेल नहीं है। हज़ारों जानें पल भर में चली जाती हैं और शहर बरबाद हो जाते हैं।

लड़ाईवाले हवाई जहाज़ दो तरह के होते हैं। एक तो वे जो हवा में सिर्फ़ दूसरे हवाई जहाज़ों से लड़ते हैं और दूसरे वे जो और काम करते हैं। जैसे, ऊपर से बम गिराना, शत्रु की देख रखना और उसका सब हाल जानना। लड़ाई में हवाई जहाज़ कुछ ऐसे काग़ज भी गिराते हैं जिनपर उनके मतलब की बातें छपी रहती हैं और छतरी या पैराशूट से सिपाही भी उतारते हैं। इन लड़ाई के हवाई जहाज़ों में मशीनगनें लगी रहती हैं। इन्हीं की मदद से शत्रु पर हमला किया जाता है। कुछ हवाई जहाज़ों में सिर्फ़ एक मशीन लगी होती है और कुछ में दो।

हवाई लड़ाई में एक-एक, दो-दो हवाई जहाज़ भी आपस में लड़ सकते हैं, पर ज्यादातर वे इकट्ठे मिलकर ही लड़ते हैं।

सैकड़ों हवाई जहाज़ एकदम चढ़ाई करते हैं और आकाश में हवाई जहाज़ों के बादल-से छा जाते हैं। उस समय तो ऐसा मालूम होता है जैसे टिड्डी-दल आ गया हो, पर ये हवाई जहाज़ टिड्डियों की तरह सब कहीं नहीं उड़ने लगते। बल्कि कतारों में चलते हैं और ऐसा त्रिभुज-सा बना लेते हैं जैसे दो नदियाँ आकर मिल रही हों। ये सब हवाई जहाज़ एक ऊँचाई पर भी नहीं उड़ते। आगेवाला सबसे नीचा और पिछला सबसे ऊँचा रहता है। हवाई जहाज़ों की एक सीढ़ी-सी बन जाती है। ये इस तरह इसीलिए फैले रहते हैं कि आपस में एक दूसरे को देख सकें और एक की गोली दूसरे को न लग जाय। ऊँचाई पर उड़नेवाला हवाई जहाज़ फ़ायदे में रहता है। क्योंकि ऊपर चढ़ने से नीचे उतरना आसान है। इस तरह अगर दुश्मन का हवाई जहाज़ नीचे है तो वह जल्दी से नीचे को डुबकी लगाता है और उसपर हमला करता है। गोली हर तरफ़ छोड़ी जा सकती है पर आगे और पीछे की ओर गोली दागना ही सबसे अच्छा रहता है। दुश्मन की गोलियों की बौछाड़ से बचने का सबसे अच्छा उपाय है ऊपर को गोता लगा जाना। हवाई लड़ाइयाँ सिर्फ़ दिन में ही नहीं होतीं, बल्कि रात में भी होती हैं। रात की हवाई लड़ाई और भी भयानक होती है। रात की लड़ाई में हवाई जहाज़ झुंड-के-झुंड उड़ने के बजाय अलग-अलग उड़ते हैं।

हवाई जहाज़ों से समुद्र और ज़मीन दोनों की फ़ौजों को बहुत मदद मिलती है। वे उनकी हिफ़ाज़त करते हैं और उन्हें हमेशा दुश्मन की सभी ख़बरें देते रहते हैं। हवाई जहाज़ पर से शत्रुओं की तसवीरें भी खींच लेते हैं। पर हवाई जहाज़ का सबसे ज़रूरी काम तो दुश्मन के ऊपर बम के गोले गिराना है। बम के गोलों की मार से शहर और क़सबों की इमारतें ढह जाती हैं और उनमें रहनेवाले लोग मर जाते हैं। जिन शहरों और क़सबों के ऊपर हवाई लड़ाई होती है वहाँ के सब कामों में बाधा पड़ जाती है और लड़ाई के वक्त घर से बाहर निकलना भी बन्द हो जाता है। रेल के पुल और लाइनें बरबाद हो जाती हैं। फ़ौज के अड्डों और युद्ध के सामान बनानेवाले कारख़ानों का नाश करके शत्रु को हराने में यह गोलों की वर्षा बड़ी मदद करती है।

हवाई जहाज़ पर से दो तरह के बम गिराए जाते हैं। एक वे, जिनके फटने से धुएँ के बादल छा जाते हैं और धुएँ की चादर-सी फैल जाती है जिसके आर-पार कुछ दिखाई नहीं देता। दूसरी तरह के बम नाशकारी होते हैं। ये भी दो तरह के होते हैं। एक तो शत्रु की इमारतों और कारखानों को बरबाद कर देने के लिए और दूसरे फ़ौज को मारने के लिए गिराए जाते हैं। पहले के फटने से आग लग जाती है और इमारतें जलने लगती हैं; दूसरे के फटते ही धातु के टुकड़े सब ओर फैल जाते हैं और लोगों को घायल कर देते हैं। ऊपर से

हवाई जहाज़ अंदाज से ही बम की बौछाड़ नहीं करते। उन्हें हमेशा शत्रु की सभी जगहों की पूरी जानकारी रहती है।

हमला करने की चीज़ें जितनी बढ़ती जा रही हैं उतनी ही उनसे रक्षा की भी। इन बमबाज़ों को भगाने के लिए आकाश में हवाई जहाज़ों में घोर युद्ध होता है, और नीचे से भी उनपर गोलियों की मार पड़ती है। ज़मीन पर सभी बड़ी और सुन्दर इमारतों के चारों ओर से बालू भरे हुए बोरे चुन दिए जाते हैं जिससे धक्के का ज़ोर धीमा पड़ जाय। जगह-जगह पर बहुत तेज़ बिजली की बत्ती रहती है जो रात में आकाश की तरफ़ रोशनी फेंकती है और जैसे ही दुश्मन का कोई हवाई जहाज़ ऊपर आता है फ़ौरन दिखलाई पड़ जाता है। जब हवाई हमले की दहशत होती है, शहर में ख़बर भेज दी जाती है और सारे शहर की बत्तियाँ बुझा दी जाती हैं, जिससे शत्रु को कुछ भी पता न चले और लोग बम से न टूटनेवाले मकानों या तहख़ानों में छिप जाते हैं। फिर धड़ाधड़ लड़ाई होती है और हवाई जहाज़ों की तेज़ चाल होते हुए भी उनपर निशाना लगाया जाता है।

शब्दार्थ

गुब्बारा='बैलून'। कतार=पंक्ति। दहशत=भय। तहख़ाना=वह कोठरी या घर जो ज़मीन के नीचे बना हो।

कुत्ते

[इस लेख में कुत्तों के सम्बन्ध में बहुत-सी मनोरंजक बातों का उल्लेख किया गया है और दिखलाया गया है कि अपनी बुद्धि, स्वामिभक्ति तथा सुनने और सूँघने की विशेष शक्ति के कारण उनके द्वारा युद्ध में भी अनेक प्रकार की सहायता मिलती है।]

किसी समय में ईरान में कुत्तों का काटने से पहले भूँकना एक गुनाह समझा जाता था और उन्हें कड़ी सजा दी जाती थी। आजकल भी कुत्तों के मुकदमे आदमियों की तरह ही होते हैं। अभी हाल में अमरीका में एक कुत्ते पर खून करने का दोष लगाया गया था। उसका नाम 'बॉब' था और उसने तीन आदमियों को काटा था। मुकदमा अमरीका की सबसे बड़ी कचहरी में हुआ था और अमरीका के एक बहुत बड़े वकील बॉब की तरफ़ से जिरह कर रहे थे।

अगर कुत्ते आदमियों की तरह सज़ा भोगते हैं तो वे उनकी तरह काम भी करते हैं। लड़ाई में कुत्ते ऐसे काम कर दिखलाते हैं जो कि सिपाहियों से हो ही नहीं सकते। लड़ाईवाले कुत्तों को बहुत अच्छी तरह से सिखलाया जाता है। कुत्तों के स्कूल इंगलैंड, फ्रांस, बेल्जियम, इटली वगैरह सभी जगह हैं। इन स्कूलों में कुत्तों को पत्र ले जाने और टोह लगाने से लेकर रसद पहुँचाने, गोले, बारूद और निश्चित समय पर फूटनेवाले साधारण और गैस के बमों को ले जाने तक की शिक्षा दी

जाती है। जब वे स्कूल से निकलते हैं तब होशियार और बहादुर सिपाही होते हैं। कहा जाता है कि कुत्ता काम के वक्त कभी सोता नहीं और अपनी पहचानी हुई जगह में तो वह बहुत ही अच्छा काम करता है।

लड़ाई में कुत्तों का सबसे बड़ा काम एक जगह से दूसरी जगह पर खबरों का पहुँचाना है। लड़ाई में पूरी फ़ौज एक जगह पर नहीं रहती। फ़ौज की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ आगे-पीछे हो जाती हैं और वे खाइयों में छिपकर बैठती हैं। दोनों तरफ़ से सन्-सन् गोली चलती है। ऐसे समय में किसी भी सिपाही का खाई से निकलकर दूसरी जगह खबर ले जाना अपनी जान खोना है। होशियार और तेज़ दौड़नेवाले कुत्ते ही इस काम को करते हैं। कुत्तों की बोली आदमियों की समझ में नहीं आती। इसलिए कुत्ते के गले में चिट्ठी बाँध दी जाती है, और वह उस चिट्ठी को निश्चित जगह पर पहुँचा देता है।

चीन और जापान की इसी लड़ाई में जापानी सिपाहियों की एक टोली अपनी फ़ौज से अलग हो गई। जापानी फ़ौज का सेनापति अपनी आगे बढ़ी हुई टोली के पास कुछ ख़बर भेजना चाहता था। मगर लड़ाई बड़े ज़ोरों से हो रही थी। इसलिए उसने 'सुमोरिना' और 'शिभोयामा' को बुलाया। ये दोनों कुत्तों के मास्टर साहब थे। 'शिभोयामा' कुत्तों को अपने साथ लेकर किसी तरह से खेतों में छिपता-छिपता

आगेवाली खाइयों में पहुँच गया। जापानी सेना के इन कुत्तों के नाम 'सकूरा' और 'ब्लैक' थे। उधर से 'सकूरा' जवाबी चिट्ठी अपने गले में बँधवाकर लौटा और सीधा 'सुमोरिना' के पास जा पहुँचा। 'सुमोरिना' ने चिट्ठी खोलकर सेनापति को दे दी। 'सकूरा' जवाब लेकर फिर आगे की टुकड़ी के पास गया और उधर से चिट्ठी लेकर फिर लौटा। वह फ़ौज से कोई दो सौ गज़ की दूरी पर ही था कि 'सुमोरिना' ने उसे देख लिया और वह ज़ोर से चिल्ला उठा—"सकूरा योशी कोई" (जिसका अर्थ है, "सकूरा, आओ, आओ")। 'सुमोरिना' की पुकार सुनकर 'सकूरा' में नया जोश आ गया। वह और तेज़ भागने लगा। मगर जब वह कोई पचास गज़ की दूरी पर ही रह गया था, चीनियों की तरफ़ से एक गोली आई और उसको लग गई। वह वहीं पर गिर पड़ा। 'सुमोरिना' से 'सकूरा' की यह हालत न देखी गई और वह रोकने पर भी खाई में से निकला और कुत्ते की तरफ़ दौड़ा। 'सुमेरिना' ने फिर 'सकूरा' को पुकारा। घायल 'सकूरा' उठा और लड़खड़ाता हुआ उसकी तरफ़ चला। मगर थोड़ी ही देर में वह फिर गिर गया। उससे आगे न बढ़ा गया। इतने में एक गोली आई और 'सुमोरिना' भी घायल होकर 'सकूरा' से बिना मिले ही गिर पड़ा। यह देखते ही खाई में से एक सिपाही दौड़ा और 'सुमोरिना' को उठा लाया। वह खुद भी घायल हो गया।

थोड़ी देर बाद 'सुमोरिना' को जब होश आया तो उसने फिर 'सकूरा' को पुकारा। इतने में गिरता-पड़ता 'सकूरा' भी खाई में घुसा। दोनों ने एक दूसरे को प्रेम से देखा और मर गए।

लड़ाई में कुत्ते और भी बहुत-से काम करते हैं। लड़ते हुए सिपाही जब घायल हो जाते हैं तो वहीं पर पड़े रह जाते हैं। यह भी पता नहीं चलता कि घायल सिपाही कहाँ पर पड़ा है। इन्हें ढूँढ़ने में सैनिक कुत्ते बड़ी मदद करते हैं। अगर कुत्ता किसी घायल सिपाही को ढूँढ़ लेता है तो हल्ला नहीं मचाता, बल्कि उसके पास जाकर खड़ा हो जाता है। कुत्तों की गर्दन में घायलों को पहली सहायता (फ़स्ट एड) देने की पट्टी और कुछ दवा बँधी रहती हैं। घायल इन्हें खोल लेता है और इस्तेमाल करता है। अगर वह ज़्यादा घायल होता है और अपने-आप अपनी मरहम-पट्टी नहीं कर सकता है तो कुत्ता उसकी वरदी में से एक टुकड़ा फाड़ लेता है और डाक्टर के पास जाकर उस टुकड़े को दिखलाकर डाक्टर को घायल के पास पहुँचा देता है। इसी तरह पिछली बड़ी लड़ाई में फ्रांस में एक कुत्ते ने लाशों के ढेर में से कई घायल सिपाही ढूँढ़-निकाले थे।

लड़ाई में तोपें वगैरह इस तरह से छिपाकर रक्खी जाती हैं कि उनका पता शत्रु को न लग जाय। मगर कुत्ते तो बड़े चालाक होते हैं, वे सब कुछ ढूँढ़ लेते हैं और शत्रु के सब हथियारों का पता लगा लेते हैं। कुत्ते शत्रु की चाल और

हमलों का सब हाल अपने मालिक को देते रहते हैं। कुत्तों की सुनने या सूँघने की शक्ति बहुत तेज़ होती है। इसी से उन्हें दूर से ही पता चल जाता है। कुत्ते बहुत ही अच्छे स्काउट और संतरी होते हैं। पिछली लड़ाई में अमरीका के सिपाहियों की एक टोली पर जहरीली गैस छोड़ी गई। इसका पता कुत्ते को पहले से चल गया था और उसने आकर खबर दे दी। सैकड़ों सिपाहियों की जानें बच गईं। उस कुत्ते को एक मेडल दिया गया और मरने पर वह बड़ी शान से गाड़ा गया।

अब की लड़ाई में इन कुत्तों के लिए एक और काम निकल आया है। आप जानते हैं कि अब बहुत से सिपाही 'पैराशूट' से एकान्त में उतरने लगे हैं। इनको ढूँढ़ने का काम भी कुत्तों को ही करना पड़ता है। कुत्ते चोर, खूनी, डाकू वगैरह को पकड़ने में बड़े होशियार होते हैं। वे घनी झाड़ियों में छिपे हुए मनुष्य तक को खोज लेते हैं। आग में जलने से और पानी में डूबने से आदमियों को बचाने के लिए तो कुत्ते मशहूर ही हैं। 'न्यू फाउंडलैंड' के कुत्तों ने तो कई बार डूबते जहाज़ों पर के मनुष्यों की बहुत मदद की है। बोट्सबेन नाम के एक कुत्ते ने तो समुद्र में डूबते हुए नेपोलियन को बचाया था।

कुत्ते हम लोगों की बहुत सहायता करते हैं, और इसी से हम उनको प्यार करते हैं और उनकी यादगार बनाते हैं। फ्रांस में एक कब्रिस्तान है जिसमें १५,००० कुत्तों की कब्रें हैं। स्कॉटलैंड में एक कब्रिस्तान के दरवाजे पर एक कुत्ते की मूर्ति बनी हुई है।

उस कुत्ते का नाम बौबी था। कहते हैं, उस कब्रिस्तान में बौबी के मालिक की कब्र है और इसी कब्र के पास बौबी १३ वर्ष तक बराबर बैठा रहा था। वह वहाँ से मरने पर ही हटा। बौबी केवल खाने के लिए थोड़ी देर को, दोपहर में वहाँ से हटता था।

फ्रांस में सीन नदी के बीच में एक अनोखी ही प्रतिमा है। यह बेरी नाम के एक कुत्ते का स्मारक है। इस मूर्ति में एक कुत्ता बना है और उसकी पीठ पर एक बच्चा बैठा है। बच्चा अपनी दोनों बाहें कुत्ते की गर्दन के चारों तरफ़ लपेटे हुए है। इस प्रतिमा के नीचे लिखा हुआ है—"इसने चालीस आदमियों की जानें बचाईं और अन्त में इकतालीसवें मनुष्य की रक्षा करते समय स्वयं काल की भेंट चढ़ गया।"

शब्दार्थ

गुनाह = अपराध। टोह = पता। रसद = खाने का सामान। संतरी = पहरा देनेवाला। यादगार = स्मारक। कब्रिस्तान = मुर्दा गाड़ने की जगह, समाधि-स्थल। प्रतिमा = मूर्ति।

स्वेज़ नहर

[संसार में स्वेज़ नहर का महत्त्व कितना बड़ा है, यह किसी से छिपा नहीं है। प्रस्तुत लेख में लेखक ने इसके निर्माण के इतिहास के सम्बन्ध में कई ज्ञातव्य बातें लिखी हैं तथा उसके भौगोलिक और व्यवसायिक मूल्य पर भी प्रकाश डाला है।]

संसार के जलमार्गों में स्वेज़ नहर बहुत ही विख्यात है। स्वेज़ नहर लालसागर को भूमध्य सागर से मिलाती है। योरप से भारतवर्ष या अन्य पूर्वीय देशों में आने के लिए पहले दक्षिण अफ्रीका के चारों ओर घूमकर आना पड़ता था और यात्रा में कई महीने लग जाते थे। यह मार्ग ९ हज़ार मील लम्बा था। इस नहर के खुद जाने से लगभग पाँच हज़ार मील का सफ़र घट गया है। क्योंकि योरप से आनेवाले जहाज़ अब भूमध्य सागर से लाल सागर होते हुए भारतवर्ष पहुँच जाते हैं। इससे आप समझ सकते हैं कि यात्रियों का कितना समय और धन बच गया और व्यापार को कितना लाभ हुआ।

नहर के आसपास की पृथ्वी बहुत चपटी है। दक्षिणी भाग में कुछ दूरी पर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ दिखाई देती हैं। इस नहर के दोनों तरफ़ बड़े-बड़े मरुस्थल हैं। यहाँ बहुधा आँधियाँ आती हैं जो सर्वदा बालू झोंका करती हैं। इस नगर में सदा झाम (बालू निकालने की मशीन) बालू निकाला करती है। नहर का उत्तरी भाग कई मील तक समुद्र के पास होकर गया है। यहाँ कहीं-कहीं हरियाली भी दिखाई देती है। नहर के समानान्तर एक रेलवे लाइन भी जाती है।

यह नहर पोर्ट स्वेज़ से पोर्ट सईद तक १०५ मील लम्बी है। इसकी चौड़ाई २६० फुट से ४४५ फुट तक है। इस प्रकार

दो बड़े जहाज़ नहर में एक साथ गुज़र सकते हैं। इसकी गहराई सब जगह ३६ फुट है। वेही जहाज़ इसमें चलने पाते हैं जिनका पेंदा २८ फुट से अधिक पानी में नहीं रहता। हम ऊपर कह आए हैं कि इस नहर के दोनों ओर रेतीली ज़मीन है। इसमें जहाज़ बहुत धीरे-धीरे चलने पाते हैं, क्योंकि तेज़ी से चलाने में लहरों की चपेट से किनारे को नुकसान पहुँचने का भय रहता है।

सन् १८०० में जब नेपोलियन बोनापार्ट ने मिश्र पर धावा किया था तब उसने विचार किया था कि यदि पृथ्वी का यह पतला भाग, जो अफ्रीका और एशिया को जोड़े हुए है और लाल सागर को भूमध्य सागर से अलग कर रहा है, काट डाला जाय तो सेना के लिए सुभीता हो और व्यापार भी अधिक बढ़े। यह कोई बड़ी बात भी न थी, क्योंकि, यह टुकड़ा केवल ७० मील चौड़ा था। उसने इस दिशा में कार्य भी आरम्भ करा दिया था किन्तु इसका यश उसके भाग्य में न था। बोनापार्ट के 'लेपरे' नामक प्रधान इंजीनियर ने नाप-जोख प्रारम्भ की थी किन्तु गणित की एक बड़ी भूल के कारण वह निराश हो गया। भूमध्य सागर तथा लाल सागर की सतह वास्तव में बराबर है पर इसने भूल से लाल सागर की सतह भूमध्य सागर की सतह से ३३ फुट ऊँची बतलाई और नहर बनाने के विरुद्ध सम्मति दी। इसी कारण यह कार्य उस समय छोड़ दिया गया। सन् १८३६ में 'लेसेप' नामक एक नौजवान इंजीनियर काहिरा

में आया और संयोगवश उसकी नज़र 'लेपरे' के कागज़ों पर पड़ गई जिसमें उसने दोनों समुद्रों को जोड़ने का विस्तार से वर्णन किया था। यह नौजवान उस विचार के अध्ययन में डूब गया। इस उधेड़बुन में उसे क़रीब २४-२५ वर्ष लग गए। इसके बाद उसने अपना विचार पुष्ट करके अपनी स्कीम मिश्र के वाइसराय सैयद पाशा के सामने पेश की। उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया।

प्रारम्भ में सैयद पाशा ने इस नहर के बनाने का आवश्यक भार अपने ऊपर ले लिया और ढाई हज़ार मिश्री मज़दूर काम पर लगवा दिए। इन्हें कम्पनी द्वारा मज़दूरी मिलती थी। इस नहर के खुद जाने पर मिश्री मज़दूर कम कर दिए गए और अधिकांश मज़दूर योरप से बुलाए गए। यन्त्रों से काम लिया गया। मार्च सन् १८६८ को भूमध्य सागर का जल इस नहर में बहाया गया और ७-८ मास बाद यह नहर धूमधाम से खोली गई। इस अवसर पर योरप के बड़े-बड़े राजा, महाराजा, और राव-उमराव वहाँ पर एकत्र हुए थे। नहर बनाने का व्यय कुल साढ़े अट्ठाईस करोड़ रुपया हुआ। जिसमें एक-तिहाई धन मिश्र के 'ख़दीव' ने दिया और शेष कम्पनी के हिस्सों में आया। किन्तु सन् १८७५ में अंग्रेज़ सरकार ने छ करोड़ रुपए देकर खदीव के एक लाख ७७ हज़ार हिस्से ख़रीद लिए। अब यह नहर एक व्यवसायी कम्पनी की मिलकियत है। इसके पास इस समय करोड़ों रुपये की अन्य सम्पत्ति भी है।

शब्दार्थ

मरुस्थल = रेगिस्तान । समानान्तर = बराबर की दूरी पर । पेंदा = तला । उधेड़बुन = सोच-विचार । ख़दीव = यह मिश्र के बादशाह की उपाधि है । मिलकियत = जायदाद ।

मोती

[मोती की उत्पत्ति किस प्रकार होती, वह कितने प्रकार का होता, उसकी प्राप्ति के लिए देश-विदेश में किन प्रणालियों का अवलम्बन करना पड़ता एवं मोती निकालनेवालों को किस प्रकार जान जोखिम में डालनी पड़ती है आदि कितनी ही बातें इस लेख में लिखी गई हैं ।]

मोती सीप में पैदा होता है । जिन चीज़ों से सीप का भीतरी हिस्सा बनता है उन्हींसे मोती बनता है । सीप पान रखने की डिबिया की तरह खुलता और बन्द होता है। असल में यह एक तरह का कीड़ा है। यह कई तरह का होता है; इसी से मोती भी तरह-तरह के होते हैं। सात वर्ष के सीप में अकसर मोती अच्छे मिलते हैं और ४–५ वर्ष से कम के सीप में कभी-कभी । सात वर्ष का हो जाने पर भी अगर सीप में से मोती न निकाला जाय तो फिर वह नहीं मिलता ।

साफ़, चमकीला-दमकीला और बेदाग मोती अच्छा समझा जाता है। मोती गोल ही अच्छा गिना जाता है।

उसके बाद सुराहीदार का नम्बर है। सुडौल और साफ़ मोती अच्छे दामों में बिकता है। मोती की परख सहज नहीं। इसमें कभी-कभी अच्छे-अच्छे जौहरी भी धोखा खा जाते हैं।

मोती निकालने की पुरानी रीति तो यह है कि गोताख़ोर लोग डोंगों पर सवार होकर रात को ही चल देते हैं और सबेरा होते-होते काम करने की जगह पर पहुँच जाते हैं। दो-दो गोताख़ोर काम करते हैं। एक तो डोंगे पर रस्सी पकड़े बैठा रहता है और दूसरा रस्सी के सहारे पानी में उतर जाता है। ये लोग रस्सी के साथ २०–२५ सेर का एक पत्थर बाँधे रहते हैं जिससे तली में जल्दी जा पहुँचें। इशारा पाते ही डोंगेवाला आदमी पत्थर खींच लेता है। हर एक गोताख़ोर ४०–५० बार गोता लगाता है और हर बार झोली या टोकरी में सीप बटोर लाता है। मिनट दो मिनट दम लेकर वह फिर नीचे उतर जाता है। जब थक जाता है तो वह डोंगे पर बैठकर रस्सी थामता है और दूसरा पानी में उतरता है। इनके कान, नाक और मुँह से पानी निकला करता है। कभी-कभी तो खून भी निकलता है, फिर भी पेट के लिए हिम्मत करके ये लोग काम करते हैं। जल के भीतर पौन मिनट से लेकर डेढ़ मिनट तक काम किया जाता है। कुछ आदमी तो दो-दो चार-चार मिनट तक पानी में ठहरते हैं।

पानी के भीतर हवा की तो कमी है ही, इसके अलावा समुद्री जानवरों के हमलों का भी डर रहता है। इनके

चंगुल में फँस जाने पर बचना मुश्किल है। देशी गोताख़ोरों की रक्षा के लिए ब्राह्मण लोग किनारे पर बैठे पूजा-पाठ किया करते हैं, जिससे गोताख़ोर लोग इनके हमले से बचे रहें। गोताख़ोर लोग बदन में तेल चुपड़ लेते हैं ताकि नाक कान में पानी न घुस जाय। गोताख़ोरों के पास छोटी-छोटी बर्छियाँ भी होती हैं। पानी में रहने और दम साधने के कारण ये बीमार भी जल्दी पड़ जाया करते हैं और उम्र भी इनकी कम होती है।

बाहर लाने के बाद सीप सड़ाए जाते हैं। जन्तु के मर जाने पर सीप से मोती निकाला जाता है। यदि कीड़ा ज़िन्दा रहा तो मोती निकालने में कठिनाई होती है। कीड़े के मर जाने पर सीपों को उबाला जाता है। कभी-कभी मोती सीप में नहीं, कीड़े में रहता है। मोती का मिलना भाग्य की बात है। किसी को बढ़िया मोती मिल जाता है, किसी को वह भी नहीं। ऐसी कोई परख नहीं जिससे मोती का होना न होना जान लिया जाय।

उबालने के बाद मोतियों को छोटे-बड़े छेदों की छलनियों में छाना जाता है। इससे छोटे-बड़े मोती सहज ही अलग हो जाते हैं। मोती में हीरे की कनी से छेद किया जाता है। छेद जितना ही पतला हो उतना ही अच्छा माना जाता है।

विलायत में मोती निकालने का और ही तरीक़ा है। वहाँ के गोताख़ोर एक ख़ास पोशाक पहनकर पानी में धँसते हैं। इस

पोशाक में साँस लेने के लिए भी प्रबन्ध रहता है। इसे पहनने से गोताख़ोर एक तरह से रक्षित रहता है। कोट, पाजामा और जूता सब एक ही में रहते हैं—अलग-अलग नहीं। इस पोशाक के भीतर पानी नहीं पहुँचता। इसमें गरदन और बाहें खुली रहती हैं। पोशाक का बोझ क़रीब १६ सेर होता है। गोताख़ोर पहले एक मोटा-सा फलालैन का कुर्ता पहन लेता है। उसके ऊपर पोशाक पहनी जाती है। गला और बाहें ऐसी कर दी जाती हैं कि पानी भीतर न जा सके। फिर एक धातु का टोप पहना देते हैं। इसमें आँखों की जगह पक्का शीशा जड़ा रहता है। इसी में से गोताख़ोर देखता है। गले के पास दोनों ओर रबर की दो नलियाँ लगी रहती हैं। इनके ज़रिए से उसे साँस लेने के लिए साफ़ हवा मिलती रहती है।

गोताख़ोर जब पानी में उतरता है तब उसके कंधों पर वज़नी पटड़े लटका दिए जाते हैं जिससे वह आसानी से डूब सके। बाद को पटड़े निकाल लिए जाते हैं। ऊपर डोंगा चला जाता है और नीचे गोताख़ोर थैले में सीप बटोरता रहता है। अगर थैला भर जाय या उसका जी ऊबने लगे अथवा कोई जानवर हमला करे तो इशारा करते ही झट से वह ऊपर खींच लिया जाता है। इस पोशाक में वह दस मिनट तक रहता है और ६० से ११० फुट तक की गहराई में काम करता है। साफ पानी में वह ४०—५० फुट तक की चीज़ें देख सकता है, वर्ना टटोल-टटोलकर सीप उठाता है।

बिना पोशाकवालों से पोशाकवाला गोताख़ोर मज़े में रहता है। पर जान उसकी भी जोखिम में रहती है। अगर साँस लेने की नली फट जाय तो पोशाक में पानी भर जाने से वह ऊपर भी जल्दी न उठाया जा सके और साँस भी न ले सके, क्योंकि उसके लिए हवा तो मिलेगी नहीं। समुद्री पौधे की नोक से भी पोशाक फट सकती है। पोशाक के भीतर अगर कोई कीड़ा या मक्खी रह जाय तो फिर आफ़त ही समझिए। सीप के पास विषैले कीड़े रहते हैं; ये हाथ में काट खाते हैं तो बड़ा दर्द होता है।

पहले तो हिन्दुस्तान और फ़ारस की खाड़ी से ही मोती निकाले जाते थे, पर अब आस्ट्रेलिया और मध्य अमरीका आदि में भी यह काम किया जाता है। हिन्दुस्तान में कराची के पास और लङ्का में मोती निकालने का काम होता है। बिना सरकारी परवाना लिए कोई भी मोती नहीं निकाल सकता है।

शब्दार्थ

परख = परीक्षा, जाँच। डोंगा = बड़ी नाव। जोखिम = खतरा। परवाना = आज्ञा-पत्र।

उदकमंडलम् (ऊटी)

[दक्षिण भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध हिल स्टेशन 'ऊटी' के तथा मद्रास से 'ऊटी' जानेवाले रास्ते के प्राकृतिक सौन्दर्य का इतना सुन्दर मनोरंजक वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है कि पाठक एक बार उन स्थानों को देखने के लिए ललच उठता है।]

हिन्दुस्तान एक गर्म देश है। लेकिन मई और जून के महीने में तो यहाँ की गरमी असह्य हो जाती है। जब अंग्रेज़ लोग हिन्दुस्तान में आए तब वे यहाँ की गरमी बर्दाश्त नहीं कर सके। उन लोगों ने ऐसी जगहों की तलाश की जहाँपर गरमियों में भी ठंढ पड़ती हो। ऐसी जगहें पहाड़ों में ही पाई जा सकती थीं। इन ठंढी जगहों में शिमला का नाम तो सभी ने सुना होगा। वह हिमालय पहाड़ पर बसाया गया है। गरमी के दिनों में बड़े लाट का दफ़्तर शिमला चला जाता है। ऐसे ठंढे स्थानों को 'हिल स्टेशन' कहते हैं।

हिन्दुस्तान के हर एक सूबे में या उसके आसपास, कोई न कोई ऊँचा पहाड़ मौजूद है। जब देश में गरमी काफ़ी पड़ने लगती है तब अमीर लोग पहाड़ों पर हवा खाने चले जाते हैं। ये जगहें गरमी के ख़याल से तो अच्छी हैं ही, लेकिन बहुत लोग अपनी तन्दुरुस्ती ठीक करने के

लिए भी पहाड़ों पर जाया करते हैं। पहाड़ों की आबहवा स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभदायक समझी जाती है।

दक्षिण हिन्दुस्तान में भी नीलगिरि नाम की पहाड़ियाँ पाई जाती हैं। यद्यपि ये हिमालय पहाड़ की तरह ऊँची नहीं हैं लेकिन फिर भी गरमी के दिनों में इनकी चोटियों पर काफ़ी ठंढ पड़ती है। इसीलिए नीलगिरि की पहाड़ियों पर भी उदकमंडलम् नाम से एक शहर बस गया है। दक्षिण हिन्दुस्तान के अमीर लोग और मद्रास-गवर्नर का दफ़्तर, गरमी के दिनों में यहीं चले जाते हैं। गरमी के दिनों में इन पहाड़ों पर बड़ी चहल-पहल हो जाती है।

अगर किसी को मद्रास से ऊटी जाना हो तो उसे 'मद्रास सेन्ट्रल स्टेशन' से 'ब्लू माउंटेन एक्सप्रेस' से चलना होगा। यहीं गाड़ी उसे मेट्टूपालयम् स्टेशन तक ले जायगी। यहाँ पर नीलगिरि पहाड़ पर चढ़नेवाली दूसरी गाड़ी तैयार खड़ी रहती है। इस गाड़ी में सिर्फ़ थर्ड क्लास और फ़र्स्ट क्लास के ही डब्बे होते हैं। यह गाड़ी ख़ास तौर से पहाड़ पर चढ़ने के लिए बहुत हल्की बनाई गई है। इसकी खिड़कियों में लकड़ी या शीशा नहीं लगा रहता है। कपड़ों के परदे धूप और पानी के बचाव के लिए टँगे रहते हैं। सामान रखने के लिए भी तख्ते नहीं होते हैं। गाड़ी की सूरत देखने से ही हम लोगों को पहाड़ पर चढ़ने का मजा मिलने लगता है। स्टेशन से छूटते ही गाड़ी एकदम पहाड़ पर चढ़ने लगती

है। गाड़ी के दाहिनी तरफ़ धीरे-धीरे पहाड़ ऊँचा उठता जाता है, और बाईं तरफ़ नारियल और सुपारी के जंगल के जंगल दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे ये पेड़ नीचे की ओर गड्ढे में खिसकते हुए जान पड़ते हैं और उनका स्थान छोटी-छोटी-झाड़ियाँ और जड़ी-बूटियाँ लेने लगती हैं। ज्यों-ज्यों गाड़ी ऊपर चढ़ती जाती है त्यों-त्यों सामने की ओर पहाड़ियों की हरियाली बढ़ती जाती है। पहाड़ों की चोटियाँ, जो आसमान से मिली हुई दिखाई पड़ती हैं, सचमुच हरीभरी होने के कारण आसमानी रंग की मालूम पड़ती हैं। इस प्रकार नीलगिरि पहाड़ अपने नाम की सार्थकता को पूरी तरह निभाता है।

गाड़ी ऊपर चढ़ती है। रेल की सड़क बड़ी ढालवीं है, इसलिए दोनों पटरियों के बीच में दाँत लगे हुए हैं, जो गाड़ी को नीचे नहीं खिसकने देते। रास्ते में कई जगहें ऐसी हैं जहाँपर पहाड़ों में सुरंगें काटकर रेल का रास्ता बनाया गया है। जब गाड़ी सुरंगों में पहुँचती है तब बिलकुल अंधेरा हो जाता है और ऐसा मालूम पड़ता है मानो हम पृथ्वी के पेट में पहुँच गए हैं। रास्ते में एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर गिरनेवाले झरने तो उस हरियाली की शोभा को और भी बढ़ा देते हैं। गिरनेवाले झरनों की झर-झर ध्वनि और उनसे उछलनेवाली छींटें एक नया ही दृश्य उपस्थित करती हैं जिन्हें देखकर आँखें मोहित हो जाती हैं। मेट्टूपालयम् से ऊटी का

रास्ता तीन घण्टे का है, लेकिन यह रास्ता पहाड़ी दृश्य को देखते रहने से ऐसा मालूम पड़ता है कि मानो हमने अभी-अभी मेट्टूपालयम् स्टेशन छोड़ा हो।

मेट्टूपालयम् और ऊटी के बीच एक बड़ा स्टेशन कुनूर पड़ता है। गरमी के दिनों में आनेवाले लोगों में बहुत से लोग यहाँ भी ठहर जाते हैं, क्योंकि यहाँ ठंढ भी कम रहती है और खर्च भी कुछ कम पड़ता है। यहाँ पर बहुत से कारख़ाने हैं। नीलगिरि पहाड़ की ख़ास देन 'नीलगिरि का तेल' है, जिसे 'यूक्लिप्टस ऑयल' कहते हैं। यह 'यूक्लिप्टस' पेड़ की पत्तियों से निकाला जाता है। कूनूर से पहाड़ की ढाल कम हो जाती है। अब 'यूक्लिप्टस' के पेड़ों के जंगल के जंगल दिखाई पड़ने लगते हैं। जगह-जगह पर लोग कुछ खेती भी करते दिखाई देते हैं। गाड़ी पर से देखने से खेतों की क्यारियाँ, सीढ़ियाँ-सी मालूम पड़ती हैं। यहाँपर लोग सब्ज़ी इफ़रात से पैदा कर लेते हैं। ऊटी स्टेशन पर पहुँचते-पहुँचते ठंढ के कारण देह में कँप-कँपी आने लगती है और शरीर में चुभनेवाली हवा के कारण कभी-कभी दाँत भी कटकटाने लगते हैं।

ऊटी पहुँचकर हम भूल जाते हैं कि हम ऐसी जगह से आ रहे हैं जहाँ गरमी के मारे परेशान थे। दिन-भर बिजली के पंखे के नीचे बैठे रहने पर भी मारे गरमी के तबाह थे और पसीने की झड़ी लगी थी। इस जगह पर पहुँचकर हमें मालूम

पड़ता है कि मानो स्वर्ग में आ गए हों। यह स्थान समुद्र की सतह से लगभग आठ हज़ार फुट ऊँचा है।

ठहरने के लिए यहाँपर बहुत से होटल हैं। अमीर और जागीरदारों के लिए बँगले बने हुए हैं। हिन्दुस्तान के करीब-करीब सभी राजा-महाराजाओं की कोठियाँ बनी हुई हैं। स्टेशन से बाहर आते ही कुछ दूर पर सामने घुड़दौड़ (रेस-कोर्स) का मैदान है। यहाँ पर कई सिनेमा-घर भी हैं जिनमें तामिल, तेलुगू, हिन्दी और अंग्रेजी की नई-नई फ़िल्में दिखलाई जाती हैं। सवारियों के लिए यहाँपर रिक्शॉ और टैक्सी मिलती है। बहुत से पहाड़ी कुली भी मिलते हैं, जो बड़े मेहनती और ईमानदार होते हैं। स्टेशन के पास ही बस-स्टैंड है। जहाँ से लॉरियाँ कोयम्बतूर और मैसूर को जाने के लिए मिला करती हैं। यहाँपर पानी के नल और बिजली की रोशनी का बड़ा अच्छा इन्तज़ाम है। रात के समय बिजली की जगमगाहट से ऊपर-नीचे चढ़ती-उतरती हुई सड़क बड़ी सुहावनी मालूम होती है।

स्टेशन से लगभग मील-डेढ़-मील दूर 'बोटैनिकल गार्डन' है, जिसमें तरह-तरह के फूल-पौधों को देखकर मन मुग्ध हो जाता है। यहाँपर साल में एक बार फूलों की प्रदर्शिनी भी होती है। एक जगह पर सजाए गए नाना प्रकार की रंग-बिरंगी पत्तियों के पौधे बड़े भले मालूम पड़ते हैं। यहाँपर गवर्नर साहब का बँगला—'गवर्नमेंट हाउस' और बड़े अफ़सरों की

कोठियाँ, जो फूल-फुलवाड़ी से सजी हुई बहुत भली लगती हैं, देखने योग्य हैं।

शब्दार्थ

मज़ा = आनन्द। बर्दाश्त करना = सहना। सब्ज़ी = हरी तरकारी। इफ़रात = अधिकतर। प्रदर्शिनी = नुमाइश।

यू बोट

[यह एक बड़ा ही समयोपयोगी तथा ज्ञानवर्द्धक लेख है। इसमें 'यू बोट' के विषय में ऐसी कितनी ही बातें—यथा इसकी बनावट, गति-विधि एवं युद्ध में उपयोग—बतलाई गई हैं जिनका जानना आधुनिक काल में आवश्यक हो गया है।]

इस बार लड़ाई छिड़ते ही 'यू बोट' या 'पनडुब्बे जहाज़ों' का प्रचार इस तेज़ी से हुआ कि इनके बारे में ज्ञान प्राप्त करना ज़रूरी-सा हो गया।

'पनडुब्बे जहाज़ों' को 'सबमेरीन' भी कहते हैं और 'यू बोट' भी। पिछली लड़ाई में जरमनों ने इनको बनाया और लोग इन्हें 'यू बोट' के नाम से पुकारने लगे। उस युद्ध में क़रीब ५००० जहाज़ों को इन पनडुब्बों का शिकार होना पड़ा था।

पिछले सबमेरीनों की बात पिछली हो गई, तब न तो उनका आकार-प्रकार इतना बड़ा होता था और न आजकल

की तरह वे सब साधनों से सम्पन्न ही थे। अब तो ५०० फुट या इससे भी लम्बे 'यू बोट' बनते हैं, जो मौक़ा पड़ने पर मझोले क़द के जहाज़ से, जल के ऊपर आकर युद्ध कर सकते हैं। कुछ पर तो तोपें लगी रहती हैं जो छोटे जहाज़ों को जल के ऊपर गोला बरसाकर डुबा देने के लिए काफ़ी हैं। ज़रा सोचिए तो उस छोटे जहाज़ की उस समय क्या हालत होती होगी जब उसके पास एकाएक विशाल 'यू बोट' जल से निकलकर गोले बरसाने लगता होगा ?

'यू बोट' में दो इंजन होते हैं। पहले से वह अन्य जहाज़ों की भाँति जल पर चलता है, पर पानी में चलने के लिए उसको बिजली की शक्ति का सहारा लेना पड़ता है, जो उसे उसमें लगी हुई बैटरियाँ देती हैं। इन बैटरियों को चार्ज करने के लिए कभी-कभी पनडुब्बों को सतह के ऊपर आना पड़ता है। पर इसमें इनको पकड़े जाने का डर नहीं रहता, क्योंकि एक बार डूबकर पनडुब्बे जहाज़ ६० घंटे तक पानी के भीतर रह सकते हैं और भीतर बिना बैटरी 'चार्ज' किए ही १२,००० मील का सफ़र कर सकते हैं।

वैसे देखने में 'यू बोट' बड़े सिगार की तरह लगता है, एक ओर पतला दूसरी ओर चौड़ा; ऊपर एक छोटा-सा डेक होता है, जिसपर जहाज़ी खड़े हो सकते हैं। इसी डेक पर तोप लगी रहती है जो पनडुब्बे के पानी में डूबते समय अन्दर कर ली जाती है। सबमेरीन के एक ओर एक ऊँचा स्तम्भ रहता

है जिसपर खड़े होकर कप्तान चारों ओर के समुद्र का निरीक्षण करता है और जिसके ऊपर पेरिस्कोप की दोनों आँखें ऊपर उठ आती हैं। जब सबमेरीन पानी के अन्दर चला जाता है, ये आँखें सतह के ऊपर निकली रहती हैं और उन्हीं से 'यू बोट' के अन्दर बैठा हुआ आदमी देखता रहता है कि ऊपर समुद्र में क्या हो रहा है।

सबमेरीन के दोनों ओर टारपीडो या एक प्रकार के गोले लगे रहते हैं जो ज़रूरत पड़ने पर दाग दिए जाते हैं। ये जिस जहाज़ पर छोड़े जाते हैं उसके पेंदे में टकराकर उसमें छेद कर देते हैं और जहाज़ डूब जाता है।

सबमेरीन के अन्दर जगह की कमी रहती है। सारी जगह का एक-तिहाई हिस्सा हवा और पानी के टैंकों को पहले दे दिया जाता है, क्योंकि सबमेरीन के संचालन में इनका काफ़ी हाथ रहता है। बाक़ी जगह में इंजन, बैटरियाँ, टारपीडो और गोले रहते हैं। इनसे जो जगह बचती है वही खाने-पीने का सामान रखने और आदमियों के रहने के काम आ सकती है। उसी में किसी प्रकार दब-दबाकर रहना पड़ता है।

जैसे ही 'यू बोट' को डूबने का हुक्म मिलता है, सब लोग भीतर चले आते हैं। 'कानिंग-टावर' नीचे गिरा दिया जाता है, तोप भीतर कर ली जाती है, इंजन बन्द कर दिया जाता है और 'यू बोट' का कप्तान, टावर के नीचे छोटे कमरे में, जहाँ वह ऊपर की सतह का दृश्य देखनेवाला यंत्र पेरिस्कोप लगा रहता है,

चला जाता है। वहाँ से वह बैठा-बैठा ऊपर का सब हाल देखकर अपने साथियों को आज्ञा देता रहता है।

सबमेरीन के दोनों सिरों पर और नीचे पानी के लिए जो टैंक रहते हैं उन्हीं से सबमेरीन की गति-विधि निश्चित होती है। नीचे डुबकी लगाने के वक्त नीचे के टैंकों में पानी भरने का द्वार खोल दिया जाता है, जिससे सबमेरीन डूब जाता है, इसमें जल्दी के समय बिजली की भी मदद ले लेते हैं और नीचे की ओर जाने के लिए आगे का हिस्सा झुका दिया जाता है जिससे सबमेरीन तेज़ी से नीचे चला जावे। नीचे जितनी दूर ले जाना होता है उसी हिसाब से टैंकों में पानी भरा जाता है। ऊपर आने के लिए आगे का सिरा ऊपर की ओर कर दिया जाता है और पानी भरे हुए टैंकों में इस तेज़ी से हवा भरी जाती है कि वह टैंक का पानी बाहर निकाल देती है और सबमेरीन ऊपर की ओर चला आता है।

सबमेरीन को चलाना बहुत ही कठिन होता है, उसमें समतुलन (बैलेन्स) का बहुत ख़याल रखना पड़ता है। हर एक टारपीडो छोड़ने के बाद सबमेरीन के बैलेन्स में गड़बड़ी हो जाती है।

अब ज़रा उस अद्भुत यन्त्र पेरिस्कोप के भी बारे में सुनिए जो इन पनडुब्बों की जान है। हर एक 'यू बोट' में दो या तीन पेरिस्कोप लगे रहते हैं। ये एक प्रकार के लम्बे नल की शकल के यन्त्र हैं। इनके ऊपरी हिस्से में पहलदार

शीशे और लेन्स लगे रहते हैं, जिनके द्वारा बाहर का दृश्य नीचे प्रतिबिम्बित होता है। भीतर बैठा हुआ आदमी बाहर का दृश्य इसी नल-सदृश दूरबीन के सहारे से देख सकता है। यह नल ज़रूरत न रहने पर भीतर कर लिया जाता है, पर काम पड़ने पर इसे भीतर से ही ऊपर बढ़ाकर चारों ओर घुमाया जा सकता है, जिससे किसी ओर का दृश्य इनकी तेज़ नज़र से बचने न पावे।

इन पनडुब्बों के कारण इस बार की लड़ाई और भी भयानक हो गई है—देखें विज्ञान इस प्रकार के संहार के साधन उत्पन्न करके उनके निराकरण के भी कोई उपाय निकालता है या नहीं।

शब्दार्थ

आकार-प्रकार = बनावट, ढाँचा। सम्पन्न = युक्त। गति-विधि = चाल। पहलदार = बगलवाला। संहार = विनाश। निराकरण = दूर करना।

अख़बार

[इस लेख में आज की दुनिया की एक महत्त्वपूर्ण वस्तु—अख़बार—के इतिहास तथा इससे होनेवाले लाभों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए लेखक ने अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं।]

पढ़े-लिखे लोगों में ऐसे बहुत कम होंगे जो अखबार न पढ़ते हों। आजकल गाँव, कसबा और शहर, सब जगहों

में लोग अख़बार पढ़ते हैं। जो लोग पढ़ना-लिखना नहीं जानते वे भी अख़बार सुनने का शौक रखते हैं। दिन-भर काम करने के बाद कई गाँवों में किसान लोग अख़बार सुनने के लिए जमा हो जाते हैं। मिलों में काम करनेवाले मज़दूर भी अख़बार पढ़ते हैं।

बम्बई कलकत्ता जैसे शहरों में तो शाम को पाँच बजते ही अखबारवालों की चिल्लाहट शुरू हो जाती है। छोटे-छोटे लड़के बड़ी-बड़ी सड़कों पर और छोटी-छोटी गलियों में भी अखबार बेचने के लिए दौड़ते रहते हैं। देश में जितना ही ज़्यादा शिक्षा का प्रचार होगा उतना ही ज़्यादा अख़बारों का प्रचार भी होगा।

अख़बार में तरह-तरह की खबरें छपती हैं। देश-विदेशों की, कौन्सिल-असेम्बली की, अदालत, खेल और व्यापार की सभी ख़बरें अख़बारों में छपती हैं। हिन्दुस्तान की क़रीब-क़रीब सभी ज़बानों में अख़बार निकलते हैं।

कुछ अख़बार रोज़ाना और कुछ सात रोज़ पर निकलते हैं। अख़बारों में बड़े-बड़े लोगों के भाषण भी छपते हैं। अखबार की सभी बातों के ऊपर सम्पादक की निगरानी रहती है।

कहते हैं कि सबसे पहले अखबार चीन और रोमवालों ने निकाला था। हिन्दुस्तान में पहला अखबार कलकत्ता से, डेढ़ सौ बरस पहले निकला था। इस वक़्त हमारे देश की सब ज़बानों में कुल मिलाकर क़रीब साढ़े चार हज़ार अख़बार

निकलते हैं। इंगलैंड की आबादी हमारे देश की आबादी का सातवाँ हिस्सा भी नहीं है; फिर भी वहाँ से ढाई हज़ार अख़बार निकलते हैं। इससे मालूम होता है कि इंगलैंड में पढ़े-लिखे लोग हमारे देश से बहुत ज़्यादा हैं।

पुराने ज़माने में काग़ज़ हाथ से बनता था। छपाई का कोई इन्तज़ाम नहीं था। बड़ी-बड़ी किताबें भी हाथ से लिखी जाती थीं। लेकिन आजकल काग़ज़ के बड़े-बड़े कारख़ाने खुल गए हैं। महीन-मोटा, बड़ा-छोटा, रंगीन-सादा, चिकना-रफ़, सब तरह का काग़ज़ कारख़ानों में बनकर आने लगा है। छापने के लिए भी मशीनें बन गई हैं, जिनपर किताबें, अख़बार वग़ैरह छापे जाते हैं। कोई-कोई मशीन इतनी बड़ी होती है कि बीस पृष्ठवाले अख़बार की पचास हज़ार कापियाँ एक घंटे में छाप देती है।

जो आदमी अख़बार नहीं पढ़ता उसे देश की ख़बरों का पता नहीं रहता। देश-विदेश की सब ख़बरों और ऐलानों को जानना बहुत ज़रूरी है। हरेक पेशेवाले को अख़बार पढ़ने से नई बातें मालूम हो सकती हैं।

देश के बड़े-बड़े आदमी किस विषय पर क्या कहते हैं, यह अख़बारों से मालूम हो जाता है। उनके ज़रिए सरकार भी नेताओं की राय जानकर उसके मुताबिक काम करती है। किसी-किसी अख़बार के एडिटर की राय की लोग और सरकार बहुत क़दर करती है।

अख़बार के ज़रिए लोग अपनी-अपनी चीज़ों का प्रचार कर सकते हैं। अख़बार में इश्तहार देकर उसे लाखों लोगों के पास पहुँचा सकते हैं। अगर सब जगह अपनी बातों का प्रचार करना हो तो अख़बार से अच्छा कोई दूसरा साधन नहीं। इसलिए हरेक पढ़े-लिखे आदमी के लिए अख़बार पढ़ना बहुत ज़रूरी है।

शब्दार्थ

अख़बार = समाचार-पत्र। जबान = भाषा। आबादी = जन-संख्या। निगरानी = देख-रेख। ऐलान = घोषणा। एडिटर = सम्पादक। क़द्र = इज़्ज़त, सम्मान।

मेरा बचपन

[यह उद्धरण पंडित जवाहर लाल नेहरू की 'मेरी कहानी' से लिया गया है। इसमें पंडितजी की बाल्यावस्था की कतिपय घटनाओं का ज़िक्र है। इन घटनाओं से जहाँ एक ओर पंडितजी के बाल्य स्वभाव का पता चलता है, वहाँ दूसरी ओर उनके पिता तथा माता के गुणों पर भी प्रकाश पड़ता है।]

मैं पिताजी की बहुत ही इज़्ज़त करता था। मैं उन्हें बल, साहस और होशियारी की मूर्ति समझता था। और दूसरों के मुक़ाबले में इन बातों में बहुत ही ऊँचा और बढ़ा-चढ़ा

पाता था। मैं भी अपने दिल में यह आशा लगाए था कि बड़ा होने पर पिताजी की तरह होऊँगा। लेकिन जहाँ मैं उनकी इज़्ज़त करता था और उन्हें बहुत ही चाहता था, वहाँ मैं उनसे डरता भी था। नौकर-चाकरों पर और दूसरों पर बिगड़ते हुए मैंने उन्हें देखा था। उस समय वे बड़े भयंकर मालूम होते थे और मैं मारे डर के काँपने लगता था। नौकरों के साथ जो यह बर्ताव उनका होता था उसके प्रति मेरे मन में उनपर कभी-कभी गुस्सा भी आ जाया करता था। उनका स्वभाव दरअसल भयंकर था, और उनकी आयु के ढलते दिनों में भी उनका गुस्सा मुझे किसी दूसरे में देखने को नहीं मिला। लेकिन खुशक़िस्मती से उनमें हँसी-मज़ाक़ का माद्दा भी बड़े ज़ोर का था और वे इरादे के भी बड़े पक्के थे। इससे आम तौर पर अपने-आप पर क़ाबू रख सकते थे। ज्यों-ज्यों उनकी उम्र बढ़ती गई, उनकी अपने आप पर क़ाबू पाने की ताक़त बढ़ती गई और फिर शायद ही कभी उनकी इस पुरानी आदत का परिचय मिला।

उनकी तेज़-मिज़ाजी की एक घटना मुझे याद है। बचपन ही में मैं उसका शिकार हो गया था। कोई ५–६ वर्ष की मेरी उम्र रही होगी। मैंने पिताजी की मेज पर दो फाउंटेन पेन पड़े देखे। मेरा जी ललचाया। एक रोज़ मैंने दिल में कहा—"पिताजी एक साथ दो पेनों को क्या करेंगे?" एक मैंने अपनी जेब में डाल लिया। बाद में बड़े ज़ोरों की तलाश हुई कि पेन कहाँ चला

गया ? तब तो मैं घबराया। मगर मैंने बताया नहीं। आख़िर पेन मिल गया और मैं गुनहगार करार दिया गया। पिताजी बहुत गुस्सा हुए और ख़ूब जी भरके मरम्मत की। आख़िर पिटकर शर्म से अपना-सा मुँह लिए मैं माँ की गोद में दौड़ा गया। इतना पिटा था कि कई दिन तक मेरे बदन पर क्रीम और मरहम लगाने पड़े थे।

लेकिन मुझे याद नहीं पड़ता कि इस सज़ा के कारण पिताजी के प्रति मेरे मन में कोई बुरा भाव पैदा हुआ हो। मैं समझता हूँ, मेरे दिल ने यही कहा होगा कि सज़ा तो मुझे वाजिब ही मिली है, मगर थी ज़रूरत से ज़्यादा। लेकिन पिताजी के लिए मेरे दिल में वैसी ही इज़्ज़त और मुहब्बत बनी रही। हाँ, अब एक डर उसमें और शामिल हो गया था। मगर माँ के साथ ऐसा न था। उससे मैं बिलकुल नहीं डरता था। क्योंकि मैं जानता था कि वह मेरे सब कुछ किए-धरे को माफ़ कर देगी और उसके इस ज़्यादा और बेहद प्रेम के कारण मैं उसपर थोड़ा-बहुत हावी होने की भी कोशिश करता था। पिताजी की वनिस्बत मैं माँ को ज़्यादा पहचान सका था और वह मुझे पिताजी से अपने ज़्यादा नज़दीक मालूम होती थी। मैं जितने भरोसे के साथ माताजी से अपनी बात कह सकता था, उतने भरोसे के साथ स्वप्न में भी पिताजी से कहने का ख़याल नहीं कर सकता था। वह सुडौल, क़द में छोटी और नाटी थी और मैं क़रीब-क़रीब उसके बराबर ऊँचा हो गया था और अपने को

उसके बराबर समझने लगा था। वह बहुत सुन्दर थी। मेरी माँ के पूर्वज कोई दो पुश्त पहले ही काश्मीर से नीचे मैदान में आगए थे।

हिन्दू पुराणों और रामायण-महाभारत की कथाएँ भी मैं सुना करता था, जो कि मेरी माँ और ताइयाँ सुनाया करती थीं। मेरी एक ताई, पुराने हिन्दू ग्रन्थों की बहुत जानकारी रखती थीं। उनके पास इन कहानियों का तो मानों खजाना ही भरा था।

धर्म के मामले में मेरे खयालात बहुत धुँधले थे। मुझे वह स्त्रियों से सम्बन्ध रखनेवाला विषय मालूम होता था। पिताजी और बड़े चचेरे भाई धर्म की बात को हँसी में उड़ाया करते थे और इसपर ज्यादा ध्यान नहीं देते थे। हाँ, हमारे घर की औरतें अलबत्ता पूजा-पाठ और व्रत-त्योहार किया करती थीं। कभी-कभी मैं अपनी माँ या ताई के साथ गंगा नहाने जाया करता, और कभी इलाहाबाद या काशी या दूसरी जगह मन्दिरों में भी या किसी नामी और बड़े साधु-संन्यासी के दर्शन के लिए भी जाया करता। मगर इन सबका मेरे दिल पर बहुत कम असर हुआ।

फिर त्योहार के दिन आते थे। होली आने पर सारे शहर में रंगरेलियों की धूम मच जाती थी और हमलोग एक दूसरे पर रंग की पिचकारियाँ चलाते थे; दिवाली आने पर सब घरों पर धीमी रोशनीवाले मिट्टी के हज़ारों दीप जलाए

जाते; जन्माष्टमी पर जेल में पैदा हुए श्रीकृष्ण की आधी रात को वर्ष-गाँठ मनाई जाती; लेकिन उस समय तक जागते रहना हमारे लिए बड़ा मुश्किल होता था; दशहरा और रामलीला के उत्सवों पर स्वाँग और जुलूसों के द्वारा रामचन्द्र और लंका-विजय की पुरानी कहानी की नकल की जाती थी, जिन्हें देखने के लिए लोगों की बड़ी भारी भीड़ इकट्ठी होती थी। सब बच्चे मुहर्रम का जुलूस भी देखने जाते थे, जिसमें रेशमी अलम होते थे और सुदूर अरब में हसन और हुसैन के साथ घटित घटनाओं की यादगार में शोकपूर्ण मरसिए गाए जाते थे। दोनों ईदों पर मुंशीजी बढ़िया कपड़े पहन-कर बड़ी मसजिद में नमाज़ के लिए जाते और मैं उनके घर जाकर मीठी सेवैंयाँ और दूसरी बढ़िया चीज़ें खाया करता। इनके सिवा रक्षाबंधन, भैया-दूज वगैरह छोटे त्योहार भी हम लोग मनाते थे।

मगर इन तमाम उत्सवों में, मुझे एक सालाना जलसे में ज़्यादा दिलचस्पी रहती थी, जिसका ख़ास मुझी से ताल्लुक था—याने मेरी वर्ष-गाँठ का उत्सव। इस दिन मैं बड़े उत्साह और रंग में रहता था। सुबह ही एक बड़े तराजू में मैं गेहूँ और दूसरी चीज़ों के थैलों से तौला जाता और फिर वे चीज़ें ग़रीबों को बाँट दी जातीं और बाद को नये-नये कपड़ों से सजाकर मुझे भेंट और तोहफ़े नज़र किए जाते। फिर तीसरे पहर दावत दी जाती। उस समय मैं अपने

को मानो उस सारे जलसे का सरदार पाता था। मगर मुझे इस बात का बड़ा दुःख था कि वर्ष-गाँठ साल में एक बार ही क्यों आती है ? वास्तव में मैंने इस बात का आन्दोलन खड़ा करने की कोशिश की कि वर्ष-गाँठ के मौक़े वर्ष में एक बार क्यों आया करें और अधिक क्यों न आया करें ? उस वक़्त मुझे क्या पता था कि एक समय ऐसा भी आयगा जब ये वर्ष-गाँठें हमको अपने बुढ़ापे के आने की दुःखदायी याद दिलाया करेंगी।

इस तरह मेरा बचपन गुज़रा। उन दिनों का एक छोटा वाक़या मुझे अभी तक याद है। मैं ६—७ वर्ष का रहा होऊँगा। मैं रोज़ घुड़-सवारी के लिए जाया करता था। मेरे साथ घुड़-सेना का एक सवार रहता था। एक रोज़ शाम को मैं घोड़े से गिर पड़ा और मेरा टट्टू—जो अरबी नस्ल का एक अच्छा जानवर था—ख़ाली घर लौट आया। पिताजी टेनिस खेल रहे थे। काफ़ी घबराहट और हलचल मच गई और वहाँ जितने लोग थे सब-के-सब, जो भी सवारी मिली उसे लेकर, मेरी तलाश में दौड़ पड़े। पिताजी उन सबके आगे थे। वे रास्ते में मुझे मिले और सब मेरे साथ इस तरह पेश आए मानो मैंने कोई बड़ी बहादुरी का काम किया हो।

शब्दार्थ

माद्दा = योग्यता। क़ाबू = अधिकार। तेज़-मिज़ाजी = स्वभाव की तेज़ी। तलाश = खोज। गुनहगार = अपराधी। करार दिया जाना =

ठहराया जाना। हावी होना = अधिकार जमाना। ताई = ताऊ की स्त्री, बड़ी चाची। अलम = झंडा। मरसिया = शोक का गीत। वाक़या = घटना।

महारानी लक्ष्मीबाई

[भारतीय स्वतन्त्रता की वलिवेदी पर होम होनेवाली झाँसी की इतिहास-प्रसिद्ध महारानी लक्ष्मीबाई का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा रहेगा। श्री व्यथित-हृदय के प्रस्तुत लेख में उन्हीं महारानी की जीवन-कथा अति संक्षेप में लिखी गई है। इसमें हम भारत के गौरवपूर्ण अतीत का एक उज्वल चित्र पाते हैं।]

भारतवर्ष की वीर नारियों में झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई अग्रगण्य हैं। भारतीय सिपाही-विद्रोह के समय से वीर रानी का नाम भारतवर्ष-भर में व्याप्त हो गया है। सन् १८५७ में भारतवर्ष दासता की बेड़ियों में जकड़ा जा रहा था। ठीक उसी समय महारानी लक्ष्मीबाई स्वतंत्रता की ज्योति को लेकर रण-क्षेत्र में उतरीं। उस ज्योति ने भारतीयों को एक बार चकाचौंध कर दिया और दासता के मुख में पड़नेवाले भारतीय उस समय फिर स्वतंत्रता के गीत गाने लगे। महारानी लक्ष्मीबाई की अलौकिक शक्ति से देश जग गया। महारानी के अतुल पराक्रम और साहस की प्रशंसा सभी देशी और विदेशी विद्वानों

ने बड़े अभिमान के साथ की है। ऐसी वीर रानी की वीरता का हाल पढ़कर ऐसा कौन होगा जिसका मस्तक अभिमान से ऊपर न उठ जाय।

महाराष्ट्र देश में सतारा के समीप कृष्णा नदी के किनारे 'बाई' नाम का एक ग्राम है। उस ग्राम में कृष्णराव ताम्बे नामक एक महाराष्ट्र ब्राह्मण रहते थे। पेशवाओं के समय वे एक उच्च पदाधिकारी थे। उनका बलवन्त नाम का एक पुत्र था। बलवन्त भी फ़ौज में एक ऊँचे पद पर नौकर था। उसके मोरोपन्त और सदाशिव नाम के दो पुत्र हुए। मोरोपन्त द्वितीय बाजीराव पेशवा के भाई चिमाजी आपासाहब के नौकर थे और उन्हें ५०) मासिक वेतन मिलता था। आपासाहब की उनपर बहुत कृपा-दृष्टि थी।

मोरोपन्त की पत्नी का नाम भागीरथी बाई था। ता० १६ नवम्बर १८३५ ई० को मोरोपन्त के घर में एक कन्या का जन्म हुआ। माता-पिता ने कन्या का नाम मनूबाई रक्खा। यही कन्या पति-गृह में जाकर लक्ष्मीबाई के नाम से प्रसिद्ध हुई।

मनूबाई चन्द्रकला की भाँति दिनोंदिन बढ़ने लगी। वह बड़ी रूपवती थी। उसके विशाल नेत्र और गौर वर्ण को देख सभी प्रसन्न होते। बाजीराव पेशवा तथा अन्य लोग उसे 'छबीली' कहकर पुकारते थे। बाजीराव के दत्तक-पुत्र नाना-साहब और रावसाहब भी उस समय बालक ही थे। मनूबाई और दोनों बालक परस्पर नाना प्रकार के खेल खेला करते थे।

दी

मनूबाई की शिक्षा का प्रबन्ध भी उनके साथ ही किया गया। मनू अपनी स्वाभाविक चपलता के कारण जो कुछ नानासाहब को करते देखती उसी के लिए हठ करती। यदि नानासाहब घोड़े पर सवार होकर घूमने जाते तो मनू भी उनके साथ घोड़े पर सवार होकर जाती।

नानासाहब के साथ-साथ विद्याभ्यास करते हुए पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त मनूबाई ने तीर चलाना, घोड़े की सवारी, व्यायाम तथा युद्ध-कला आदि की भी शिक्षा ग्रहण कर ली। यही शिक्षा मनू के भावी जीवन की वीरता और साहस की नींव है। इसी बाल्यावस्था में मनूबाई के हृदय में क्षत्रियत्व का बीज बोया गया। बाद में यही बीज समय पाकर पनप उठा।

झाँसी के महाराज गंगाधर राव के साथ मनूबाई का विवाह हुआ। सन् १८५१ ई० में लक्ष्मीबाई के एक पुत्र हुआ। पर वह तीन ही महीने जीवित रहा। उसकी मृत्यु ने महाराज गंगाधर राव को इतना शोकग्रस्त किया कि वे बीमार रहने लगे। सन् १८५३ में उनकी बीमारी बहुत बढ़ गई। जब उनके जीने की कोई आशा न रही तो उन्होंने दामोदरराव नामक एक बालक को गोद लिया। इसके थोड़े ही दिन बाद महाराज की मृत्यु हो गई।

इधर तो यह विपत्ति आयी, उधर अंग्रेजों ने गोद लेने की क्रिया को कानून-विरुद्ध करार दे दिया और असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट ने झाँसी के किले में रखे हुए राज-कोष पर ताला लगा

दिया तथा उसकी रक्षा के लिए फ़ौज रख दी। पोलिटिकल एजेंट ने इस बात की घोषणा भी कर दी कि झाँसी का राज्य सरकारी राज्य में मिला लिया गया है और महारानी को ५ हज़ार रुपये मासिक पेन्शन दी जाया करेगी। इस प्रकार महारानी से झाँसी का राज्य छीन लिया गया। महारानी लक्ष्मीबाई इस घटना से अत्यन्त दुखी हुईं और वे पूजा-पाठ और धर्म-कर्म में अपने दिन काटने लगीं।

सन् १८५७ आया। देश में विद्रोह की आग भड़क उठी। अंग्रेज़ी सरकार के हिन्दोस्तानी सिपाहियों ने ही इसका श्रीगणेश किया था। झाँसी भी इस विद्रोह की आग से बच न सकी। लोग अंग्रेज़ों के प्राणों के गाहक हो गए। विद्रोहियों ने झाँसी के किले को घेर लिया। अंग्रेज़ों ने महारानी लक्ष्मीबाई से सहायता माँगी। विद्रोहियों ने लक्ष्मीबाई तक यह समाचार पहुँचने न दिया और जो अंग्रेज़ महारानी के पास लेकर जा रहे थे उन्हें मार डाला। इसके अतिरिक्त किले के भीतर भी अंग्रेज़ मार डाले गए। विद्रोह करनेवाले अंग्रेज़ी फ़ौज के ही सिपाही थे। परन्तु इसका उत्तरदायित्व महारानी लक्ष्मीबाई पर डाला गया। अंग्रेज़ों को सन्देह हो गया कि महारानी विद्रोहियों से मिल गई हैं।

महारानी ने अंग्रेज़ों की भरसक सहायता की, परन्तु सब बातों के प्रमाण रहने पर भी ब्रिटिश सरकार ने रानी की मित्रता पर विश्वास न किया। इस समय झाँसी में कोई अंग्रेज़ अधिकारी

नहीं था। फलतः महारानी ने झाँसी का प्रबन्ध फिर अपने हाथ में ले लिया और गवर्नर-जनरल के एजेंट को लिख भेजा कि जबतक फिर सरकारी प्रबन्ध न हो सके, तबतक के लिए मैंने यहाँ का कारोबार संभाल लिया है। ज्योंही कोई अंग्रेज प्रतिनिधि यहाँ आयगा, उसे कारोबार सौंप दिया जायगा। महारानी ने जिस पत्रवाहक के हाथ यह पत्र भेजा था, उसे ओरछे के दीवान नत्थेखा ने मार्ग में ही मार डाला और अंग्रेजों को लिख दिया कि महारानी विद्रोहियों के साथ मिल गई हैं; मैं अंग्रेजी इलाक़ों की रक्षा कर रहा हूँ। अंग्रेजों के हृदय में और भी दुश्मनी की आग भड़की। वे महारानी को अपना पक्का शत्रु समझने लगे। फलस्वरूप सर ह्यूरोज़ ने अंग्रेज़ी सेना के साथ आकर झाँसी को घेर लिया। अंग्रेजी सेना को बढ़ते देखकर महारानी लक्ष्मीबाई ने विप्लवकारियों का सेनापतित्व ग्रहण किया। महारानी ने प्रत्येक मोरचा अपनी उपस्थिति में तैयार कराया। सर ह्यूरोज़ लिखता है कि रानी लक्ष्मीबाई के साथ झाँसी की सैकड़ों स्त्रियाँ तोपखानों में काम करती दिखाई दे रही थीं। वह संग्राम आठ दिन तक होता रहा। महारानी के पास अंग्रेजों-जैसी सेना नहीं थी, वहाँ तो कुछेक स्वतंत्रता-प्रेमी ही आ जुटे थे। अंग्रेजों की विशाल सेना के सामने झाँसी की मुट्ठी भर सेना का ठहरना असम्भव था।

ग्यारह दिन तक भीषण संग्राम होता रहा। ग्यारहवें दिन अंग्रेज़ी सेना ने झाँसी पर अन्तिम बार हमला किया। चारों ओर

आक्रमण होने लगे। रानी अपने घोड़े पर सवार होकर सिपाहियों और अफ़सरों के हौसले बढ़ा रही थीं, परन्तु सफलता प्राप्त न हो सकी। अंग्रेज़ी सेना नगर में घुस गई और उसने झाँसी पर अधिकार कर लिया। अब महारानी को अपने जीवन की भी आशा न रही। वह समय विचार का नहीं था। महारानी अपने छोटे बच्चे दामोदरराव को कमर में बाँधकर लगभग एक हज़ार सिपाहियों सहित अंग्रेज़ी सेना की ओर लपकीं। दोनों दलों में तलवारों की लड़ाई होने लगी। महारानी उस समय साक्षात् दुर्गा जान पड़ती थीं। अंग्रेज़ी सेना महारानी को पकड़ना चाहती थी, परन्तु महारानी अपने अतुल पराक्रम से शत्रु-सेना को चीरती हुई निकल गईं और भूखी-प्यासी १०२ मील चलकर कालपी जा पहुँचीं।

झाँसी पर पूर्ण अधिकार कर लेने के बाद सर रोज़ ने कालपी की ओर मुँह मोड़ा। कालपी से ४२ मील की दूरी पर सर रोज़ और लक्ष्मीबाई की सेनाओं का आमना-सामना हुआ। यहाँ भी महारानी की हार हुई और उनकी सेना कालपी लौट आई। इसके बाद सर रोज़ ने कालपी पर आक्रमण किया। महारानी ने अपनी पराजित सेना को पुनः प्रोत्साहित किया और मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ीं। घमासान युद्ध हुआ। एक बार अंग्रेज़ी सेना के पाँव उखड़ गए। महारानी अपने घोड़े पर सबसे आगे थीं। महारानी का युद्ध-कौशल देख शत्रु भी दंग रह गए। तिस पर भी अन्त में मैदान सर रोज़ के ही हाथों रहा।

तत्पश्चात् गोपालपुर में तात्याटोपी, महारानी लक्ष्मीबाई और रावसाहब की फिर भेंट हुई। महारानी ने रावसाहब को ग्वालियर विजय करने की सलाह दी। फलतः ग्वालियर पर चढ़ाई की गई और ग्वालियर पर उनका अधिकार हो गया। इतने में ही सर रोज़ अपनी सेना सहित ग्वालियर पर आ धमका। महारानी और तात्याटोपी ने संग्राम का आयोजन किया। महारानी ने यह युद्ध अन्तिम युद्ध समझा। इसलिए अधिक उत्साह के साथ मैदान में उतरीं। भीषण लड़ाई हुई। महारानी ने अलौकिक वीरता के साथ मुकाबला किया। परन्तु अनगिनत अंग्रेज़ी सेना ने रानी की मुख्य सेना को तितर-बितर कर दिया। महरानी को कुछ निराशा-सी हुई, पर अन्तिम समय तक महरानी ने युद्ध किया। शत्रुओं से घिर जाने पर भी वे तलवार की प्यास बुझाती रहीं और किसी तरह उस घेरे से निकल गईं। अंग्रेज़ी सेना ने उनका पीछा किया, परन्तु उन तक पहुँचना कठिन था। महारानी अकेली कब तक लड़ सकती थीं? अन्त में उनका समय निकट आ गया। एक अंग्रेज़ सिपाही ने पीछे की ओर से तलवार का वार किया। महारानी के सिर का भाग आँख सहित कट गया। तिस पर भी महारानी लड़ती रहीं। इतने में एक वार रानी की छाती पर हुआ। सिर और छाती दोनों से रक्त की धार बह निकली। बेहोश होते-होते रानी ने अपनी तलवार से, सामने से वार करनेवाले को भी काटकर गिरा दिया। किन्तु इसके बाद महारानी में और अधिक शक्ति न रही।

उस समय महारानी का एक वफ़ादार नौकर रामचन्द्रराव देशमुख पास था। घटना-स्थल के पास ही गंगादास बाबा की कुटिया थी। रामचन्द्रराव उन्हें उठाकर कुटिया में ले गया। बाबाजी ने उन्हें पीने को ठंडा पानी दिया। थोड़ी ही देर के बाद महारानी का नश्वर शरीर इस संसार को छोड़ गया। रामचन्द्रराव ने महारानी की इच्छानुसार चिता बनाई और उसपर उनके मृत शरीर को लिटा दिया। थोड़ी ही देर में आग की लपटों में लक्ष्मीबाई के शरीर की केवल अस्थियाँ शेष रह गईं।

मृत्यु के समय उनकी अवस्था केवल तेईस वर्ष की थी। इतने छोटे जीवन में उन्होंने जो अलौकिक वीरता दिखाई, उसकी गाथा संसार में सूर्य-चन्द्र के समान विद्यमान रहेगी।

शब्दार्थ

अग्रगण्य = प्रधान, प्रमुख। चकाचौंध करना = आँखें चौंधियाना। किसी के गीत गाना = किसी की प्रशंसा करना। अलौकिक = अद्भुत। पदाधिकारी = अफ़सर। दत्तक-पुत्र = गोद लिया गया पुत्र। चपलता = चंचलता। क्षत्रियत्व = क्षत्रिय का धर्म। पनप उठा = विकसित हुआ। श्रीगणेश = आरम्भ। उत्तरदायित्व = ज़िम्मेदारी। भरसक = यथाशक्ति। फलस्वरूप = इसके फल के रूप में, परिणाम। विप्लवकारी = विद्रोही। सेनापतित्व = सेनापति का पद। मुट्ठी-भर = बहुत थोड़ी। भीषण = भयंकर। दुर्गा = युद्ध की देवी, चंडी। आमना-सामना =

मुठभेड़। घमासान = घोर, भीषण। पाँव उखड़ना = भाग निकलना। दंग = चकित। मैदान हाथों रहना = जीतना। आयोजन = प्रबन्ध। मुकाबला = सामना। तितर-बितर = छिन्न-भिन्न। वफ़ादार = कर्त्तव्य-परायण। नश्वर = नष्ट होनेवाला। अस्थियाँ = हड्डियाँ। विद्यमान = वर्त्तमान।

चीन की बड़ी माँ

[प्रो० माहेश्वरी सिंह 'महेश' के इस लेख में चीन की एक ऐसी महिला का जीवन-वृत्तान्त दिया गया है जो उस देश के इतिहास से अपने देश-प्रेम, अनाथ बच्चों और घायल सिपाहियों की सेवा-शुश्रूषा तथा आत्म-त्याग आदि विविध गुणों के कारण चिरस्मरणीय रहेगी।]

उसका नाम था—चियांगकियान, किन्तु दुनिया उसे 'बड़ी माँ' के नाम से याद रखेगी, यद्यपि दुःखी और घायल सिपाहियों के बीच वह सिर्फ़ 'माँ' के नाम से मशहूर थी। जिस समय चीन में लड़ाई छिड़ी, चियांगकियान का स्वास्थ्य बहुत खराब था। उसके पति ने उसे मेहनत करने से बार-बार रोका, लेकिन उसने परोपकार के आगे अपने स्वास्थ्य की परवाह न की। उसने बड़ी बेचैनी से देश की पुकार सुनी और वह देश की सेवा करने को तैयार हो गई।

चियांगकियान के पति का नाम है—चौ-मिंग-टंग। चौ-मिंग-टंग डॉक्टर है। उसने जर्मनी में डाक्टरी की शिक्षा पाई है। वह इस बात को जानता था कि यदि चियांगकियान

अच्छी तरह आराम न करेगी, तो उसकी ज़िन्दगी खतरे में पड़ जायगी। किन्तु 'बड़ी माँ' के हठ के सामने कौन बोले!

उसकी मृत्यु से न केवल उसके छोटे लड़के और पति को दुःख पहुँचा, वरन् वे ३०० बच्चे भी जो लड़ाई के कारण अनाथ हो चुके थे, हाहाकार कर उठे। इतना ही नहीं, वे सैकड़ों सिपाही जिन्हें उसके स्नेह से दूसरा जीवन मिला था, रो उठे। यही कारण है कि सारे देश ने यह निश्चय किया है कि हर साल १० नवम्बर को प्रातःकाल ६ बजे सभी घायल सिपाही उसकी याद में तीन मिनट तक मौन-व्रत धारण करेंगे।

यों तो 'बड़ी माँ' अपने जीवन के कुल तीन ही वर्ष सेवा में लगा सकी, किन्तु इतने ही दिनों में उसने ममता, साहस, लगन और कष्ट सहने की शक्ति की हद दिखा दी। उसने बहुत जगह काम किया, और जहाँ कहीं काम किया, अपने प्रेम और स्नेह से सबको चकित कर दिया।

चियांगकियान का जन्म एक धनी घराने में हुआ था। उसका विवाह छुटपन ही में हो गया था। इसलिए उसे स्कूल-कॉलेज की ऊँची शिक्षा से वंचित रह जाना पड़ा। फिर भी वह घर चलाने में बहुत निपुण थी और बड़ी सफल माता बनी। जब लड़ाई छिड़ी, तो लोगों ने देखा कि उसका दिल एकदम बदला हुआ है।

उसने देश-सेवा का मंत्र लिया। शुरू में उसने अपने पति से रोगियों की सेवा करने की ज़रूरी बातें सीख लीं। बाद में

उसने नर्स का काम सीखा। ऐसा करने से वे बालिकाएँ उसकी ओर आकृष्ट हुईं जो जापानी सैनिकों के डर से घर-द्वार छोड़कर भाग आई थीं।

१९३७ ई० के सितम्बर मास में वह अपनी दस नर्सों को लेकर काम करने के लिए चल पड़ी। उसे हांगकांग के पाँचवें सिपाही-अस्पताल में ५० रोगियों की देखरेख का भार दिया गया। घाव धोने और मरहम-पट्टी करने में उसने वह स्नेह और ममता दिखाई कि वहाँ के सभी लोग आश्चर्य करने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि अस्पताल के प्रत्येक कोने से चियांगकियान को लोग बुलाने लगे।

इस बढ़ते हुए यश का मतलब था, 'बड़ी माँ' के लिए और ज्यादा काम। अब उसने अपनी और दस नर्सों को बुला भेजा। वह बहुत सबेरे से तीसरे पहर तक काम में जुटी रहती थी। वह अपनी छुट्टी की घड़ियों में रोगियों के लिए कपड़े सीती, चिट्ठियाँ लिखती और उनका जी बहलाने के लिए कहानियाँ कहती। वह इस तरह लगातार नौ महीनों तक सेवा करती रही। इतने दिनों में वह केवल एक दिन, जिस दिन उसकी सास का देहान्त हुआ था, गैरहाजिर रही। अपने इकलौते बेटे की बीमारी में भी उसने अस्पताल आना बन्द न किया। इन दुःख और शोक की घड़ियों में भी किसीने उसके मुँह पर उदासी न देखी।

जनवरी महीने की ३१ वीं तारीख से चीन का नया साल

शुरू होता है। सन् १९३८ की बात है, चीन का वही खुशी का दिन आ रहा था। उस दिन सभी घायल सिपाही अपने-अपने घर जानेवाले थे। सभी आनन्द-सागर में उतरा रहे थे। इधर 'बड़ी माँ' ५०० घायल सिपाहियों के लिए रात-रात जागकर भेंट की ५०० चीज़ें तैयार करने में लगी थी। लोग समझ रहे थे कि नये साल के प्रथम दिन वह गैरहाजिर रहेगी; किन्तु सब-के-सब अचम्भे में आ गए, जब वह सबके लिए कई डालियों में उपहार लेकर आई। सबकी आँखें गीली हो गईं और सभी उसकी भलाई मनाने लगे। उसने भरे हृदय से सबको विदा किया। घर पहुँचकर सबने पत्र लिखे। इन सारे पत्रों में लोगों ने उसे 'घायलों की माँ' के नाम से पुकारा था।

हांगकांग में सेवा का काम समाप्तकर 'बड़ी माँ' ईचांग गई। वहाँ उसने सिपाहियों के अस्पताल में काम शुरू किया। वहाँ रहते हुए एक बार कुछ गड़बड़ी के कारण भोजन के लिए धन की कमी पड़ गई। 'बड़ी माँ' ने तुरत ही गानेवाले लोगों का एक दल बनाया और देखते-देखते कई हज़ार रुपये जमाकर अन्न की कमी को दूर किया।

इधर 'बड़ी माँ' का काम बढ़ता जा रहा था, और उधर उसका स्वास्थ्य दिन-दिन गिरता जा रहा था; किन्तु उसने इस तरफ़ भूलकर भी ध्यान न दिया। ईचांग में रहते हुए उसे १०० अनाथ बच्चों को लेकर चुंगकिंग के अनाथालय में जाना पड़ा। विचार था कि वह उन्हें पहुँचाकर लौट आयगी, किन्तु

बच्चे इसके लिए राज़ी न हुए और खाना-पीना छोड़कर जान देने को तैयार हो गए। लाचार होकर 'बड़ी माँ' को अनाथालय की अध्यक्षा बनना पड़ा। इस पद पर उसे कोई तनख्वाह नहीं मिलती थी, क्योंकि उसने कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया था।

अस्पताल और अनाथालय—दोनों जगहों में उसने एक ही लगन से काम किया। वह स्नेह की पुतली थी। सभी उसकी निपुणता पर ख़ुश थे। कुछ दिनों बाद उसका परिवार भी यहीं चला आया। उसका पति अपनी ख़ुशी से अनाथालय का डॉक्टर बना तथा उसका बच्चा वहाँ के अनाथ बच्चों के साथ रहने, खेलने-कूदने और पढ़ने लगा। 'बड़ी माँ' के लिए वहाँ के सभी अपने थे। जब कभी कोई बीमार पड़ता, वह रात-रात भर जागकर उसकी सेवा-टहल करती। वह बच्चों को इतने प्यार से रखती कि आसपास के अनाथालयों से बच्चे भाग-भागकर उसके पास आकर रहने लगे।

'बड़ी माँ' अकसर कहा करती थी—"मैं तो एक मामूली स्त्री हूँ। मुझे शिक्षा की ऊँची बातों का जरा भी ज्ञान नहीं। किन्तु मैं इतना अवश्य जानती हूँ कि बच्चों को प्यार किस तरह किया जाता है। मेरा विश्वास है कि यदि बच्चों की उचित देख-रेख हुई, तो वे बड़े होकर बड़े अच्छे नागरिक बन सकेंगे।"

किन्तु, शोक! 'बड़ी माँ' इस शुभ दिवस को देखने के लिए जीवित न रह सकी और वह १९४० ई० के अक्टूबर महीने में ३८ वर्ष की उम्र में स्वर्गलोक को सिधार गई।

शब्दार्थ

बेचैनी = व्याकुलता। निपुण = कुशल, होशियार। देहान्त = मृत्यु। अनाथालय = यतीम-ख़ाना। तनख़्वाह = वेतन, दरमाहा। इन्कार = अस्वीकार।

महात्मा गौतम बुद्ध

[इस प्रबन्ध में बौद्ध-धर्म के प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध का संक्षिप्त जीवन-चरित्र बड़ी ही सरल भाषा में दिया गया है। प्रबन्ध संक्षेप में होते हुए भी कई दृष्टियों से पूर्ण समझा जायगा।]

हमारे हिन्दुस्तान में बहुत-से धर्म हैं। जैसे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, पारसी, बौद्ध वग़ैरह। इन सब धर्मों को फैलानेवाला कोई न कोई बड़ा आदमी हुआ है। इन्हीं बड़े आदमियों में से महात्मा गौतम बुद्ध भी हैं। उन्होंने बौद्ध धर्म चलाया था।

गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में पैदा हुए थे। उनके पिता महाराजा शुद्धोदन थे। कपिलवस्तु उनकी राजधानी थी। महाराजा शुद्धोदन बहुत बहादुर और बुद्धिमान् राजा थे। वे चाहते थे

कि मेरा लड़का भी मेरी ही तरह हो। इसलिए उन्होंने गौतम के पढ़ाने-लिखाने का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया।

जब गौतम अठारह साल के हुए तो उनकी शादी कर दी गई। थोड़े दिनों में उनके एक लड़का भी पैदा हुआ। लेकिन उनकी तबीयत बचपन ही से राज के कामों में न लगती थी। वे हमेशा सोचते रहते थे। जब शिकार के लिए जाते तो वहाँ यह सोचते कि बेचारे हरिण ने मेरा क्या बिगाड़ा है? मैं उसको क्यों मारूँ? यह सोचकर तीर-कमान फेंक देते और घर वापस चले आते थे।

महाराजा शुद्धोदन उनका यह हाल देखकर बहुत परेशान हुए। दुनिया के कामों में उनका दिल लगाने के लिए उन्होंने तरह-तरह के उपाय किए। उनके लिए अलग एक बहुत अच्छा महल बनवाया। उसमें रोज़ नये-नये खेल-तमाशे हुआ करते थे। लेकिन गौतम का दिल कभी ऐसे कामों में न लगा।

एक दिन रात में गौतम ने बहुत बुरा स्वप्न देखा। उसका उनके ऊपर बहुत असर पड़ा। इन सब बातों से इनको मालूम हो गया कि दुनिया कुछ नहीं है। तीस साल की उम्र में, एक दिन, राज-पाठ छोड़कर, उन्होंने जंगल का रास्ता लिया। फिर सिर के बाल मुँड़वा डाले। सब कपड़े उतारकर फ़कीर बन गए। अब वह इस खोज में लगे कि इस दुनिया की तक़लीफ़ें कैसे मिटाई जायँ।

गौतम इसी ख़याल में बहुत दिनों तक इधर-उधर घूमते रहे। लेकिन उनके दिल को कहीं भी चैन न मिला। इसके बाद पटना और गया के पास उन्होंने सात साल तक बहुत कड़ी तपस्या की। इस कड़ी तपस्या से वे बहुत दुबले और कमज़ोर हो गए। तपस्या के बाद उनको यह बात मालूम हुई कि सच्चा सुख पाने का रास्ता यह नहीं है।

गौतम एक दिन एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठे हुए ध्यान कर रहे थे। ध्यान में उनको यह मालूम हुआ कि कोई मुझे यह समझा रहा है—"तप करने से और बदन को तकलीफ़ देने से कुछ नहीं होता। अगर इस दुनिया और उस दुनिया में सुख पाना चाहते हो तो अपनी ज़िन्दगी को पवित्र बनाओ। सबपर रहम करो और किसी को तकलीफ़ न दो।" गौतम को यक़ीन हो गया कि सच्चा रास्ता यही है।

गौतम बुद्ध जंगल से लौटकर सबको यही सच्चा रास्ता बताने लगे। उन्होंने दूर-दूर के देशों में जा-जाकर सबको उपदेश दिया। इनके उपदेश इतने अच्छे थे कि बहुत से आदमी इनके बताए हुए रास्ते पर चलने लगे। ये कहते थे कि आदमी 'जो बोएगा वही काटेगा।' यानी, जो आदमी जिस तरह का काम करेगा उसको उसी तरह का फल भी मिलेगा। दूसरों के साथ नेकी करनी चाहिये। जानवरों को भी सताना बुरा है।

सबको ऐसे अच्छे उपदेश देकर अस्सी साल की उम्र

में उन्होंने दूसरी दुनिया का रास्ता लिया। इसीलिए मर जाने के बाद भी अब तक उनकी बड़ाई दुनिया के कोने-कोने में हो रही है।

शब्दार्थ

तबीयत = मन, चित्त। असर = प्रभाव। फ़क़ीर = योगी, साधु। रहम = दया, कृपा। यक़ीन = विश्वास। नेकी = उत्तम व्यवहार, भलमनसाहत। दूसरी दुनिया = स्वर्ग, परलोक।

हातिम

[अरब देश का सुप्रसिद्ध दानी हातिम अपनी अनुपम दानवीरता के लिए दुनिया में मशहूर हो गया है। प्रस्तुत लेख में उसकी दानशीलता की एक घटना के उल्लेख द्वारा उसकी महत्ता और उदारता का परिचय दिया गया है।]

अरब देश में हातिम नाम का एक व्यक्ति रहता था। वह दान बहुत किया करता था। दुनिया में आजतक उसके बराबर दान करनेवाला कोई नहीं पैदा हुआ। दान करने की वजह से हातिम का नाम अरब भर में मशहूर हो गया था। सब हातिम की तारीफ़ करते थे। यह बात बादशाह को बुरी लगी। उसने सिपाहियों को हुक्म दिया कि हातिम का घर-बार लूट लो और उसका सिर काटकर मेरे सामने लाओ।

उसने यह भी ऐलान किया कि जो हातिम का सर काटकर मेरे सामने लायगा उसको बहुत-सा इनाम दिया जायगा। अगर ज़िन्दा पकड़कर वह मेरे सामने लाया जायगा तो लानेवाले को एक हज़ार अशर्फ़ियाँ इनाम दी जायँगी।

जब हातिम को इस बात की खबर मिली तो वह वेश बदलकर घर से निकल गया और जंगल में छिपकर रहने लगा। सिपाहियों ने पहले उसका घर-बार लूटा, फिर उसकी तलाश करने के लिए जंगल की तरफ़ निकल पड़े।

एक दिन एक ग़रीब लकड़हारा जंगल में लकड़ी काट रहा था। लकड़ी काटते-काटते जब वह थक गया तो कहने लगा—"ऐ खुदा! आज मुझे हातिम मिल जाता तो मैं उसे बादशाह के पास ले जाता और इनाम पाकर रोज़-रोज़ लकड़ी काटने की मुसीबत से छुट्टी पा जाता।"

हातिम उसी जगह छिपा हुआ यह सुन रहा था। वह फ़ौरन लकड़हारे के पास आया और कहने लगा—"हातिम तुम्हारे सामने खड़ा है। उसे पकड़कर बादशाह के पास ले चलो और उससे इनाम लेकर अपनी ग़रीबी दूर करो।"

लकड़हारा यह सुनकर बहुत हैरान हुआ। वह अपनी बात पर शर्मिन्दा होकर कहने लगा—"ऐ नेक हातिम, मुझसे यह कभी न होगा। मैं इससे भी ज़्यादा मुसीबत सहूँगा, मगर आप जैसे रहमदिल आदमी को अपने हाथों से पकड़कर बादशाह के पास न ले जाऊँगा।"

हातिम ने लकड़हारे से कहा—"अगर तुम मुझे बादशाह के पास न ले जाओगे तो मैं खुद बादशाह के पास जाकर कहूँगा कि लकड़हारे ने मुझे देखा और आपके पास पकड़कर नहीं लाया। बादशाह जब यह सुनेगा तो तुमको जान से मरवा डालेगा।"

ये बातें हो रही थीं कि इतने में चन्द सिपाही आ पहुँचे और हातिम को पकड़कर बादशाह के पास ले गए। हर सिपाही यही कहता था कि हातिम को मैंने पकड़ा है; इनाम मुझको मिलना चाहिए। बादशाह हैरान था। उसकी समझ में न आता था कि हातिम को किसने पकड़ा और किसे इनाम देना चाहिए।

हातिम ने बादशाह से कहा—"ये सब सिपाही झूठे हैं। मुझे इन सिपाहियों में से किसी ने नहीं पकड़ा। मुझको पकड़नेवाला यह ग़रीब लकड़हारा है, इनाम इसी को मिलना चाहिए।

जब बादशाह ने लकड़हारे से पूछा तो उसने सारा हाल साफ़-साफ़ कह सुनाया। हातिम की रहमदिली की बात सुनकर बादशाह को बड़ा ताज्जुब हुआ। उसने अपनी जगह से उठकर हातिम को गले से लगा लिया और उसका सारा माल असबाब वापिस करके कहने लगा—"अरब में जितनी तुम्हारी तारीफ़ होती है, तुम उससे भी ज्यादा तारीफ़ के लायक हो।"

शब्दार्थ

वजह = कारण। तलाश = खोज। खुदा = ईश्वर। मुसीबत = विपत्ति।

शर्मिन्दा = लज्जित। नेक = भला। रहमदिल = दयालु। ताज्जुब = आश्चर्य।

पहलवान राममूर्ति

[इस लेख में भारत के प्रसिद्ध पहलवान राममूर्ति का संक्षिप्त जीवन-चरित्र दिया गया है। इसमें दिखलाया गया है कि लगन और परिश्रम के बल पर वे किस प्रकार अद्भुत शारीरिक बल प्राप्त कर सके। इसके पढ़ने से पाठकों को प्रोत्साहन मिलेगा।]

कसरत बदन के लिए बहुत ज़रूरी और अच्छी चीज़ है। कसरत से तन्दुरुस्ती बढ़ती है और बदन में ताक़त आती है। हर रोज़ नियम से कसरत करने से आदमी पहलवान हो जाता है। पुराने ज़माने में हमारे देश में हर एक आदमी कसरत करता था और कसरत सिखाने के लिए जगह-जगह पर अखाड़े थे। आजकल लोग कसरत पर ध्यान नहीं देते, इसलिए हिन्दुस्तान के नौजवान कमज़ोर हो गए हैं।

हिन्दुस्तान में बड़े-बड़े पहलवान हो गए हैं। इनमें राममूर्ति, गामा, इमामबख़्श वग़ैरह बहुत प्रसिद्ध हैं। इन लोगों के नाम दुनिया भर में प्रसिद्ध हो गए हैं।

राममूर्ति का जन्म आंध्रदेश में विशाखपट्टम् ज़िले में हुआ था। वे बचपन में बहुत दुबले-पतले थे। उनकी तन्दुरुस्ती अच्छी नहीं थी। वे हमेशा बीमार रहा करते थे। बचपन में वे भीम

और हनुमान् की कहानियाँ सुनते और सोचते कि मैं भी कहीं ऐसा ही ताक़तवर होता तो कितना अच्छा होता! स्कूल में पढ़ते वक्त भी वे इसी का स्वप्न देखा करते थे।

राममूर्ति ने कसरत करना शुरू किया। उन्होंने कुछ दिन तक विलायती ढंग की कसरत की। लेकिन कुछ फ़ायदा नहीं हुआ। आख़िर देशी ढंग से ही कसरत करना शुरू किया। वे अखाड़े में दंड-बैठकें करने और कुश्ती लड़ने लगे। वे हर रोज़ सबेरे तीन कोस दौड़ते और फिर कुश्ती लड़ते। शाम को तीन हज़ार दंड और दस हज़ार बैठकें करते। जब वे सोलह वर्ष के हुए तो उनमें इतनी ताक़त आ गई कि अगर किसी नारियल के पेड़ को ज़ोर से धक्का मारते तो दो तीन नारियल टप-टप नीचे गिर पड़ते।

राममूर्ति खूब खाते थे। दही उनका बड़ा प्यारा था। वे रोज़ तीन सेर दही और आधा सेर घी, भात के साथ खा जाते थे। रोज़ दो सेर बादाम का शरबत तो वे ज़रूर ही पीते। वे मांस कभी छूते भी नहीं थे।

योरोप का 'यूजेन सैंडो' सारी दुनिया में अपनी ताक़त के लिए मशहूर है। राममूर्ति ने एक बार उसको कुश्ती लड़ने के लिए ललकारा। लेकिन सैंडो राममूर्ति को देखकर डर गया और उसने कुश्ती लड़ने से इन्कार कर दिया।

राममूर्ति ने अपना एक सरकस चलाया और तमाम दुनिया में अपनी ताक़त की करामात दिखाकर बड़ा नाम पैदा किया।

राममूर्ति अपनी छाती पर डेढ़ सौ मन का पत्थर रखवा लेते थे और सौ मन के हाथी को कलेजे पर चढ़ा लेते थे।

हिन्दुस्तान में अपनी ताक़त का डंका बजाकर वे विलायत भी गए थे। राममूर्ति की ताक़त देखकर इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी वग़ैरह मुल्कों के लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। विदेशी पहलवान लोग इनकी ताक़त देखकर जलने लगे। इन्हें दो-तीन बार ज़हर देकर मार डालने की कोशिश की गई, लेकिन पहलवान राममूर्ति ज़हर को भी पचा गए। फ्रांस में कुछ शैतानों ने इनको बहुत तकलीफ़ दी। राममूर्ति अपनी छाती पर एक तख़्ता रखते और उसपर हाथी को चढ़ा लेते थे। इन लोगों ने सरकस के मैनेजर को रिश्वत देकर छाती पर कमज़ोर तख़्ता रखवा दिया। वह तख़्ता हाथी के चढ़ते ही टूट गया। इससे राममूर्ति की तीन हड्डियाँ टूट गईं। इलाज कराने के लिए इन्हें डेढ़ महीने तक अस्पताल में पड़ा रहना पड़ा।

राममूर्ति तेलुगु, अंग्रेज़ी और संस्कृत भाषाएँ जानते थे। हिन्दुस्तानी भी खब बोल लेते थे। ये बहुत बड़े देश-भक्त थे। ये चाहते थे कि हिन्दुस्तान के लड़के खूब कसरत करें और ताक़तवर बनें।

पहलवान राममूर्ति क़रीब साठ साल तक जीकर १९३८ ई० में चल बसे।

शब्दार्थ

बदन = शरीर। तन्दुरुस्ती = स्वास्थ्य। शैतानों = बदमाशों। रिश्वत = घूस।

आरोग्य साधन

[स्वास्थ्य के लिए साफ़ हवा अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में मनुष्य नाना प्रकार की भयंकर बीमारियों का शिकार हो जाता है। इनसे छुटकारा पाने के लिए एक मात्र दवा खुली हवा है। महात्मा गान्धी ने इस छोटे से लेख में इन्हीं बातों को बड़ा साफ़-साफ़ समझाया है।]

शरीर के लिए तीन प्रकार की खुराक आवश्यक है—हवा, पानी और अन्न। इनमें हवा सबसे ज़रूरी चीज़ है। यही कारण है कि प्रकृति ने उसे इतनी अधिकता से उत्पन्न किया है कि वह हमें बिना मोल मिला करती है। लेकिन आजकल के सुधारों ने हवा के भी दाम कर दिए हैं। इस ज़माने में हवा खाने के लिए बाहर जाने की ज़रूरत होती है और उसमें बहुत दाम लगते हैं। बम्बईवालों की तन्दुरुस्ती माथेरन की हवा से सुधरती है। मलबार की पहाड़ी पर उन्हें और भी अच्छी हवा मिलती है; परन्तु दाम चाहिए। इसलिए इस ज़माने में यह कहना कि 'हवा मुफ़्त मिलती है' असंगत जान पड़ता है।

पर हवा मुफ़्त मिले या दामों से, इसके बिना काम घड़ी भर भी चलना कठिन है। ख़ून सारे शरीर में फिर कर फेफड़ों में आकर साफ़ होता और फिर लौट जाता है; दिन रात यही क्रिया हुआ करती है। हर साँस में हमारे शरीर से ज़हरीली हवा

बाहर निकलती है। साफ़ हवा हमारे फेफड़ों के अन्दर जाकर ख़ून को साफ करती रहती है। यह श्वास निकालने और लेने का काम हरदम हुआ करता है और इसी पर मनुष्य का जीवन निर्भर है। पानी में डूबकर मरना क्या है? यही कि हम शरीर के अन्दर की वायु को बाहर नहीं निकाल सकते और न अपने शरीर में शुद्ध वायु दाखिल कर सकते हैं। पनडुब्बे बख़्तर पहनकर पानी में उतरते हैं और पानी के ऊपर रहनेवाली नली के द्वारा बाहर की हवा लेते हैं; इसीसे वे लोग बहुत देर तक पानी के अन्दर रह सकते हैं।

डाक्टरों ने प्रयोग से सिद्ध किया है कि यदि मनुष्य को पाँच मिनट भी हवा के बिना रक्खा जाय तो वह मर जायगा। कभी-कभी माँ की बग़ल में दबे हुए बालक दम घुटकर मर जाते हैं; भूल से बच्चे का मुँह और नाक दब जाने से बाहर की हवा उसे नहीं मिल पाती।

इससे यह समझ में आ जायगा कि हवा हमारी सबसे आवश्यक खुराक है और वह हमें बिना माँगे मिला करती है। पानी और अनाज तो हमें खोजने और माँगने पर ही मिलेंगे, परन्तु हवा हम बिना अपनी इच्छा के ही पाते रहते हैं।

हम जैसे गन्दा पानी पीते और खराब भोजन करते हिचकते हैं वैसे ही हमें गन्दी हवा में साँस लेने में हिचकना चाहिए; परन्तु हम गन्दी हवा का जितना इस्तेमाल करते हैं उतना ख़राब अन्न और पानी का नहीं करते। कारण, हम

लोग मूर्ति-पूजक हैं; मूर्तिमान्—प्रत्यक्ष बातों की ओर ही हमारा विशेष ध्यान रहता है। हवा को हम आँखों से नहीं देख सकते; इससे इस बात का खयाल नहीं होता कि हम साँस से कितनी ख़राब हवा भीतर ले जाया करते हैं। हम दूसरे का जूठा भोजन करते हिचकते हैं, जूठा पानी पीते विचार करते हैं; दूसरेका क़ै किया हुआ अन्न और पानी तो हम कभी ग्रहण न करेंगे। अकाल-पीड़ित भूखा मनुष्य भी मरना क़बूल करेगा परन्तु उसे नहीं खायगा। परन्तु हमलोग अन्य मनुष्यों के द्वारा क़ै की हुई—साँस से बाहर निकाली हुई—हवा बिना किसी प्रकार की घृणा और संकोच के अपनी नाक से मुँह के अन्दर खींचते रहते हैं। आरोग्य शास्त्र के नियमानुसार क़ै की हुई हवा उतनी ही खराब है जितना क़ै किया हुआ अन्न।

यह साबित हो चुका है कि एक मनुष्य की साँस से बाहर निकली हुई हवा किसी दूसरे मनुष्य के फेफ़ड़ों में दाखिल कर दी जाय तो तुरन्त ही उसकी मृत्यु हो जायगी। आश्चर्य है कि बहुतेरे मनुष्य एक ही कोठरी में सट-सट कर बैठते, सोते तथा सड़ी हवा में हरदम साँस लेते रहते हैं। सौभाग्यवश हवा ऐसी चंचल है कि हरदम उड़ती रहती है, तुरत फैल जाती है और बारीक छेदों में भी घुस सकती है। तंग कोठरी में भी दरवाज़े की दराज़ों तथा ऊपरी रास्तों से बाहरी हवा थोड़ी बहुत आती रहती है; इसलिए हमलोग बिलकुल ही क़ै की हुई हवा साँस से फिर अन्दर नहीं ले जाते; उसमें कुछ-न-कुछ ताज़ा हवा मिल

जाती है। हम जो हवा बाहर निकालते हैं वह हमेशा साफ़ हुआ करती है। खुली हवा में साँस लेने पर अन्दर से निकली हुई हवा उसमें मिलकर तुरत फैल जाती है। प्रकृति के नियमानुसार वह साफ़ हो जाती है। प्रकृति साफ़ हवा के परिमाण को सदा स्थिर रखती है। इस छोटी-सी पृथ्वी के चारों ओर हवा बहुत बड़े परिमाण में फैली हुई है।

अब हम आसानी से समझ सकते हैं कि ज्यादा आदमी क्यों बीमार और कमजोर रहा करते हैं? बेखटके कहा जा सकता है कि सौ में निन्नानवे मनुष्यों की बीमारी का कारण खराब हवा ही है। क्षय, बुखार और अनेक छूतवाले रोगों का कारण हमारी साँस से ली हुई ख़राब हवा ही है। इसलिए इनके दूर करने का पहला, सबसे सहज और अन्तिम उपाय यह है कि हम लोग साफ़ हवा में साँस लें। इसकी बराबरी वैद्य, डाक्टर, हकीम कोई भी नहीं कर सकता। क्षयरोग फेफड़े सड़ जाने की निशानी है। और ये ज़हरीली हवा से ही सड़ते हैं। जैसे बुरा कोयला भरने से इंजन खराब हो जाता है वैसे ही ख़राब हवा से फेफड़े बिगड़ जाते हैं। आजकल के डाक्टरों की राय है कि क्षयरोगी के लिए सबसे अच्छा और पहला उपाय उसे चौबीसों घंटे खुली हवा में रखना है। इसके सिवा और कोई उपाय काम नहीं करता।

शब्दार्थ

खुराक = भोजन। असंगत = बेठीक, अनुचित। पनडुब्बे =

गोताख़ोर। बख़्तर=कवच, शरीर-रक्षा की पोशाक। इस्तेमाल=व्यवहार। पूजक=पूजा करनेवाला। मूर्तिमान्=जो रूप धारण किए हो। क्षयरोग='थाइसिस'।

हमको क्या खाना चाहिए ?

[इस लेख में बड़ी खूबी के साथ यह बतलाया गया है कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिए हमें किस प्रकार का भोजन करना चाहिए तथा वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण भोजन किसे समझना चाहिए।]

जो चीजें हम खाते हैं, उन सबसे हमको एक ही तरह का फ़ायदा नहीं होता। कोई चीज़ शरीर को गर्म रखती है और किसी से मांस बनता है।

यदि हम अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहें तो हमको चाहिए कि दोनों तरह की चीजें खाया करें। हमको जितनी ज़रूरत मांस बनानेवाली चीज़ों की है, उससे चार गुना ज़्यादा गर्म रखनेवाली चीज़ों की है। यदि हम एक तरह का खाना ज़रूरत से ज़्यादा खा लें और दूसरी तरह का ज़रूरत से कम, तो हमारा पेट तो भर जायगा, मगर हमारी तन्दुरुस्ती को नुक़सान पहुँचेगा।

बहुत सी खाने की चीजें ऐसी हैं, जिनसे मांस भी बनता है और गर्मी भी पैदा होती है; मगर उनमें एक चीज़ ज़रूरत से ज़्यादा होती है और दूसरी चीज़ ज़रूरत से कम। इसलिए

अगर हम चाहें कि एक ही चीज़ खाकर रहें, तो हमको नुक़सान होगा।

गेहूँ ही को लीजिए। इसमें मांस बनानेवाली और गर्मी पैदा करनेवाली दोनों चीज़ें हैं, मगर पहली बहुत कम है और दूसरी बहुत ज़्यादा। यदि हम सिवा गेहूँ की रोटी के और कुछ न खायँ, तो जितनी मांस बनानेवाली चीज़ की हमें ज़रूरत है, वह हमें तभी मिलेगी जब हम भूख से कहीं ज़्यादा रोटी खायँ। इसमें दो हानियाँ हैं। एक तो इतना खाना हमारा मेदा हज़म न कर सकेगा और दूसरे शरीर में गर्मी ज़रूरत से कहीं ज़्यादा पैदा हो जायगी।

इसलिए खाली गेहूँ खाने से काम नहीं चल सकता। जो लोग गेहूँ खाते हैं, उनको उसके साथ, और कोई ऐसी चीज़ भी खानी चाहिए जिससे मांस बने। और एक गेहूँ पर ही बात नहीं है, खाने में सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ तक हो, कई चीज़ें मिलाकर खानी चाहिए।

इस मुल्क में लोग ऐसी चीज़ें भी ज़्यादा खाते हैं जो पेड़ों से पैदा होती हैं। बहुत से लोग ऐसी चीज़ें भी खाते हैं जो हमको जानवरों से मिलती हैं। ऐसा कौन है जिसको दूध, घी और मक्खन पसन्द न हो? ये सब चीज़ें हमको जानवरों ही से मिलती हैं। बहुतेरे लोग जानवरों का मांस भी खाते हैं।

जो चीज़ें हम खाते हैं उनमें दूध, घी, मक्खन, शक्कर, चावल और गेहूँ का आटा गर्मी पैदा करनेवाले हैं। जो लोग

मांस खाते हैं, उनके शरीर में मांस की चरबी से भी गर्मी पैदा होती है; दूध और गेहूँ से गर्मी पैदा होने के सिवा मांस भी बनता है। मगर मक्खन, घी, शक्कर और चर्बी से केवल गर्मी पैदा होती है।

इन चीज़ों में दूध सबसे अच्छा है। जो चीज़ें बच्चों को ज़िन्दा रखने के लिए ज़रूरी हैं वे सब दूध में मौजूद हैं। बड़ा आदमी भी चाहे तो केवल दूध पीकर रह सकता है; मगर उसे दूध इतना पीना पड़ेगा कि तबीयत ऊब जायगी।

इससे मालूम होता है कि जिन चीज़ों का हमने ऊपर नाम लिया है, उनके सिवा हमको और चीज़ें भी खानी चाहिए। केवल रोटी या दूध से हमको जितनी चाहिए उतनी मांस बनानेवाली चीज़ नहीं मिल सकती और शक्कर, मक्खन, घी और चावल तो हमको सिर्फ़ गर्म रख सकते हैं। तो फिर हम ऐसी कौन सी चीज़ खायँ जिससे मांस भी बने और गर्मी भी मिले?

जो लोग मांस खाते हैं उनको तो गर्मी पैदा करनेवाली और मांस बनानेवाली चीज़ें उसीसे मिल जाती हैं। मगर बहुत से लोग ऐसे हैं जो मांस नहीं खाते। उनको इसके बदले क्या खाना चाहिए?

मूँग, मटर, अरहर और इसी तरह की जितनी और दालें हैं, इन सबमें गर्मी पैदा करनेवाली और मांस बनानेवाली दोनों तरह की चीज़ें होती हैं। मांस बनानेवाली चीज़ जितनी सेर

भर दाल में होती है उतनी सेर भर मांस में नहीं होती। इसीलिए जो लोग मांस नहीं खाते, उनको इसके बदले दाल खानी चाहिए।

हमने गर्मी पैदा करनेवाली और मांस बनानेवाली चीज़ों का हाल तो सुनाया; मगर यह नहीं बताया कि हड्डी बनानेवाली चीज़ें कौन-सी हैं। हड्डियों के बढ़ने के वास्ते भी हमको कोई-न-कोई चीज़ खानी चाहिए। मगर जो चीज़ें गर्मी पैदा करती हैं, या जिनसे मांस बनता है, उनसे हड्डी नहीं बनती।

हड्डियों के लिए उन चीज़ों के खाने की ज़रूरत है जो ज़मीन के अन्दर से निकलती हैं। मगर उनके लिए हमको ज़्यादा फ़िक्र नहीं करनी पड़ती, क्योंकि एक तो इस तरह की चीज़ें यदि रोज़ थोड़ी सी भी हमको मिल जायँ तो हमारा काम चल जाता है और, दूसरे जितना खाना हम रोज़ खाते हैं, उन सबमें ऐसी चीज़ें थोड़ी-बहुत मिली होती हैं।

दूध में चूना होता है और चूना हड्डियों के बनने में मदद देता है। इसी से तो बच्चों को दूध पीने को दिया जाता है। पानी में भी इस तरह की चीज़ें मिली होती हैं। गेहूँ और खाने की और चीज़ें भी उनसे ख़ाली नहीं हैं।

ये चीज़ें हमारे शरीर के लिए बहुत ही ज़रूरी हैं; क्योंकि हमारी हड्डियाँ, दाँत, और नाख़ून इन्हीं से बनते हैं। इन चीज़ों को हम खाते तो हैं; मगर इस तरह कि इनका खाना हमको मालूम नहीं होता।

हाँ, एक चीज़ ऐसी है जो हमको खाने में अलग मिलानी पड़ती है। वह नमक है। जो आदमी स्वस्थ रहना चाहे, उसको नमक ज़रूर खाना चाहिए।

मगर जितना नमक हम ऊपर से खाने में मिलाते हैं, असल में हम उससे कहीं ज्यादा खाते हैं, क्योंकि हमारी खाने की चीज़ों में बहुतेरी ऐसी हैं कि जिनमें कुछ नमक पहले ही से रहता है। नीबू, साग और दूसरी ऐसी बहुत-सी तरकारियाँ और फल हैं, जिनमें नमक होता है। उन चीज़ों से न तो गर्मी पैदा होती है और न मांस बनता है। मगर उनका नमक शरीर को फ़ायदा पहुँचाता है।

शब्दार्थ

नुकसान = हानि। मेदा = पेट। शक्कर = चीनी। फ़िक्र = चिन्ता। फ़ायदा = लाभ।

मुहब्बत के आँसू

[यह गद्यांश महात्मा गान्धी की 'आत्मकथा' से लिया गया है। इसमें उनके बाल्यकाल की एक विशेष घटना का उल्लेख किया गया है। इसके द्वारा यह दिखलाया गया है कि पिता के प्रेम के आँसुओं का उनपर जो नैतिक प्रभाव पड़ा वह कितना प्रबल था।]

एक बार जब मेरी उम्र पन्द्रह वर्ष की थी, मैंने कुछ चोरी की। यह इतना बड़ा पाप था कि मुझसे किसी तरह न सहा

जाता था। मैंने दिल में ठान लिया कि फिर कभी चोरी न करूँगा। मेरा यह भी इरादा हुआ कि अपने पिताजी से यह बात साफ़-साफ़ कह दूँ। मगर हिम्मत न पड़ती थी। यह बात न थी कि मुझे पिताजी के हाथ से मार खाने का डर था। जहाँ तक मुझे याद है उन्होंने हम लोगों को कभी नहीं मारा। डर था तो यह कि उन्हें बहुत दुख होगा।

आखिर मैंने यह तय किया कि मैं अपना यह गुनाह लिखकर पिताजी को दूँ और उनसे सच्चे दिल से माफ़ी माँगूँ। मैंने चोरी की बात एक काग़ज़ पर लिखी और उसे खुद जाकर उन्हें देदिया। उस काग़ज़ में मैंने खाली अपना कसूर ही नहीं लिखा था बल्कि यह लिखा था कि मुझे अच्छी तरह इसकी सज़ा दी जाय। इसके सिवा उनसे यह प्रार्थना की थी कि मेरे क़सूर के बदले वह अपना दिल न दुखाएँ। मैंने इस बात की क़सम खाई है कि मैं फिर कभी चोरी न करूँगा।

जब मैंने काग़ज़ उन्हें दिया तो मैं काँप रहा था। वे उन दिनों बीमार थे। एक चौकी पर लेटे रहते थे। मैंने काग़ज़ उन्हें दे दिया और चौकी के सामने बैठ गया।

उन्होंने इसे पूरा पढ़ा। उनके गालों पर और काग़ज़ पर आँसू टप-टप गिरने लगे। दम-भर वे आँखें बन्द करके सोचते रहे। इसके बाद उन्होंने काग़ज़ फाड़कर फेंक दिया। वे उसे पढ़ने के लिए बैठ गए थे। अब वे फिर लेट गए। मैं भी रोने

लगा। मैं देख रहा था कि उन्हें कैसा दुख है। उसकी याद अब तक मेरे दिल में बाकी है।

इन मुहब्बत के आँसुओं ने मेरे दिल को पाक कर दिया और मेरे गुनाह को धो डाला। यह मेरे लिए अहिंसा का पहला सबक़ था।

शब्दार्थ

मुहब्बत = प्रेम। इरादा = विचार। गुनाह = दोष, अपराध, गलती। माफ़ी = क्षमा। सजा = दंड। क़सम = शपथ, सौगंध। पाक = पवित्र। अहिंसा = किसी को दुख न देना, किसी जीव को न सताना या मारना। सबक़ = पाठ, शिक्षा।

बातचीत में शिष्टाचार

[इस लेख के लेखक श्री कामता प्रसाद गुरु हैं। इस लेख में आपने बातचीत सम्बन्धी शिष्टाचार का महत्त्व दिखाते हुए उसके मुख्य-मुख्य नियमों का सुन्दर ब्योरा दिया है।]

मनुष्य की विद्या, बुद्धि और स्वभाव का पता उसकी बातचीत से लग जाता है। जिसकी बातचीत में सभ्यता और शिष्टाचार का अभाव रहता है, उससे भले मनुष्य बातचीत करना पसन्द नहीं करते।

बातचीत करते समय श्रोता की मर्यादा के अनुसार 'तुम', 'आप' अथवा 'श्रीमान्' का उपयोग करना चाहिए। इनमें 'आप' शब्द इतना व्यापक है कि वह 'तुम' और 'श्रीमान्' का भी स्थान ग्रहण कर सकता है। 'तुम' का उपयोग साधारण मनुष्यों के लिए या अधिक जान-पहचानवाले समवयस्कों के लिए है। 'श्रीमान्' का उपयोग अत्यन्त प्रतिष्ठित मनुष्यों के लिए करना चाहिए। बहुत ही छोटे लड़कों को छोड़कर और किसी के लिए 'तू' का उपयोग करना उचित नहीं। यहाँ तक कि घर के नौकर भी, उनसे 'तू' कहकर किसी काम के लिए कहा जाय तो अपना अपमान समझते हैं। किसी के प्रश्न का उत्तर देने में 'हाँ' या 'नहीं' के लिए सिर्फ़ अपना सिर हिला देना असभ्यता—जङ्गलीपन है। उसके बदले 'जी हाँ' या 'जी नहीं' कहने की बड़ी आवश्यकता है। बातचीत इस तरह रुक-रुककर न की जाय कि जिससे सुननेवाले का मन उचट जाय। सम्भाषण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि बोलनेवाला बहुत देर तक अपनी ही बात न सुनाता रहे, जिससे दूसरों को बोलने का मौका न मिले और वे बोलनेवाले की बक-बक से ऊब जायँ।

बातचीत में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि किसीके जी को दुखानेवाली कोई बात कभी न कही जाय। वार्तालाप को जहाँ तक हो सके कटाक्ष, उपालम्भ और अश्लीलता से दूर रखना चाहिए। अधिकार के अभिमान में

वे

किसी के लिए कठोर शब्द का प्रयोग करना अपनेको असभ्य साबित करना है। किसी नये व्यक्ति के साथ जान-पहचान करने के लिए बातचीत में हद से ज्यादा उत्सुकता न प्रकट की जाय और जब तक बड़ी आवश्यकता न हो किसी की जाति, वेतन, उम्र, वेश, पेशा, धर्म आदि न पूछना चाहिए। कुछ पूछते समय प्रश्नों की झड़ी लगाना ठीक नहीं! अगर कोई आदमी आपका प्रश्न सुनकर भी उत्तर न दे तो उसके लिए उससे अधिक आग्रह न करना चाहिए। यदि ऐसा जान पड़े कि वह व्यक्ति उत्तर देना भूल गया है तो अवश्य नम्रतापूर्वक दूसरी बार उससे प्रश्न किया जा सकता है।

बातचीत में आत्म-प्रशंसा को, जहाँ तक हो सके, बहुत दूर रखना चाहिए। साथ ही बातचीत का ढंग भी ऐसा न हो कि सुननेवाले को उसमें अपने अपमान की झलक दिखाई दे। बातचीत में विनोद बहुत ही आनन्द लाता है, परन्तु हमेशा हँसी-ठट्ठा करने की आदत वक्ता और श्रोता दोनों के लिए हानिकारक है।

यदि कहीं दो-चार सज्जन इकट्ठे होकर किसी विषय पर एकान्त में बातचीत कर रहे हों तो अचानक बिना सूचना दिए उनके बीच में जाना अथवा उनकी बातें सुनना अशिष्टता है। ऐसे अवसर पर लोगों के पास जाकर बिना कुछ पूछे ही बातचीत करने लगना अनुचित है।

बेमतलब किसी की 'हाँ में हाँ मिलाना' चापलूसी है और

न्याय-संगत बातें सुनकर उनका खंडन करना दुराग्रह है। बातचीत करते समय इन दोषों से बचना चाहिए। वार्त्तालाप करते समय दूसरेके उत्तम विचारों का समर्थन करने में या उसकी प्रशंसा में दो-चार शब्द कहने में कभी न चूकना चाहिए, यह चापलूसी नहीं। किसी अनुपस्थित सज्जन की अकारण निन्दा करना शिष्टता के विरुद्ध है, क्योंकि पर-निन्दक को सभ्य-समाज में अनादर की दृष्टि से देखा जाता है।

शिक्षितों के समाज में मत-भेद होने के अनेक कारण उपस्थित होते हैं। इसलिए जब किसी के मत का खंडन करने का मौका आवे तब मनुष्य बहुत ही नम्रता-पूर्वक और क्षमा-प्रार्थना करके उस मत का खंडन करे, और खंडन भी ऐसी चतुराई से किया जाय कि विरुद्ध मतवाले को बुरा न लगे। बातचीत में क्रोध को रोकना चाहिए और यदि यह न हो सके तो उस समय मौन धारण ही उचित है। राह में जाते हुए सड़क पर या गली में खड़े होकर अथवा चलते हुए किसी स्त्री से, विशेष कर दूसरे घर की स्त्री से, बातचीत करना अशिष्टता का लक्षण समझा जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी आवश्यक कार्य में लगा हो या कुछ गम्भीरता के साथ अपने विचारों में डूबा हुआ हो तो उसके पास ही ज़ोर-ज़ोर से बातें न करना चाहिए। रोगी मनुष्य से अधिक समय तक बातचीत करना हानिकारक है।

यदि अपने किसी अनुपस्थित मित्र, आदरणीय व्यक्ति या

किसी के लिए कठोर शब्द का प्रयोग करना अपनेको असभ्य साबित करना है। किसी नये व्यक्ति के साथ जान-पहचान करने के लिए बातचीत में हद से ज्यादा उत्सुकता न प्रकट की जाय और जब तक बड़ी आवश्यकता न हो किसी की जाति, वेतन, उम्र, वेश, पेशा, धर्म आदि न पूछना चाहिए। कुछ पूछते समय प्रश्नों की झड़ी लगाना ठीक नहीं! अगर कोई आदमी आपका प्रश्न सुनकर भी उत्तर न दे तो उसके लिए उससे अधिक आग्रह न करना चाहिए। यदि ऐसा जान पड़े कि वह व्यक्ति उत्तर देना भूल गया है तो अवश्य नम्रतापूर्वक दूसरी बार उससे प्रश्न किया जा सकता है।

बातचीत में आत्म-प्रशंसा को, जहाँ तक हो सके, बहुत दूर रखना चाहिए। साथ ही बातचीत का ढंग भी ऐसा न हो कि सुननेवाले को उसमें अपने अपमान की झलक दिखाई दे। बातचीत में विनोद बहुत ही आनन्द लाता है, परन्तु हमेशा हँसी-ठट्ठा करने की आदत वक्ता और श्रोता दोनों के लिए हानिकारक है।

यदि कहीं दो-चार सज्जन इकट्ठे होकर किसी विषय पर एकान्त में बातचीत कर रहे हों तो अचानक बिना सूचना दिए उनके बीच में जाना अथवा उनकी बातें सुनना अशिष्टता है। ऐसे अवसर पर लोगों के पास जाकर बिना कुछ पूछे ही बातचीत करने लगना अनुचित है।

बेमतलब किसी की 'हाँ में हाँ मिलाना' चापलूसी है और

न्याय-संगत बातें सुनकर उनका खंडन करना दुराग्रह है। बातचीत करते समय इन दोषों से बचना चाहिए। वार्त्तालाप करते समय दूसरेके उत्तम विचारों का समर्थन करने में या उसकी प्रशंसा में दो-चार शब्द कहने में कभी न चूकना चाहिए, यह चापलूसी नहीं। किसी अनुपस्थित सज्जन की अकारण निन्दा करना शिष्टता के विरुद्ध है, क्योंकि पर-निन्दक को सभ्य-समाज में अनादर की दृष्टि से देखा जाता है।

शिक्षितों के समाज में मत-भेद होने के अनेक कारण उपस्थित होते हैं। इसलिए जब किसी के मत का खंडन करने का मौका आवे तब मनुष्य बहुत ही नम्रता-पूर्वक और क्षमा-प्रार्थना करके उस मत का खंडन करे, और खंडन भी ऐसी चतुराई से किया जाय कि विरुद्ध मतवाले को बुरा न लगे। बातचीत में क्रोध को रोकना चाहिए और यदि यह न हो सके तो उस समय मौन धारण ही उचित है। राह में जाते हुए सड़क पर या गली में खड़े होकर अथवा चलते हुए किसी स्त्री से, विशेष कर दूसरे घर की स्त्री से, बातचीत करना अशिष्टता का लक्षण समझा जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी आवश्यक कार्य में लगा हो या कुछ गम्भीरता के साथ अपने विचारों में डूबा हुआ हो तो उसके पास ही ज़ोर-ज़ोर से बातें न करना चाहिए। रोगी मनुष्य से अधिक समय तक बातचीत करना हानिकारक है।

यदि अपने किसी अनुपस्थित मित्र, आदरणीय व्यक्ति या

सम्बन्धी की निन्दा की जा रही हो तो निन्दा करनेवाले को नम्रतापूर्वक समझा देना चाहिए कि वह ऐसा अशिष्ट कार्य न करे और यदि इतने पर भी अपनी बात का कोई प्रभाव उस निन्दक पर न पड़े तो किसी बहाने उसके पास से उठकर चला जाना उचित है।

किसी सभा-समाज में या आम जगह में, जहाँ लोग उपस्थित हों, अपने मित्र या परिचित व्यक्ति से ऐसी भाषा का अथवा ऐसे शब्दों का उपयोग न करना चाहिए, जिन्हें दूसरे न समझ सकें अथवा जो उन्हें विचित्र जान पड़ें।

बातचीत करते समय भाषा पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। कुछ लोग मामूली पढ़े-लिखे लोगों के साथ भी बातचीत करते समय ऐसे शब्दों का उपयोग करते हैं, जो साधारण पढ़े-लिखे लोगों की समझ में नहीं आ सके। इसी प्रकार शिक्षित-समाज में मनुष्य के लिए 'मानुस', माता के लिए 'महतारी', पिता के लिए 'बाप' और भोजन के लिए 'खाना' कहना असंगत है।

अपनी मातृभाषा में बातचीत करते समय बीच-बीच में अँगरेजी शब्दों को मिलाकर एक तरह की खिचड़ी-भाषा बोलने की जो बुरी प्रथा शिक्षित लोगों में चल पड़ी है उसको तो रोक ही देना चाहिए। भारतवर्ष के सभी प्रांत इस 'खिचड़ी संभाषण प्रथा' के प्रवाह में बुरी तरह बहे जा रहे हैं, यह ठीक नहीं है।

हिन्दी बोलनेवालों के साथ बातचीत करते समय उर्दू या अरबी-फ़ारसी के कठिन शब्दों और मुहावरों का इस्तेमाल करना ठीक नहीं समझा जा सकता। हाँ, मुसलमान लोग संस्कृत के शब्द कम समझते हैं, इसलिए उनके साथ बातचीत में संस्कृत के बड़े-बड़े शब्दों का प्रयोग न करके प्रचलित सहल उर्दू-फ़ारसी के शब्दों का इस्तेमाल करना ज़रूरी है जिससे वे हमारी बात अच्छी तरह समझ सकें।

शब्दार्थ

शिष्टाचार=सभ्य व्यवहार, 'एट्टीकेट'। अभाव=कमी। मर्यादा =प्रतिष्ठा। उपयोग=इस्तेमाल। समवयस्क=बराबर-उम्रवाला। सम्भाषण=बातचीत। कटाक्ष=व्यंग्य, आक्षेप। उपालम्भ=ताना। अश्लीलता=फूहड़पन, भद्दापन। उत्सुकता=उत्कंठा। आत्म-प्रशंसा =अपनी तारीफ़। वक्ता=बोलनेवाला। अशिष्टता=असभ्यता। खंडन=विरोध। दुराग्रह=अनुचित हठ। अनुपस्थित=गैरहाज़िर। परनिन्दक=दूसरे की निन्दा करनेवाला। मत-भेद=विचार में फ़र्क़। लक्षण=चिह्न। प्रथा=रीति।

नारंगी का छिलका

[इस लेख के लेखक हैं श्री श्रीप्रकाश। आपने इसमें बतलाया है कि हममें नागरिक ज्ञान का अत्यन्त अभाव है। फलतः हम अपनी भी केवल तात्कालिक सुविधा का ही ध्यान रखते हैं, भावी की सुविधा का

नहीं; तब फिर दूसरों की सुविधा का प्रश्न ही क्या? इस प्रकार की लापरवाही से जान तक जा सकती है। सच्चा देशभक्त वही है जो सच्चा नागरिक हो।]

"मेरे दादा की मृत्यु एक ऐसी दुर्घटना के कारण हुई जिसका प्रतिबंध सहज में हो सकता था। किसीने सड़क पर लापरवाही से नारंगी का छिलका फेंक दिया था, उसीपर फिसलकर वे गिर गए। उनका स्वास्थ्य उस समय अच्छा नहीं था। गिरने से बहुत बड़ा धक्का लगा और वे फिर अच्छे नहीं हुए।"

—सी० एफ० एण्डरूज की जीवनी।

नागरिकता बड़ी सरल वस्तु है अगर हम केवल इस बात को सदा याद रखें कि दूसरों के साथ हम वैसा ही आचरण करें जैसा हम आशा रखते हैं कि दूसरे हमारे साथ करें। साधारण तौर से मनुष्य का यही भाव रहता है कि वह अपनी तात्कालिक सुविधा देखता है और इसकी चिन्ता नहीं करता कि उसकी लापरवाही का परिणाम दूसरों के लिए क्या होगा। जब हम अपने मकान में, सड़क पर या अन्य निजी या सार्वजनिक स्थान में जाते हैं या रेल पर सफर करते हैं तो हमारे सामने सदा अपने भाइयों की लापरवाही का नतीजा देख पड़ता है जिसके कारण दूसरों की जान खतरे में डाल दी जाती है। नारंगी का छिलका तो बड़ा ही निर्दोष मालूम पड़ता है और अपने स्थान पर बड़ा सुन्दर भी होता है परन्तु

वही छिलका यदि अविवेक के साथ अनुपयुक्त स्थान पर फेंक दिया जाय तो खासा भयानक हो जाता है।

अच्छा नागरिक सदा इसका विचार रखता है कि दूसरों को उसके कारण अनावश्यक असुविधा या क्षति न पहुँचे। भारत में सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हमारे घर सुव्यवस्थित हों। घरों में ही बच्चे पाले जाते हैं और वहीं उन्हें अच्छे और सच्चे नागरिक बनने की शिक्षा दी जा सकती है। माता-पिता बाल्यावस्था में जो छोटी-छोटी पर अत्यन्त आवश्यक बातों की शिक्षा देते हैं वह मन में जम जाती है और अपने जीवन का अंग हो जाती है। इसके सामने स्कूलों और कालेजों की शिक्षा, यहाँ तक कि आगे चलकर जीवन के कटु अनुभवों की भी शिक्षा कोई चीज नहीं है। अगर हम अपने घरों को देखें तो यह पाते हैं कि वहाँ सदा सभी चीजें अस्त-व्यस्त रहती हैं। सब चीजें सब जगहों पर पड़ी हुई हैं और सभी काम सभी जगह लोग अपनी तात्कालिक सुविधा के अनुसार करते रहते हैं। इसी कारण फल और तरकारी के छिलके, कागज के टुकड़े आदि चारों तरफ बिखरे रहते हैं और झाड़ू को अपना काम किए देर नहीं होती कि सारा स्थान फिर गन्दा हो जाता है। जान बूझकर हम किसी की हानि करना नहीं चाहते पर हमें इसका खयाल ही नहीं होता कि हम कोई अनुचित कार्य कर रहे हैं, क्योंकि हमें किसी ने बतलाया ही नहीं कि क्या करना चाहिए। बच्चे, स्त्रियाँ, यहाँ तक कि वयोवृद्ध

पुरुष भी घरों को सदा अस्तव्यस्त अवस्था में रखने में सहायक होते हैं।

यदि हम विचार करें तो यह कितना सहल मालूम पड़ता है कि सब काम निर्धारित स्थानों में किए जायँ और सब वस्तुएँ निर्धारित स्थानों में रक्खी जायँ। हमें जब किसी चीज की आवश्यकता होती है तो वह नहीं मिलती। कारण यह कि आवश्यकता के लिए हमने उसे पहले हटाया था पर आलस्य के कारण काम हो जाने पर उसे फिर वापस अपने स्थान पर नहीं रख दिया। परिणाम यह होता है कि जब हमें उसकी फिर आवश्यकता होती है तो उसे सारे घर में खोजना पड़ता है। मोजे, जूते, सूई, डोरा, चारों तरफ फेंके रहते हैं, और ताली के गुच्छों की खोज तो किसी न किसी को रोज ही करते रहना पड़ता है। घर पर की लापरवाही के अभ्यास के कारण बाहर भी हम लापरवाह बने रहते हैं। सड़कों पर, स्टेशनों पर यहाँ तक कि रेलगाड़ी के भीतर भी हम अपनी खराब आदतों के भयंकर नतीजे देखते हैं। छोटी उम्र की आदत जन्म भर बनी रहती है, बड़ी उम्र में भी वह हमें नहीं छोड़ती।

क्या हमारे पाठकों ने केले और नारंगी के छिलके चारों तरफ पड़े हुए नहीं देखे हैं? क्या ऐसा भी कभी नहीं हुआ है कि जरूरी काम से जब वे सड़क पर चले जा रहे हों या जल्दी में रेल पर चढ़ने के लिए प्लैटफार्म पर दौड़े हों तो इनपर फिसलकर गिर पड़े हों? अगर उनका ऐसा अनुभव है तो

क्या उन्होंने स्वयं छिलके ऐसी जगहों पर नहीं फेंके हैं जहाँ फेंके नहीं जाने चाहिए थे ? क्या उन्होंने सदा इसका विचार रखा है कि घरों में इन्हें अलग टोकरी में रक्खें, सड़कों पर इन्हें कूड़े की बालटियों में डालें और रेल में खिड़की के बाहर फेंकें ? क्या ऐसा कभी नहीं हुआ है कि जब वे रेल पर चढ़े हों तो वहाँपर व्यर्थ का कूड़ा-करकट पाकर उन्हें बड़ा क्रोध आया हो और उन्होंने उन मुसाफिरों को मन ही मन खूब कोसा हो जो उस डब्बे में पहले चढ़े और जिन चीजों को बाहर फेंक देना चाहिए था उन्हें डब्बे में ही छोड़कर चल दिए थे ? क्या उन्होंने खुद इसका विचार रक्खा कि अपने इसी प्रकार के आचरण से आगे आनेवाले मुसाफिरों को कोसने का मौका न दें ? उन्होंने उस कूड़े-करकट को कम किया या स्वयं भी उसकी वृद्धि में सहायक हुए ? स्मरण रखिए, अपने-अपने स्थान में हर चीज ठीक है, अस्थान में वही गंदगी है । हमें वही मिलेगा जिसके हम योग्य हैं, और सार्वजनिक अधिकारियों की तरफ से भी सफाई आदि का उन्हीं स्थानों में अधिक प्रबन्ध रक्खा जायगा जहाँके रहनेवाले उसपर जोर देते हैं और खुद साफ रहते हैं। जिन्हें गंदगी गंदगी ही नहीं मालूम पड़ती, जो खुद साफ नहीं रहते, उनके यहाँ सफाई कोई नहीं करता । नागरिकता बड़ी छोटी और सहल सी चीज है और यदि हमें यह सदा स्मरण रहे कि छिलके, कागज आदि हमें ठीक-ठीक स्थानों पर रखना चाहिए तो हमने नागरिक शास्त्र के

प्रथम अध्याय की अच्छी और उपयोगी शिक्षा प्राप्त कर ली है और हम अच्छे नागरिक बनने अर्थात् सच्चा और स्थायी स्वराज्य प्राप्त करने के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं। वास्तव में सच्चा नागरिक ही सच्चा देशभक्त है।

शब्दार्थ

प्रतिबंध = रुकावट, अटकाव। लापरवाही = असावधानी। साधारण = मामूली। सार्वजनिक = जनता या पबलिक से सम्बन्ध रखनेवाला। अविवेक के साथ = बिना सोचे-विचारे। अनुपयुक्त = अनुचित। क्षति = हानि। वयोवृद्ध = बूढ़ा। अस्त-व्यस्त = उलटा-पुलटा। निर्धारित = निश्चित। स्थायी = ठहरनेवाला, टिकाऊ।

छाता-क्या और कैसे ?

[इस उपयोगी और मनोरंजक लेख में श्री श्रीप्रकाश जी ने छाते के सम्बन्ध में अनेक ज्ञातव्य बातें बताई हैं जिनका समावेश इन दो प्रश्नों में हो जाता है :—

१. छाता खरीदते समय हमें उसमें क्या कुछ देखना चाहिए ?

२. छाते को कैसे लेकर चलना चाहिए तथा उसकी सँभाल कैसे करनी चाहिए।]

प्रिय पाठक, आप नाराज मालूम पड़ते हैं। एकाएक पानी बरसने लगने के कारण आप अपना छाता ढूँढ़ने गए। पहले तो

छाता मुश्किल से मिला। फिर आपने देखा कि उसकी एक कमानी टूट गई है। वह बेकार हो गया है। इसीसे आप नाराज हो गए। मुझे इसका दुःख है। खैर, इसी छोटी-सी घटना से चलिए, हम दोनों कुछ शिक्षा लें। सबक आरम्भ से ही पढ़ा जाय।

भारत जैसे देश में छाता बड़ी आवश्यक वस्तु है। दुःख की बात है कि दरिद्रता के कारण हमारे देश के करोड़ों नर-नारी छाते का उपयोग नहीं कर सकते, यद्यपि मेरी समझ में हर आदमी इसका अधिकारी है कि उसके पास छाता हो। यह भी दुःख का विषय है कि जिन लोगों के पास छाता है वे भी उसे अच्छी दशा में नहीं पाते और आवश्यकता के समय वह बेकार-सा देख पड़ता है। यही हालत आपकी है। सम्भव है आप पानी बन्द होते ही दूसरे छाते की खोज में निकलें अर्थात् नया छाता खरीदें। इसमें यदि अनुमति हो तो मैं आपकी सहायता करना चाहता हूँ।

यदि आप मेरी सलाह लें तो मैं कहूँगा कि सीधी डांड़ी का छाता आप कभी न लें। मूठ हाथी दाँत की हो या 'चेरी' की सुन्दर लकड़ी आपको लुभा रही हो, पर आप सदा मुड़ी हुई मूठ का ही छाता लीजिए जिसे आप अपनी कलाई पर लटका सकें। लोहे की डांड़ी या 'डबल' कमानी के फेर में मत पड़िए। लोहे की डांड़ी व्यर्थ का बोझ है और डबल कमानी के कारण आपसे छाता ठीक बन्द नहीं होता, सदा कपड़ा लटकता रहता है। कपड़ा भी अच्छी तरह देख लीजिए। वह काफी गफ होना चाहिए नहीं तो जिस मतलब से छाता आपने लिया उसे पूरा न कर सकिएगा।

अवश्य ही मुझे कोई अधिकार नहीं है कि बिना पूछे मैं आपको सलाह दूँ। आप गुस्ताखी माफ करें और यह न समझें कि आपकी बुद्धि का मैं अपमान कर रहा हूँ। साफ बात तो यह है कि मुझे आपसे कोई खास दिलचस्पी भी नहीं है। हाँ, मुझे आपकी बदमिजाजी की अवश्य चिन्ता है क्योंकि उसका असर दूसरों पर पड़ता है और वे दुखी होते हैं। इन लोगों से मुझे काफी दिलचस्पी है और मैं चाहता हूँ कि ये व्यर्थ आपकी बदमिजाजी के शिकार न हों, क्योंकि केवल एक छाते की परेशानी के कारण आपका मिजाज इतना गरम हो गया है। यदि मैंने कुछ अनुचित कहा हो तो क्षमा कीजिएगा।

अभी सबक खतम नहीं हुआ। मैं चाहता हूँ कि सबके साथ अच्छा बर्ताव हो। मैं नहीं चाहता कि छाते के साथ भी आपका बर्ताव बुरा हो। कृपाकर बिस्तर के बंडल में आप अपना छाता न डालिए, क्योंकि इससे छाता टूट जाता है। स्टेशनों पर और रेलगाड़ियों पर मजदूर इसे पटक देते हैं और छाते को तकलीफ होती है। गीले छाते को खोलकर मत रखिए। आप समझते हैं, पानी हवा में उड़ जायगा। पर स्थान और समय दोनों ही इस प्रकार से ज्यादा लगते हैं। साथ ही अगर हवा जोर की चलती रही—जैसा बर्सात में अक्सर होता है—तो छाता भी दौड़ा फिरता है। इससे उसे और दूसरों को भी चोट लगती है। गीले छाते को बन्दकर दीवार के सहारे खड़ा कर दीजिए। पानी नीचे निथर जायगा और बात की बात में

आपका छाता सूख जायगा। इधर-उधर छाता फेंकते न फिरिए। इससे दूसरों को तकलीफ होती है। और तकलीफ न भी हो तो जब आपको ही आवश्यकता होती है तब वह नहीं मिलता। इससे आपको ही तकलीफ होती है। कृपाकर उसे दूसरों के कमरों में न ले जाइए। आप उनसे मिलने जाते हैं, छाते को मिलाने नहीं जाते। आप व्यर्थ क्यों अपने मित्र के कमरे में अपने छाते से जगह छेंकते हैं और उसे गन्दा और गीला बनाते हैं।

सबसे अधिक दिलचस्पी तो मुझे इस बात में है कि आप सड़क पर अपने छाते को किस प्रकार से लेकर चलते हैं। छातों को लोग विभिन्न प्रकार से लेकर चलते हैं। कुछ प्रकारों से तो मैं बहुत ही भयभीत रहता हूँ। कुछ लोग तो छाते को सामने चक्राकार रूप में घुमाते चलते हैं, कुछ उसे बीच में पकड़ जोर से बगल में आगे-पीछे झुलाते चलते हैं। इन तरीकों से बगल में और आगे-पीछे चलनेवालों को अकसर चोट लग जाती है। कुछ लोग उसे अपने दोनों कंधों पर गले के पीछे रख दोनों हाथों में उसे फँसाकर चलते हैं। हाथ भी फँस जाते हैं, छाता तो फँसा है ही। सबसे खतरनाक मुद्रा उन लोगों की है जो उसे बगल में दबाकर या एक कंधे पर रखकर इस प्रकार चलते हैं कि छाते की नोक किसी पीछे चलनेवाले अभागे की आँख की ठीक सीध में रहती है। यदि आगे से कोई मित्र आ गए—जैसे वे आ ही जाते हैं—और छाताधारी सज्जन एकाएक अपने

मित्र से प्रेमालाप करने को रुक गए—जो सर्वथा उचित ही है—और पीछेवाला आदमी सचेत न हुआ—यह भी कोई असाधारण बात नहीं—तो छाते की नोक से पीछेवाले अभागे की आँख तो बिना कुसूर मारी गई—थाना, पुलिस, 'रपट' पीछे होती रहेगी।

प्रिय पाठक, मुझे विश्वास है कि आप अच्छे नागरिक होना चाहते हैं। अवश्य ही आप औरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहते हैं जैसा आप उनसे अपने प्रति चाहते हैं। मुझे विश्वास है कि मेरी उपर्युक्त बातों में आपको कोई अतिशयोक्ति न दिखाई देती होगी और आप खुद उन खतरों से अकसर बाल-बाल बचे होंगे जिनकी चर्चा मैंने ऊपर की है। मुझे यह भी आशा है कि आपके कारण किसी को भी ऐसे खतरों का सामना न करना पड़ा होगा। तथापि मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप अपने छाते को सम्हाले रहें, केवल उसी काम में उसे लावें जिसके लिए वह बनाया गया है और उसके साथ इस प्रकार व्यवहार करें जिसमें आपके पैसे का वह पूरा प्रतिफल दे और आपका और उन सबका जिनसे आपका या उसका साक्षात्कार हो, वह सहायक हो न कि बाधक।

अन्त में मैं आपसे इसकी माफी चाहता हूँ कि ऐसी छोटी-छोटी बातों में मैंने आपका अमूल्य समय नष्ट किया, जब संसार बड़ी-बड़ी समस्याओं के सुलझाने में लगा हुआ है और जब मनुष्य मात्र के विचारों में क्रांति हो रही है। पर सचमुच मेरा

तो यही खयाल है कि हम छाते से किस तरह काम लेते हैं, यह बात भी हमारी जाति के इतिहास को बदल सकती है। निःसन्देह अपने-अपने स्थान और समय पर सभी वस्तुएँ प्रभावकारी होती हैं। मैं तो साफ कह देना चाहता हूँ कि मेरी समझ में छोटी-छोटी बातों के प्रति जनसाधारण का जो वास्तविक भाव होता है उसीपर राष्ट्रविशेष की उन्नति या अवनति निर्भर है। उसीसे वहाँ के निवासियों के चरित्र की परख होती है और वे दूसरे देशों को अपने नागरिक आदर्शों का परिचय देते हैं।

शब्दार्थ

दरिद्रता = गरीबी । अनुमति = राय । गुस्ताखी = धृष्टता । बदमिजाजी = गुस्सा । छेंकना = घेरना । प्रतिफल = बदला । साक्षात्कार = भेंट । समस्या = कठिन प्रश्न । क्रांति = परिवर्त्तन ।

मँगनी की चीज

[श्री श्रीप्रकाश जी के इस लेख में यह दिखलाया गया है कि चीजों का मँगनी पर देना तथा लेना कितना आवश्यक है तथा इस प्रथा को जीवित रखने के लिए यह कितना वांछनीय है कि लोग मँगनी की चीजों की उतनी ही सँभाल करें जितनी कि वे अपनी चीज की करते हैं।]

संघटित समाज की यही शोभा है कि सब एक दूसरे का

लिहाज रक्खें और सबका सबपर भरोसा हो। यदि मनुष्य अकेले ही अपनी सब आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता तो संघटन की आवश्यकता ही न रहती और जहाँ परस्पर का विश्वास उठा वहाँ विघटन आरम्भ हो जाता है। हम सबको ही विशेष-विशेष अवसरों पर अपने पड़ोसियों, रिश्तेदारों तथा दोस्तों की सहायता की आवश्यकता होती है। किसीके भी पास सब समयों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने को साधन सदा उपस्थित नहीं रह सकते। यही कारण है कि मनुष्य-समाज में एक दूसरे से चीजें मँगनी पर लेने की प्रथा-सी चली आती है। यह ऐसी दृढ़ हो गई है कि कभी-कभी मित्रों को शिकायत भी हो जाती है यदि किसी उत्सव आदि के समय उनसे चीजें न माँगी जायँ। चलते-चलते अब अपने देश में मँगनी पर चीजें पाना यह एक अधिकार-सा हो गया है। पर उसके साथ जो कर्तव्य का अंश लगा हुआ है—और प्रत्येक अधिकार के साथ कर्तव्य का अनिवार्य सम्बन्ध है—उसे हम भूल गए हैं। उसी पर ध्यान दिलाना इस लेख का उद्देश्य है।

एक दिन मैं रानीकुँआ से (जो काशी में व्यापार का एक पुराना केन्द्र है) गुजर रहा था। एक मजदूर ने एक दूकान के सामने कुछ छोटे-छोटे बाँसों का गट्ठा जोर से पटका। दूकान पर बैठे हुए एक सज्जन ने उसे डाँट कर कहा—'क्या यह मँगनी की चीज है कि इस तरह पटकते हो?' मैं झिझका, रुका, पर कुछ कहने का साहस अपने में न पाकर चला गया। यह बहुत दिनों की बात है। पर इसका असर मेरे ऊपर पड़ा रहा। तबसे इन मार्मिक

वाक्यों का कटु अनुभव बार-बार स्वयं कर चुका हूँ। बात क्या है ? हम यह समझने लगे हैं कि मँगनी की चीजों की फिक्र करने की जरूरत ही नहीं है। मँगनी की चीजें खराब करने के लिए ही हैं। हमें मँगनी लेने का हक है, मँगनी की चीजों के दुष्प्रयोग का भी हक है, मँगनी देनेवाले का फर्ज है कि वह मँगनी दे, पर उसे यह हक नहीं है कि जिस अवस्था में चीजें दी हैं उसी अवस्था में उन्हें फिर वापस पावे । यदि वह न दे तो हमें शिकायत करने का हक है, यदि वह शिकायत करे तो हमें गाली देने का भी हक है। हम यह भूल गए कि आज हमने मँगनी ली है, कल हमें मँगनी देनी भी पड़ेगी तो क्या हम यह पसन्द करेंगे कि हमसे और हमारी वस्तुओं से उसी प्रकार का कोई व्यवहार करे जैसा कि हम दूसरे और दूसरे की वस्तुओं से आज खुद कर रहे हैं।

पुस्तकें हम यदि मँगनी लेते हैं तो उन्हें वापस नहीं करते। बहुत याद दिलाने के बाद यदि वापस करते हैं तो झुँझलाकर, दो चार अपशब्द सुनाकर, और उसे फाड़कर, गंदाकर, दूसरे के लिए अयोग्य बनाकर। यदि दरी-चाँदनी लेते हैं तो कभी साफ कर वापस नहीं करते बल्कि विवाह शादी के बाद उसमें पत्ते पुरवे बटोरकर वापस करते हैं। यदि बरतन लेते हैं तो इन्हें माँजकर नहीं वापस करते, पर जूठे गंदे ही वापस करते हैं। यदि मकान मँगनी लेते हैं तो ऐसी दशा में छोड़ते हैं कि उसका वर्णन न करना ही उचित होगा। बिना मँगनी लिए काम नहीं चलता, बिना मँगनी दिए सामाजिक सम्बन्ध ही टूटता है,

तो कोई ऐसा तरीका निकलना चाहिए जिससे 'साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे'। मँगनी की चीजें आप अवश्य लीजिए पर रानीकुआँवाले हमारे नायक का भाव कदापि न रखिए। लेने और देनेवाले दोनों की ही शोभा है। पर मँगनी की चीजों की अपनी चीजों से अधिक फिकर करनी चाहिए। उनका ठीक तरह से सदुपयोग कर उन्हें उसी अवस्था में वापस करना चाहिए जिस अवस्था में उन्हें लिया था। यदि लैम्प की चिमनी टूट गई हो तो दूसरी लगाकर उसे वापस भेजना चाहिए। चाँदनी, बर्तन आदि अच्छी तरह साफ कराकर वापस करना चाहिए और मकान में अच्छी तरह झाड़ू देकर ही मकान-मालिक को फिर सिपुर्द करदेना चाहिए। यदि इन सब बातों का ख्याल रक्खा जाय तो एक दूसरे की शिकायत बहुत कम हो जाय और मनुष्य-समाज के सुदृढ़ सुसंघटन के साथ ही साथ मनुष्यों के परस्पर के सम्बन्ध की शोभा और सौन्दर्य बढ़ जाय। उसूल बहुत छोटा-सा है, उसे कार्यान्वित करने में न जाने क्यों इतनी कठिनाई होती है—

आत्मनः प्रतिकूलानि
परेषां न समाचरेत्।

जिस प्रकार के व्यवहार से अपनेको कष्ट हो, जिसे हम स्वयं अपने लिए पसन्द न करें, वैसा हम दूसरों के साथ भी न करें। जैसा हम चाहें कि अन्य लोग हमारे साथ वर्ताव करें, वैसा ही हम दूसरों के साथ भी करें।

शब्दार्थ

संघटित = सुव्यवस्थित । विघटन = नष्ट होना । प्रथा = रीति । अनिवार्य = आवश्यक । मार्मिक = मन पर असर करनेवाला । दुष्प्रयोग = बुरी तरह काम में लाना । अपशब्द = कटुवाक्य । उसूल = सिद्धान्त । कार्यान्वित करना = अमल में लाना ।

गढ़ आया, सिंह गया

[शिवाजी के बचपन के मित्र तानाजी मालसुरे ने उनके माता को दिए वचन की रक्षा के लिए किस प्रकार अपने पुत्र के विवाहोत्सव को छोड़, सिंहगढ़ पर वीरता के साथ आक्रमण किया और उसकी विजय के हेतु अपने प्राणों तक की आहुति दे दी—प्रो० इन्द्र ने इस ऐतिहासिक कहानी में यही दिखलाया है ।]

सोमवार का प्रभातकाल था। शिवाजी का डेरा रायगढ़ में था, और माता जीजाबाई प्रतापगढ़ में थीं। माता प्रभातकाल में हाथी-दाँत की कंघी से बाल सँवार रही थीं कि खिड़की में से पहाड़ की चोटी पर चमकता हुआ सिंहगढ़ का मस्तक दिखाई दिया। मानिनी माता के दिल में एक बर्छी-सी चुभ गई। सिंहगढ़ मुगलों के हाथों में! क्या यह एक क्षत्राणी को सह्य हो सकता था? माता ने उसी दम एक दूत को रायगढ़ रवाना किया। रायगढ़ पहुँचकर दूत ने शिवाजी को सन्देश दिया कि

माता ने आज्ञा दी है, इसी समय चले आओ। आज्ञा-पालक पुत्र भोजन कर रहा था। माता की आज्ञा सुनकर उसने मस्तक झुकाया, खाना बीच ही में छोड़ दिया, हाथ धोए बिना ही, शस्त्रों से सजकर वह घोड़े पर सवार हो गया और वायु-वेग से प्रतापगढ़ के द्वार पर पहुँच गया। जीजाबाई प्रतीक्षा ही कर रही थीं। शिवाजी ने अन्दर घुसकर देखा कि पासा खेलने का सामान तैयार पड़ा है। माता की आज्ञा हुई कि बाजी लगाओ। विस्मित परन्तु नम्र हृदय से, बिना कोई प्रश्न पूछे, शिवाजी पासे फेंकने लगे। माता ने भवानी का ध्यान धर के खेलना आरम्भ किया और शीघ्र ही शिवाजी को परास्त कर दिया। शिवाजी ने माता से कहा कि आप मेरा कोई भी किला माँग सकती हैं। जीजाबाई ने झट उत्तर दिया कि मुझे सिंहगढ़ चाहिए। शिवाजी अब समझे। सिंहगढ़ को दुश्मन से लेना आसान नहीं था। उसका किलेदार उदयभानु पूरा दैत्य था। एक दिन में १ भैंसा, २ भेड़ें और २० सेर चावल खा जाना उसके लिए साधारण बात थी। उदयभानु की १८ स्त्रियाँ थीं, और १२ पुत्र थे जो पिता से भी अधिक बलवान् समझे जाते थे। किले में एक खूनी हाथी था, जिसका नाम चन्द्रावली था और एक लड़ाकू सरदार था, जिसका नाम सिद्दी हिलाल था। इन दोनों को जीतनेवाला वीर मिलना कठिन था। ऐसे रावण द्वारा सुरक्षित किले को लेना लोहे के चने चबाने से भी अधिक कठिन था। परन्तु जैसे एक वीर क्षत्राणी अपने आदेश को वापस नहीं ले सकती, वैसे वीर क्षत्रिय भी अपने

वचन को नहीं हार सकता। शिवाजी ने सिंहगढ़ का क़िला जीतकर माता के चरणों में रखने की प्रतिज्ञा की।

प्रतिज्ञा तो कर ली, पर 'म्याऊँ' का ठौर कौन पकड़े? वीर सेनापति द्वारा सुरक्षित उस क़िले पर कौन आक्रमण करे? बहुत विचार के पीछे शिवाजी की आँख अपने बाल्य-सखा तानाजी मालसुरे पर पड़ी। तानाजी मालसुरे शिवाजी की सम्पत्ति और विपत्ति—दोनों का साथी था। वह विख्यात पराक्रमी था। शिवाजी ने इस सन्देश के साथ अपना शीघ्रगामी दूत भेजा कि तानाजी मालसुरे तीन दिन के अन्दर १२ हज़ार सिपाहियों के साथ रायगढ़ पहुँच जाय। जब दूत तानाजी के पास पहुँचा, तो वह अपने पुत्र रायबा के विवाह की तैयारी में लगा हुआ था। प्रभु की आज्ञा पहुँचते ही उत्सव का मंगल-वाद्य बन्द कर दिया गया और तीन दिन पूरा होने के पूर्व १२ हज़ार सिपाहियों को साथ लेकर तानाजी रायगढ़ के द्वार पर आ पहुँचा। शिवाजी प्रतीक्षा ही कर रहे थे। ज्यों ही उन्होंने मराठी-सेना की ध्वजाएँ देखीं, त्यों ही वे बाहर आकर तानाजी से गले लगकर मिले। तानाजी ने शिवाजी को उलहना दिया कि तुमने मुझे पुत्र के विवाहोत्सव से क्यों बुलाया? शिवाजी ने उत्तर दिया कि तुम्हें मैंने नहीं, माताजी ने बुलाया है। माता जीजाबाई हाथ में दीपक लिए पहले से तैयार खड़ी थीं। उन्होंने तानाजी के सिर के चारों ओर दीपक की परिक्रमा की, माथे को चूमा और जयमाल पहनाकर तिलक लगाया। विघ्नों के नाश के लिए माता जीजाबाई

ने हाथ की अँगुलियाँ चटकाकर अला-बला को भागने का आशीर्वाद दिया।

रात का अँधेरा होने के साथ ही मराठा सेनाएँ सिंहगढ़ की तलैटियों में घूमने लगीं। तानाजी ने स्वयं देहाती का वेश धारण करके दुर्ग की परिक्रमा की, और जानने योग्य बातों का पता लगा लिया। रात के घोर अंधकार में, तब जब कि सिंहगढ़ के रक्षक गहरी नींद में सो रहे थे, तानाजी चुने हुए सिपाहियों के साथ कल्याण-द्वार के नीचे पहुँच गया। किला एक ऊँची चोटी पर बना हुआ है; ऊपर चढ़ना अत्यन्त दुष्कर था, सन्दूकची में से शिवाजी के प्रसिद्ध घोरपड़ 'यशवन्त' को निकालकर तानाजी ने उसके माथे पर चन्दन लगाया, गले में माला पहनाई और कमर में कमन्द बाँधकर उसे ऊपर फेंका। ऊँचाई के अधिक होने से वह स्थान पर न पहुँच सका, और वापस आ गया। तब तानाजी ने यह धमकी देते हुए कि यदि इस बार भी 'यशवन्त' लौट आया तो इसे मारकर खा जाऊँगा, फिर उसे पूरे ज़ोर से ऊपर फेंका। अबके उसने चोटी पर अपने पंजे गाड़ दिए। कमन्द के सहारे मराठा सिपाही धड़ाधड़ ऊपर चढ़ने लगे। चढ़नेवालों में सबसे पहला नम्बर तानाजी का था। तलवार को दाँतों में थामकर, और जान को हथेली में लेकर, वह वीर दुश्मनों के दाँतों तक चढ़ गया। जब ५० सिपाही चोटी पर जा चुके थे, कमन्द बीच में से टूट गई। ऊपर के सिपाही ऊपर और नीचे के सिपाही नीचे रह गए।

असली नेता वही है, जिसका दिमाग कठिनाई के समय शान्त रहे। तानाजी की एक ओर दुश्मनों से भरा हुआ दुर्ग था, और दूसरी ओर भयानक खाई थी। विचार-शक्ति को कायम रखते हुए मराठा सेनापति ने किले पर धावा करने का ही निश्चय किया। दबे-दबे पाँव जाकर उन लोगों ने कल्याण-द्वार और अन्य दो द्वारों के बाहर जो सिपाही पहरा दे रहे थे, उन्हें मार गिराया। उदयभानु उस समय शराब और अफ़ीम के नशे में मस्त होकर अन्तःपुर में जा रहा था। उसे शत्रु के आने का समाचार मिला, तो उसने पहले चन्द्रावली हाथी को और फिर सिद्दी हिलाल को आगे बढ़ने का हुक्म दिया। तानाजी अपने समय का प्रसिद्ध तलवार चलानेवाला आदमी था, हाथी और हिलाल के सूँड़ और सिर उसकी तलवार की भेंट हो गए। तब उदयभानु ने अपने बारह लड़कों को मैदान में भेजा। वे भी काम आ गए, तब उसकी नींद टूटी। अपनी अठारह औरतों को अपने हाथ से मारकर और हाथ में नंगी तलवार लेकर पठानों की फ़ौज के साथ उदयभानु किले से बाहर निकला, और ५० मराठों पर टूट पड़ा। वह आक्रमण बड़ा वेगवान था, दोनों सेनापति आमने-सामने आकर भिड़ गए। उदयभानु की तलवार तानाजी पर और तानाजी की तलवार उदय-भानु पर एक ही समय में गिरी। दोनों वीर एक ही समय में धराशायी हो गए। उदयभानु की मृत्यु ने किलेवालों का दम तोड़ दिया, परन्तु मराठे बेहिम्मत न हुए। तानाजी के भाई

सूर्याजी के सेनापतित्व में मराठा सिपाही 'हरहर महादेव' की ध्वनि से आकाश को गुँजाते हुए किले पर टूट पड़े ; द्वार पर क़ब्ज़ा कर लिया, और शीघ्र ही सिंहगढ़ की चोटी पर महाराष्ट्र का भगवा झंडा फहराने लगा। सिपाहियों ने किले के बाहर घुड़साल के कुछ छप्परों में आग लगाकर शिवाजी को सिंहगढ़-विजय की सूचना दे दी।

इशारा पाते ही शिवाजी घोड़े पर सवार होकर सिंहगढ़ पहुँच गए। और उन्होंने कल्याण-दुर्ग के मार्ग से अन्दर प्रवेश किया। चारों ओर से जयध्वनि उठ रही थी, उस जयध्वनि के मध्य में उन्होंने देखा कि तानाजी की लाश पड़ी है। बालसखा, वीर तानाजी की मृत्यु ने शिवाजी के हृदय पर ओस-सी डाल दी। लोग उन्हें सिंहगढ़ के जीतने पर बधाई देने लगे, तो उन्होंने उत्तर दिया—

"गढ़ आला, पण सिंह गेला।"

[गढ़ आ गया, परन्तु सिंह चला गया।]

शब्दार्थ

मस्तक = सिर । मानिनी = मानवाली । सह्य = सहनेयोग्य । आज्ञा-पालक = हुक्म माननेवाला । वायु-वेग = हवा की गति । प्रतीक्षा = इन्तजार । विस्मित = चकित । परास्त करना = हरा देना । बाल्य-सखा = बचपन के साथी । शीघ्रगामी = तेज चलनेवाला । मंगलवाद्य = मंगल-सूचक बाजा । ध्वजाएँ = झंडी । परिक्रमा करना =

चारों ओर घूमना, फेरी। तिलक = टीका। तलैटी = पहाड़ के नीचे, चक्कर की भूमि। दुर्ग = किला। रक्षक = पहरेदार। दुष्कर = कठिन। घोरपड़ = यह मराठी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है गोह। शिवाजी के प्रसिद्ध घोरपड़ का नाम 'यशवन्त' था। कमंद = फेंककर मकानों पर चढ़ने की रस्सी। अन्तःपुर = रनवास। धराशायी होना = भूमिपर गिर जाना।

शिवाजी की गुरुभक्ति

[इस ऐतिहासिक कथा के लेखक हैं श्री कृष्णानन्द गुप्त। आपने इसमें यह दिखलाया है कि किस प्रकार शिवाजी ने प्राणों पर खेलकर निर्भीकता एवं भक्ति के साथ अपने पूज्य गुरु समर्थ रामदास महाराज की आज्ञा का पालन किया।]

कदाचित् ही कोई ऐसा विद्यार्थी होगा जो जगत्प्रसिद्ध महाराष्ट्र-वीर शिवाजी का नाम न जानता हो। शिवाजी महाराज के गुरु का नाम समर्थ रामदास महाराज था।

शिवाजी की गुरुभक्ति बड़ी विलक्षण थी। एक बार गुरुजी ने सोचा कि देखें शिवा (गुरुजी शिवाजी को शिवा कहा करते थे) मुझमें सच्ची भक्ति रखता है या नहीं, इस बात की परीक्षा लेनी चाहिए। यह सोचकर स्वामीजी अपने पेट के दर्द का बहाना कर एक पहाड़ की गुफा में जा लेटे।

जब शिवाजी को मालूम हुआ कि स्वामीजी के पेट में बड़ा दर्द है और उसके मारे वे व्याकुल हो रहे हैं तब शिवाजी तत्काल अपने कुछ साथियों को लेकर वहाँ पहुँचे, जहाँ स्वामीजी पड़े हुए थे। स्वामीजी का कष्ट देखकर शिवाजी के हृदय में बड़ी असह्य वेदना होने लगी। शिवाजी ने पूछा—"गुरुदेव ! आपका कष्ट देखकर मुझसे रहा नहीं जाता, आपके पेट में दर्द होने का क्या कारण है ? शीघ्र बताइए तो फिर उसका उपाय किया जाय।"

स्वामीजी—"शिवा, क्या बताऊँ, कल रात से न जाने एकाएक क्या हो गया है कि पेट में बड़ा दर्द हो रहा है, चैन ही नहीं पड़ता। तभी से यहाँ पड़ा हुआ हूँ। मालूम होता है कि अब मेरा अन्तिम समय निकट आ गया है।"

स्वामीजी की बात सुनकर शिवाजी की आँखों में आँसू आ गए। वे आँसू पोंछते हुए बोले—"गुरुजी, आप ऐसी अनिष्ट की बात मुख से क्यों निकालते हैं ? क्या कोई ऐसी दवा नहीं है जिससे आपका यह कष्ट दूर हो सके ?"

स्वामीजी—"दवा तो अवश्य है; परन्तु उसका लाना बड़ा कठिन है।"

स्वामीजी की बात सुनकर शिवाजी के सब साथी एक स्वर से बोल उठे—"गुरुजी, आप दवा तो बताइए। यदि आपकी पीड़ा मिटाने के लिए हमारे प्राणों की भी आवश्यकता आ पड़े तो हम सानन्द देने को तैयार हैं।"

गुरुजी—"क्यों शिवा, दवा ला सकेगा ?"

शिवाजी—"गुरुजी, आप दवा तो बताइए।"

गुरुजी—"यदि तुममें से कोई जंगल में जाकर बाघिन का दूध ला सके तो अवश्य मेरे पेट की पीड़ा दूर हो सकती है, अन्यथा नहीं।"

गुरुजी की बात सुनकर सब एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। भला, इतना साहस किसमें था जो जान-बूझकर अपनेको मृत्यु के मुँह में डाले। सबने मौन धारण कर लिया। तब शिवाजी बोले—"गुरुजी, इस सेवक को आज्ञा हो तो जाकर बाघिन का दूध लाए।"

शिवाजी की बात सुनकर स्वामीजी बोले—"शिवा मैं तुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा समझता हूँ। अपने सुख के लिए मैं तेरा अनिष्ट नहीं करना चाहता। रहने दे, उस दूध की कोई आवश्यकता नहीं।"

शिवाजी—"गुरुजी, आप किसी बात की चिन्ता न करें। मैं अभी जाकर आपके लिए बाघिन का दूध लाता हूँ।"

गुरुजी—"देख तो शिवा, कैसी भयानक अंधेरी रात्रि है। भला, ऐसे समय में तू किस प्रकार दूध ला सकेगा?"

शिवाजी—"गुरुजी, आपके आशीर्वाद से मैं अच्छी तरह दूध ला सकूँगा। आप मुझे आशीर्वाद दें, जिससे मैं अपने कार्य में सफल होऊँ।"

गुरुजी—"अच्छा शिवा, यदि तेरी यही इच्छा है तो जा, परन्तु बहुत शीघ्र आना।"

शिवाजी—"गुरुजी, मैं अभी आया।"

वर्षा ऋतु की घोर अँधेरी काली रात्रि थी। चारों ओर वन में शान्ति विराज रही थी। हाँ, कभी-कभी हाथियों की चिंघाड़, और सिंहों की गर्जना, अवश्य सुनाई पड़ती थी। आकाश में दो चार तारे दिखाई पड़ते थे। रात्रि के पथिकों का पथ-प्रदर्शक चन्द्रमा भी शिवाजी के धैर्य की परीक्षा लेने के लिए बादलों में छिपा हुआ था। ऐसे भयानक समय में शिवाजी को छोड़ और किसमें ऐसा साहस था जो अपने गुरु के लिए अपने प्राणों को तुच्छ समझ बाघिन का दूध लेने पर उद्यत होता। धन्य शिवाजी, धन्य तुम्हारी गुरु-भक्ति!

शिवाजी को उस अन्धकारमय प्रदेश में फिरते-फिरते लगभग एक घंटा हो गया, परन्तु बाघिन दिखाई न दी। अब शिवाजी बड़ी चिन्ता में पड़े कि क्या करना चाहिए। इधर गुरुजी को चिन्ता लगी हुई थी।

धीरे-धीरे आकाश-मण्डल में मेघ छा गए। वर्षा भी होने लगी। शिवाजी ने तब भी धैर्य न छोड़ा। धीरे-धीरे मूसलधार पानी बरसने लगा। शिवाजी पानी बरसने के कारण एक सघन पेड़ के नीचे बैठ गए।

ईश्वर की कृपा से उसी समय एक बाघिन सर्दी से बचने के लिए उसी पेड़ के तले आई। उसके साथ उसके दो बच्चे भी थे।

शिवाजी के हृदय में बाघिन को देखकर कुछ आशा

बँधी, परन्तु एक कठिनता यह थी कि बाघिन अपना दूध किस तरह दुह लेने देगी ।

बाघिन आकर शिवाजी के पास ही खड़ी हो गई। शिवाजी ने उसके ऊपर हाथ फेरना आरम्भ किया । बाघिन भी चुपचाप खड़ी रही। शिवाजी उससे बोले—

"मेरे गुरुजी को पेट के दर्द के कारण बड़ी असह्य पीड़ा हो रही है। उनकी उदर-पीड़ा मिटाने के लिए बाघिन के दूध की बड़ी आवश्कता है। क्या मैं थोड़ा-सा दूध ले सकता हूँ ?"

यह कह शिवाजी अपने साथ जो बर्तन लाए थे, उसमें उसका दूध दुहने लगे। बाघिन ने दूध दुहते समय 'चूँ' तक न किया। वह कपिला गाय की तरह सीधी खड़ी रही। इस बीसवीं शताब्दी के नई रोशनीवाले सभ्यगण अवश्य इस बात को निरी गप्प समझेंगे। कहेंगे,—"ऐं! क्या यह भी सम्भव है कि मनुष्य बाघिन का दूध दुहे और वह चुपचाप खड़ी रहे । यह बिलकुल असत्य है। यह कार्य मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है।" हाँ, शिवाजी मनुष्य अवश्य थे, परन्तु उनको आज्ञा देनेवाले समर्थ गुरु रामदास मनुष्य नहीं थे। वे मनुष्य रूप में एक दैवी शक्ति थे । उन्हीं की आज्ञा से शिवाजी दूध लेने आए। भला, इतना किसमें साहस है कि फिर कोई शिवाजी का बाल भी बाँका कर सके ?

एक बात और है। क्या पशुओं में प्रेम नहीं होता ? क्या उनमें दयालुता नहीं होती ? बाघिन ने जब समझ लिया कि

यह मनुष्य मेरा अनिष्ट नहीं करना चाहता बल्कि थोड़ा-सा दूध चाहता है तब चुपचाप खड़ी रही। यदि शिवाजी चाहते कि मैं इसे भय दिखाकर दूध ले लूँ तो क्या यह सम्भव था ? वह वहीं पर शिवाजी के ऊपर चढ़ बैठती।

जब शिवाजी दूध दुह चुके तब बाघिन एक ओर खड़ी हो गई। शिवाजी भी दूध लेकर अपने डेरे की ओर चल पड़े।

शिवाजी ने दूध लाकर गुरुजी को दे दिया और बोले—"लीजिए, आपके प्रताप से मैं बड़ी निर्विघ्नता से बाघिन का दूध ले आया हूँ।"

समर्थ महाराज शिवाजी की ऐसी भक्ति देखकर बड़े चकित हुए। उन्हें बड़ा हर्ष हुआ कि शिवा अपनी परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। वे बोले—"शिवा, धन्य है तू ! धन्य है तेरी माता जीजाबाई जिसकी कोख से ऐसा पुरुष-रत्न उत्पन्न हुआ ! शिवा, मुझे दूध की बिलकुल आवश्यकता न थी। मैं केवल तेरी परीक्षा लेना चाहता था। मैंने व्यर्थ तुझको इतना कष्ट दिया।" यह कहकर गुरुजी ने शिवाजी को अपनी छाती से लगा लिया और वे बोले—"शिवा, मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि जिस कार्य का बीड़ा तूने उठाया है, उसमें सफल हो, अपने देश का उद्धारकर शत्रुओं के दमन करने में समर्थ हो। जब तक पृथ्वी पर एक भी हिन्दू है, तेरा नाम अमर रहे।"

हे ईश्वर, इस भारतभूमि पर अब फिर शिवाजी के सदृश वीर-श्रेष्ठ, गुरुभक्त और देशभक्त पुरुष-रत्न जन्म लें !

शब्दार्थ

विलक्षण = अपूर्व, असाधारण। असह्य = जो सहा न जाय। वेदना = पीड़ा। अनिष्ट = अमङ्गल, अहित। मौन धारण करना = चुप होना। पथ-प्रदर्शक = रास्ता दिखानेवाले। उदर-पीड़ा = पेट का दर्द। सामर्थ्य = शक्ति। दैवी = ईश्वरीय। बाल बाँका न कर सकना = कुछ भी हानि न पहुँचा सकना। निर्विघ्नता से = बिना विघ्न के। उत्तीर्ण = सफल। कोख = पेट। वीर-श्रेष्ठ = वीरों में श्रेष्ठ।

दो बालकों का देश-प्रेम

[इतिहास-प्रसिद्ध चित्तौर के जयमल और फत्ता नामक दो वीर बालकों ने जिस बहादुरी और मुस्तैदी के साथ बादशाह अकबर का सामना किया तथा हँसते-हँसते मौत को गले लगाया, प्रस्तुत लेख में उसी घटना का लोमहर्षक वर्णन है।]

तीन सौ वर्ष पहले हमारे देश में एक मशहूर बादशाह राज्य करता था। उसका नाम अकबर था। उसने अपने राज्य को बहुत बढ़ाया था। उस वक्त देश में जितने छोटे-बड़े राज्य थे, उन सबको अकबर ने जीत लिया था। लेकिन एक राज्य ऐसा बाकी रह गया था, जिसपर अकबर बादशाह का भी अधिकार नहीं हुआ था। वह राज्य था चित्तौर। वहाँ का राजा और उसके

वीर सिपाही अकबर के सामने न झुके थे। कई बार कोशिश करने पर भी वह राज्य क़ब्ज़े में न आ सका।

आख़िर अकबर ने भी एक बार अपनी पूरी ताक़त से उस पर चढ़ाई की। उसके साथ एक बहुत बड़ी सेना थी। उसने सेना ले जाकर चित्तौर को घेर लिया। चित्तौर का राजा खुद बड़ा कमज़ोर दिल का था। वह यह हाल देखकर नगर से भाग निकला।

अब सभी सरदार और सिपाही सोचने लगे कि क्या किया जाय। आखिर सब लोगों ने बगैर राजा के ही लड़ना तय किया। उन्होंने कहा—"कोई हर्ज नहीं है, हम चित्तौर के लिए अपना ख़ून बहाएँगे। अपने देश को हम जीते जी दुश्मन के क़ब्ज़े में न जाने देंगे।"

बस, फिर क्या था; सभी सरदार अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर आ पहुँचे। खूब ही जोर की लड़ाई हुई। वैसी लड़ाई अकबर को कभी नहीं लड़नी पड़ी थी। यद्यपि वह उस लडाई में जीत गया पर इस बात को वह मानता था कि उसे कहीं भी वैसे वीरों से मुकाबला नहीं पड़ा था।

वैसे तो मेवाड़ के सभी वीर बड़ी बहादुरी से लड़े थे, पर उस लड़ाई में दो बालकों ने सबसे बढ़कर वीरता दिखाई थी। उनमें से एक का नाम था जयमल और दूसरे का फत्ता।

फत्ता की उम्र सिर्फ़ सोलह साल की थी। वह अपनी माँ का अकेला लड़का था। उसकी माँ जानती थी कि उस बच्चे के

मरते ही उसका वंश ख़त्म हो जायगा, पर देश के काम के लिए उसने इसकी ज़रा भी परवाह न की; बल्कि वह खुद औरतों की सेना सजाकर अकबर बादशाह की फ़ौज पर टूट पड़ी। बड़ी बहादुरी से वह अपनी सभी सखियों के सहित लड़कर मारी गई।

फत्ता भी अपने साथियों को लेकर दुश्मनों पर टूट पड़ा। उसने और उसके साथियों ने खून की नदी बहा दी। अकबर की भारी सेना में फत्ता की तलवार का मुक़ाबला करनेवाला एक भी आदमी न था। वह जिधर तलवार लेकर घुस पड़ता था, वहाँ रुण्ड-मुण्ड ही दिखाई पड़ते थे। वह खेती की तरह सेना को काटता चला जाता था। उसके हाथ की सफ़ाई देखकर अकबर हैरान हो रहा था। इतनी छोटी उम्र के बालक में ऐसी दिलेरी और बहादुरी उसने न कहीं देखी थी न सुनी। लेकिन एक बालक हज़ारों के सामने कर ही क्या सकता था! आखिर वह लड़ते-लड़ते थक गया और चोट खाकर गिर पड़ा। उसकी देह में सैकड़ों घाव लगे थे। वह खून से नहा गया था। मरते दम तक उसकी तलवार न रुकी।

फत्ता मर गया, लेकिन अभी दूसरा वीर बालक जयमल जीवित था। उसकी बहादुरी भी तारीफ़ के लायक थी। वह सारे क़िले का इन्तज़ाम करता था। वह दुश्मन को छकाना खूब जानता था। उसने लड़ाई का ऐसा तरीक़ा रक्खा था, जिससे उसका बहुत ही कम नुक़सान हो और दुश्मन परेशान हो जाय। उससे लड़ते-लड़ते अकबर सचमुच बहुत परेशान हो गया था।

का

वह बार-बार कोशिश करता था, पर कुछ मतलब न निकलता था। बात यह थी कि जयमल खुद ही दौड़-दौड़कर हर एक काम देखता और उसका इन्तज़ाम करता था। तमाम क़िले में, जहाँ देखो, वहीं जयमल खड़ा दिखाई पड़ता था। सब उसकी मुस्तैदी देखकर हैरान थे।

एक दिन, दिनभर युद्ध करने के बाद, रात को मशालों की रोशनी में, जयमल अपने सामने क़िले की एक टूटी हुई दीवार बनवा रहा था। बादशाह की नज़र उसपर पड़ गई। वह जयमल को पहचान गया। उसने तुरन्त बन्दूक उठाई और निशाना साधकर बन्दूक दाग दी। गोली सीधी जाकर जयमल को लगी। वह ज़मीन पर लेट गया। लेकिन मरते वक्त भी वह चित्तौर के सरदारों को इकट्ठा करके यह हुक्म दे गया कि औरतों को पहले चिता में भस्म करके, सब लोग किले के बाहर निकलकर एक-एक करके प्राण दे देना। ऐसा न हो कि चित्तौर के क़िले के अन्दर आकर दुश्मन एक भी आदमी, औरत या बच्चे को जिन्दा पा जाय। राजपूतों का यह धर्म नहीं है कि उनके जिन्दा रहते उनकी जन्मभूमि पर दुश्मन का अधिकार हो।

सबने जयमल की बात मान ली। उसके मरने के बाद वही किया गया। जीत होने पर जब अकबर अपनी सेना के साथ क़िले में घुसा तो सिवा मुर्दों के उसे कहीं एक भी जिन्दा आदमी, औरत या बच्चा न मिला।

जयमल और फत्ता की वीरता के गीत आज भी मेवाड़ में

घर-घर गाए जाते हैं। उन्होंने अपने देश के लिए कैसी बहादुरी दिखाई थी, आजतक सबलोग इसकी याद करते हैं। जबतक चित्तौर बना है, तबतक जयमल और फत्ता का नाम भी कोई भूल नहीं सकता।

शब्दार्थ

ख़ून बहाना = जान देना। टूट पड़ना = चढ़ाई करना। रुण्ड-मुण्ड = धड़ और सिर। खेती की तरह काटना = बड़ी आसानी से काटना। हैरान = दंग, चकित। छकाना = परेशान करना। मुस्तैदी = तत्परता। निशाना साधना = निशाना स्थिर करना। बन्दूक दागना = बन्दूक छोड़ना।

शुरू के आदमी

[यह लेख पं० जवाहरलाल नेहरू के अपनी पुत्री के नाम लिखे गए पत्रों के संग्रह से उद्धृत किया गया है। इसमें पंडित जी ने बड़े ही सरल एवं रोचक ढंग से प्रारम्भिक युग—पत्थर युग—के आदमियों की रहन-सहन, आहार-व्यवहारादि का वर्णन किया है।]

प्यारी बेटी,

हमने अपने पिछले ख़त में लिखा था कि आदमी और जानवर में सिर्फ़ अक़्ल का फ़र्क़ है। अक़्ल ने आदमी को उन बड़े-बड़े जानवरों से ज्यादा चालाक और मज़बूत बना दिया जो मामूली तौर पर उसे नष्ट कर डालते। ज्यों-ज्यों आदमी

की अक़्ल बढ़ती गई वह ज़्यादा बलवान् होता गया। शुरू में आदमी के पास जानवरों से मुक़ाबला करने के लिए कोई ख़ास हथियार न थे। वह उनपर सिर्फ़ पत्थर फेंक सकता था। इसके बाद उसने पत्थर की कुल्हाड़ियाँ और भाले और बहुत-सी दूसरी चीज़ें भी बनाईं जिनमें पत्थर की सूई भी थी। हमने इन पत्थर के हथियारों को साउथ-कैंसिंगटन और जनेवा के अजायब घरों में देखा था।

उस ज़माने में न तो मकान थे न और कोई दूसरी इमारत थी। लोग गुफाओं में रहते थे। खेती करना किसी को न आता था। लोग जंगली फल वग़ैरह खाते थे, या जानवरों का शिकार करके मांस खाकर रहते थे। रोटी और भात उन्हें कहाँ मयस्सर होता, क्योंकि उन्हें खेती करनी आती ही न थी। वे पकाना भी नहीं जानते थे, हाँ शायद मांस को आग में गरम कर लेते हों। उनके पास पकाने के बर्त्तन, जैसे कढ़ाई और पतीली भी न थे।

एक बात बड़ी अजीब है। इन जंगली आदमियों को तस्वीर खींचना आता था। यह सच है कि उनके पास काग़ज़, क़लम पेंसिल या ब्रश न थे। उनके पास सिर्फ़ पत्थर की सूइयाँ और नोकदार औज़ार थे। इन्हीं से वे गुफाओं की दीवारों पर जानवरों की तस्वीरें बनाया करते थे। उनके बाज़े-बाज़े ख़ाके ख़ासे अच्छे हैं मगर वे सब इकरुख़े हैं। तुम्हें मालूम है कि इकरुख़ी तस्वीर खींचना आसान है और बच्चे इसी तरह की

तस्वीरें खींचा करते हैं। गुफाओं में अंधेरा होता था इसलिए मुमकिन है वे चिराग जलाते हों।

जिन आदमियों का हमने ऊपर ज़िक्र किया है वे पाषाण—पत्थर युग के आदमी कहलाते हैं। उस ज़माने को पत्थर का युग इसलिए कहते हैं कि आदमी अपने सभी औज़ार पत्थर के बनाते थे। धातुओं को काम में लाना वे न जानते थे। आजकल हमारी अक्सर चीज़ें धातुओं से बनती हैं, ख़ासकर लोहे से। लेकिन उस ज़माने में किसी को लोहे या काँसे का पता न था; इसलिए पत्थर काम में लाया जाता था, हालाँकि उससे कोई काम करना बहुत मुश्किल था।

पाषाण युग के ख़त्म होने के पहले ही दुनिया की आबहवा बदल गई और उसमें गर्मी आ गई। बर्फ़ के पहाड़ अब उत्तरी सागर तक ही रहते थे और मध्य एशिया और योरप में बड़े-बड़े जंगल पैदा हो गए। इन्हीं जंगलों में आदमियों की एक नई जाति रहने लगी। ये लोग बहुत-सी बातों में पत्थर के युग के आदमियों से ज़्यादा होशियार थे। लेकिन ये भी पत्थर के ही औज़ार बनाते थे। ये लोग भी पत्थर ही के युग के थे। मगर यह पिछला पत्थर का युग था, इसलिए ये नये पत्थर के युग के आदमी कहलाते थे।

ग़ौर से देखने से मालूम होता है कि नये पत्थर के युग के आदमियों ने बड़ी तरक्की कर ली थी। आदमी की अक़्ल और जानवरों के मुक़ाबिले में उसे बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ाए लिए जा

रही थी। इन्हीं नये पाषाण-युग के आदमियों ने एक बहुत बड़ी चीज़ निकाली। यह खेती करने का तरीक़ा था। उन्होंने खेतों को जोतकर खाने की चीज़ें पैदा करनी शुरू की। उनके लिए यह बहुत बड़ी बात थी। अब उन्हें आसानी से खाना मिल जाता था, इसकी ज़रूरत न थी कि वे रात-दिन जानवरों का शिकार करते रहें। अब उन्हें सोचने और आराम करने की ज़्यादा फ़ुर्सत मिलने लगी। और उन्हें जितनी ही ज़्यादा फ़ुर्सत मिलती थी, नई चीज़ों और तरीक़ों के निकालने में वे उतनी ही ज़्यादा तरक़्क़ी करते थे। उन्होंने मिट्टी के बर्तन बनाने शुरू किए और उनकी मदद से अपना खाना पकाने लगे। पत्थर के औज़ार भी अब ज़्यादा अच्छे बनने लगे और उनपर जिला भी अच्छी होने लगी। उन्होंने गाय, कुत्ता, भेड़, बकरी वग़ैरह जानवरों को पालना सीख लिया और वे कपड़े भी बुनने लगे।

वे छोटे-छोटे घरों या झोपड़ों में रहते थे। ये झोपड़े अक्सर झीलों के बीच में बनाए जाते थे क्योंकि जंगली जानवर या दूसरे आदमी वहाँ ऊपर आसानी से हमला न कर सकते थे। इसलिए ये लोग झील के रहनेवाले कहलाते थे।

तुम्हें अचम्भा होता होगा कि इन आदमियों के बारे में हमें इतनी बातें कैसे मालूम हो गईं। उन्होंने कोई किताब तो लिखी नहीं। लेकिन मैं तुमसे पहिले ही कह चुका हूँ कि इन आदमियों का हाल जिस किताब में हमें मिला है वह संसार की किताब है। उसे पढ़ना आसान नहीं है। उसके लिए बड़े अभ्यास की ज़रूरत

है। बहुत से आदमियों ने इस किताब के पढ़ने में अपनी सारी उम्र खत्म कर दी है। उन्होंने बहुत-सी हड्डियाँ और पुराने ज़माने की बहुत-सी निशानियाँ जमा कर दी हैं। ये चीज़ें बड़े-बड़े अजायब घरों में जमा हैं; और वहाँ हम उम्दा चमकती हुई कुल्हाड़ियाँ और बरतन, पत्थर के तीर और सूइयाँ, और बहुत-सी दूसरी चीज़ें देख सकते हैं जो पिछले पत्थर के युग के आदमी बनाते थे। तुमने ख़ुद इनमें से बहुत सी चीज़ें देखी हैं लेकिन शायद तुम्हें याद न हो। अगर तुम फिर उन्हें देखो तो ज़्यादा अच्छी तरह समझ सकोगी।

मुझे याद आता है कि जनेवा के अजायब घर में झील के मकान का एक बहुत अच्छा नमूना रक्खा हुआ था। झील में लकड़ी के डंडे गाड़ दिए गए थे और उनके ऊपर लकड़ी के तख्ते बाँधकर ऊपर झोपड़ियाँ बनाई गई थीं। इस घर और ज़मीन के बीच में एक छोटा सा पुल बना दिया गया था। ये पिछले पत्थर के युगवाले आदमी जानवरों की खालें पहनते थे और कभी-कभी सन के मोटे कपड़े भी पहनते थे। सन एक पौधा है जिसके रेशों से कपड़ा बनता है। आजकल महीन कपड़े सन से बनाए जाते हैं। लेकिन उस ज़माने के सन के कपड़े बहुत ही भद्दे रहे होंगे।

ये लोग इसी तरह तरक्की करते चले गए, यहाँ तक कि इन्होंने ताँबे और काँसे के औजार बनाने शुरू किए। तुम्हें मालूम है कि काँसा, ताँबे और राँगे के मेल से, बनता है और

इन दोनों से ज़्यादा सख़्त होता है। वे सोने का इस्तेमाल करना भी जानते थे और इसके ज़ेवर बनाकर इतराते थे।

हमें यह ठीक तो मालूम नहीं कि इन लोगों को हुए कितने दिन गुज़रे लेकिन अंदाज़ से मालूम होता है कि दस हज़ार साल से कम न हुए होंगे। अभी तक तो हम लाखों बरसों की बात कर रहे थे लेकिन धीरे-धीरे हम आजकल के ज़माने के क़रीब आते जाते हैं। नये पाषाण के युग के आदमियों में और आजकल के आदमियों में यकायक कोई तब्दीली नहीं आ गई। फिर भी हम उनके से नहीं हैं। जो कुछ तब्दीलियाँ हुईं बहुत धीरे-धीरे हुईं और यही प्रकृति का नियम है। तरह-तरह की क़ौमें पैदा हुईं और हरएक क़ौम की रहन-सहन का ढंग अलग था। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों की आबहवा में बहुत फ़र्क था और आदमियों को अपनी रहन-सहन उसी के मुताबिक बनानी पड़ती थी। इस तरह लोगों में तब्दीलियाँ होती जाती थीं। लेकिन इस बात का ज़िक्र हम आगे चलकर करेंगे।

आज मैं तुमसे सिर्फ़ एक बात का ज़िक्र और करूँगा। जब नया पत्थर का युग ख़त्म हो रहा था तो आदमी पर एक बड़ी आफ़त आई। मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि उस ज़माने में भूमध्यसागर था नहीं। वहाँ चन्द झीलें थीं और इन्हीं में लोग आबाद थे। यकायक योरप और अफ़्रीका के बीच में जिब्राल्टर के पास ज़मीन बह गई और अटलांटिक

समुद्र का पानी उस नीचे खड्ड में भर आया। इस बाढ़ में बहुत से मर्द और औरतें जो वहाँ रहते थे डूब गए होंगे। भागकर जाते कहाँ? अटलांटिक सागर का पानी बराबर भरता गया और इतना भरा कि भूमध्यसागर बन गया।

तुमने शायद पढ़ा होगा, कम से कम सुना तो है ही, कि किसी ज़माने में बड़ी भारी बाढ़ आई थी। बाइबिल में इसका ज़िक्र है और बाज़ संस्कृत की किताबों में भी उसकी चर्चा आई है। हम तो समझते हैं कि भूमध्यसागर का भरना ही वह बाढ़ होगी। यह इतनी बड़ी आफ़त थी कि इससे बहुत थोड़े आदमी बचे होंगे। और उन्होंने अपने बच्चों से यह हाल कहा होगा। उन बच्चों को यह बात याद रही होगी और उन्होंने अपने-अपने बच्चों से कही होगी। इसी तरह यह कहानी हम तक पहुँची।

शब्दार्थ

ख़त = चिट्ठी, पत्र। मयस्सर = प्राप्त होना। ख़ाका = नक़्शा। मुमकिन = सम्भव। हालाँ कि = यद्यपि। जिला = चमक। इतराना = गर्व करना। यकायक = एकाएक। तब्दीली = परिवर्तन। बाज़ = कुछ।

शुरू के जीव

[अपनी पुत्री के नाम लिखे गए इस पत्र में पं० जवाहरलाल नेहरू ने पृथ्वी पर ज़िन्दगी कब शुरू हुई और उसपर सबसे पहिले

कौन से जीव पैदा हुए इस विषय का बड़ा दिलचस्प चित्र खींचा है ।]

प्यारी बेटी,

हमने पिछले खत में लिखा था कि बहुत दिनों तक दुनिया इतनी ज़्यादा गर्म रही होगी कि कोई चीज़ इसपर ज़िन्दा न रह सकती होगी।

ज़िन्दगी कब शुरू हुई और पहली जानदार चीज़ें क्या थीं, यह बहुत दिलचस्प सवाल है, लेकिन इसका जवाब देना बहुत मुश्किल है। आओ, हम पहले यह जानने की कोशिश करें कि ज़िन्दगी क्या है।

तुम शायद कहोगी कि आदमी जानदार है और जानवर भी। दरख़्तों, झाड़ियों और फूलों और तरकारियों के बारे में क्या कहोगी? यक़ीनी वे भी जानदार हैं। वे बढ़ते हैं, पानी पीते हैं, हवा में साँस लेते हैं और मर जाते हैं। एक दरख़्त और एक जानवर में साफ़ फ़र्क यह है कि दरख़्त हिलता-डुलता नहीं। शायद तुम्हें याद होगा कि लन्दन के क्यूब-बाग़ में मैंने तुम्हें कुछ पौधे दिखाए थे, जो सचमुच मक्खियाँ खाते हैं। फिर कुछ जानवर भी हैं जैसे स्पंज जो समुद्र की तह में रहते हैं और हिलते-डुलते नहीं।

कभी-कभी यह कहना मुश्किल हो जाता है कि यह चीज़ जानवर है या पौधा। जब तुम वह इल्म पढ़ोगी, जिसमें पौधों के बारे में बतलाया जाता है, या वह इल्म जिसमें जानवरों के

बारे में बतलाया जाता है, तो तुम देखोगी कि बाज़ ऐसी अजीब चीजें हैं जो न एकदम जानवर हैं और न एकदम पौधा।

कुछ लोगों का ख़्याल है कि पत्थर और चट्टानों में भी किसी तरह की जान होती है और वे भी एक तरह की तकलीफ़ महसूस करते हैं। लेकिन इसका पता लगाना बहुत मुश्किल है। शायद तुम्हें याद होगा कि जनेवा में एक हज़रत हम लोगों से मिलने आए थे। उनका नाम 'सर जगदीश चन्द्र बोस' था। उन्होंने तजरबे से साबित कर दिया है कि पौधों में जान होती है। और उनका ख़्याल है कि पत्थरों में भी जान है।

अब तुम्हें मालूम हो गया होगा कि यह कहना आसान नहीं कि कौन चीज़ जानदार है और कौन नहीं। लेकिन इस वक्त पत्थरों को छोड़ो और सिर्फ़ जानवरों और पौधों को लो।

आजकल बहुत-सी जानदार चीज़ें हैं—हर तरह की, हर क़िस्म की। मर्द और औरतें, जिनमें बहुत-से चालाक हैं और बहुत-से बेवकूफ़। इसी तरह जानवर हैं। इनमें भी तुम्हें बहुत चालाक मिलेंगे। जैसे हाथी, बन्दर और चींटी। और ऐसे जानवर भी जो निहायत अहमक़ हैं। मछलियाँ और दूसरी बहुत-सी समुद्री चीज़ें, ज़िन्दगी के दरजे में, निचले तबके की हैं। सबसे नीचे 'स्पंज' हैं और 'जेली' की तरह मछलियाँ और वे जो आधा जानवर और आधा पौधा।

हमें यह पता लगाने की कोशिश करना है क्या ये जानवर की क़िस्में एक ही बार पैदा हो गईं या आहिस्ता-आहिस्ता, एक-

एक करके। हम इसका पता कैसे लगावें ? उन पुराने वक्तों की, हमारे पास कोई किताब तो है नहीं, लेकिन क्या हमारी प्रकृति की किताब मदद देगी ?

हाँ, पुरानी चट्टानों से हमें जानवरों की हड्डियाँ मिलती हैं। इन्हें 'फ़ॉसिल' कहते हैं। जब हम इन्हें पाते हैं हम कह सकते हैं कि बहुत दिन पहले जब चट्टान बनी थी, तब ये जानवर ज़रूर जिन्दा रहे होंगे। हम लोगों ने लन्दन के साउथ-कैसिंगटन म्यूज़ियम (अजायबघर) में बहुत से इस तरह के छोटे-बड़े 'फ़ॉसिल' देखे थे।

जब कोई जानवर मरता है तो उसका गोश्त बहुत जल्द सड़ जाता है। लेकिन उसकी हड्डियाँ बहुत दिन तक रहती हैं। ये ही हड्डियाँ हैं जो हमें मिलती हैं और गुज़रे हुए ज़माने के जानवरों के बारे में हमें बताती हैं।

लेकिन, मान लो किसी जानवर की हड्डियाँ ही न हों, जैसे 'जेली' मछलियाँ। इनके मरने के बाद कुछ भी बाक़ी न रहेगा।

चट्टानों को अच्छी तरह देखने और जितनी भी फ़ॉसिल हड्डियाँ मिलती हैं उन्हें इकट्ठा करने पर हमें मालूम होता है कि हर ज़माने में दूसरी-दूसरी तरह के जानवर थे। वे सब-के-सब एक ही बार आसमान से नहीं टपक पड़े। पहले-पहल बहुत मामूली क़िस्म के जानवर हुए—जैसे घोंघा और सीपी। समुद्र के किनारे जो सीपियाँ मिलती हैं, वे उन जानवरों की हड्डियों के खोल हैं जो मर चुके हैं। इसके बाद ज़रा और ऊँची क़िस्म के जानवर जैसे

साँप, और दूसरे बड़े-बड़े जानवर जो आजकल के हाथियों से भी बड़े थे, चिड़ियाँ और ऐसे जानवर जिन्हें हम आजकल देखते हैं पैदा हुए। और इन सबके आख़िर आदमी हुए।

इस तरह पता चलता है कि जानवरों के पैदा होने में एक तरह का सिलसिला है। पहले सीधी-सादी बनावट के मामूली तरह के जानवर, इसके बाद ज़रा ऊँची क़िस्म के। यहाँ तक कि सबसे ऊँचे दरजे का जानवर आदमी।

इन सीपियों, घोंघों, और स्पंजों ने इतनी तरक्की की—यह बड़ी दिलचस्प बात है। और शायद किसी दिन मैं इसके बारे में तुम्हें बतलाऊँगा भी। इस वक़्त तो मैं सबसे शुरू की जानदार चीज़ों के बारे में बता रहा हूँ।

जब ज़मीन ठंडी हुई तो शायद पहली जानदार चीज़ जो इसपर हुई, वह जेली मछली थी—मुलायम मलाई की तरह की चीज़ जिसमें हड्डियाँ या सीपियाँ न थीं। ये समुद्र में हुईं। इनका कोई फ़ॉसिल हमें नहीं मिलता; क्योंकि इनमें हड्डियाँ ही कहाँ थीं ? इसलिए हम इनके बारे में सिर्फ़ अन्दाज़ा ही लगा सकते हैं।

हमारी इस दुनिया पर पहले इसी तरह की चीज़ें रही होंगी। कितनी सीधी-सादी और अदना क़िस्म की जिन्दगी का नमूना यह था। सारी दुनिया में इससे अच्छी और ऊँची ज़िन्दगी न थी। सचमुच के जानवर अभी न थे और आदमी का तो लाख बरस तक पता न मिलनेवाला था।

इन मलाई की तरह के जानदारों के बाद समुद्र की घास,

घोंघे, सीपियाँ, केकड़े, और कीड़े मकोड़े पैदा हुए। इसके बाद मछलियाँ हुईं। हम इनके बारे में बहुत कुछ जानते हैं; क्योंकि इनमें हड्डियाँ और सीपियाँ थीं और इन्हीं हड्डियों की मदद से हम इनके मर जाने के इतने दिन बाद भी इनके बारे में जानते हैं। ये सीपियाँ वग़ैरह समुद्र की तह में कीचड़ में पड़ी थीं। इनके ऊपर ताज़ा कीचड़ और बालू की तहें जम गईं और इस तरह इनकी हिफ़ाजत हो गई। ऊपर के दबाव से यह कीचड़ और सख़्त होता गया, यहाँ तक कि पत्थर बन गया।

इस तरह समुद्र की तह में चट्टानें बनीं। जलजले की वजह से ये चट्टानें समुद्र के ऊपर आ गईं और सूखी ज़मीन बन गई। फिर ये चट्टानें दरियाओं और बरसते हुए पानी से धुलीं और सीपियाँ और हड्डियाँ—जो इतने दिनों से छिपी पड़ी थीं—खुल गईं। इससे हमें ये हड्डियाँ और सीपियाँ मिलीं और ग़ौर से देखने के बाद हमने पता चलाया कि आदमी के पैदा होने से पहले हमारी दुनिया ऐसी थी।

शब्दार्थ

दिलचस्प = रोचक। दरख़्त = पेड़, वृक्ष। यक़ीनी = निश्चित रूप से। इल्म = विद्या। बाज़ = कुछ। महसूस करना = अनुभव करना। तजरबा = परीक्षण, अनुभव। निहायत = अत्यन्त। अहमक = मूर्ख, बेवक़ूफ़। तबका = कोटि, श्रेणी, विभाग। गोश्त = मांस। आखिर = अन्त में। अदना = निम्न, छोटी। हिफ़ाजत = रक्षा। जलजला = भूकम्प। दरिया = नदी। ग़ौर = ध्यान।

मोमबत्ती की रामकहानी

[श्री भृगुनाथ तिवारी ने अपने इस लेख में मोमबत्ती की आत्म-कहानी के रूप में इसके आविष्कार तथा इसके आविष्कार के विकास के इतिहास के सम्बन्ध की कितनी ही जानने योग्य बातें बड़े रोचक ढंग से कही हैं।]

तुम मुझे जरूर जानते हो। मैं मोमबत्ती हूँ। बिजली की जगमग बत्तियाँ तुम्हें आज नसीब हैं। किन्तु, जब इसकी सूझ भी किसी के दिमाग में न आई थी, तभी से मैं जल-जलकर प्रकाश दे रही हूँ। उस ज़माने की सोचो, लखपतियों और करोड़-पतियों की शान मुझी से क़ायम थी, महफ़िलें मुझी से रौशन होती थीं; उत्सव के दिवस मेरी ही ज्योति से जगमगाते थे। आज मैं तुम्हारे लिए तुच्छ हो सकती हूँ; मगर मैं अपने नसीब को सराहती हूँ कि आड़े दिनों में तुम्हारे काम आई। तुम्हें शुभ्र और स्निग्ध प्रकाश दिया, किन्तु तुम्हारे आँखों की ज्योति नहीं बिगाड़ी, जैसा कि आज दिन बिजली की बत्तियाँ करती हैं। खैर, जाने दो।

मैं मोमबत्ती हूँ, मेरा शरीर मोम और बत्ती से बना है। आज बाज़ारों में लोग जिस रूप में मुझे बेचते हैं, सब दिन मैं इसी रूप में नहीं रही थी। जिस तरह बदलते-बदलते ही सारी दुनिया इस रूप में पहुँच सकी है, मैं भी बनती-बिगड़ती ऐसी हो सकी हूँ। बहुत—बहुत दिन पहले, जब लोग अन्धकार को

जीतना चाहते थे, किसी न किसी रूप में मेरा जन्म हो चुका था। इन आँखों से एक ज़माना गुज़र गया न! इसीलिए पुरानी बातें ठीक-ठीक याद नहीं आतीं। तुम्हें ही क्या अपने सम्बन्ध की सारी बातें, शुरू से आख़िर तक, याद हैं? शायद नहीं। इतना कह सकती हूँ कि जब और-और तरह की रोशनियों में लोगों को दोष ही दोष मिलते गए, तब वे मेरी शरण में आए। मेरे उस समय दो अंग थे—चर्बी और बत्ती। लोग किसी बर्तन में पिघली हुई चर्बी रखकर उसमें बत्ती डालकर जलाते थे। रोशनी स्वच्छ होती थी, धुँएँ का नाम नहीं। कुछ दिन मैं इस रूप में भी जलती रही। भाग्य से किसी सज्जन को यह पता चला कि ह्वेल मछली के दिमाग में एक तरह की मोम-जैसी चीज़ पाई जाती है। पिल पड़े लोग उसी ओर। बस, उसी मोम से काम लिया जाने लगा। आज से लगभग सौ साल पहले का ज़िक्र है, सन् १८२३ में फ्रांस के सेब्रए साहब ने नई ईजाद की।

उन्होंने मेरा विश्लेषण किया, मेरी जाँच-पड़ताल की। बताया, इस चर्बी में तीन चीज़ें हैं—ग्लिसरीन, एसिड वलेइन और एसिड स्टीयेरिन। दस बरस तक वे मेरे शरीर-निर्माण की चिन्ता में घुलते रहे। आख़िर अन्य दो अंशों को निकालकर केवल स्टीयेरिन से ही वे हमारा काम चलाने लगे। तब तक हमारे सौभाग्य या दुर्भाग्य से पेट्रोल का पता लगा। उससे एक नई चीज़ निकली—पैराफ़िन। कुछ दिन तो मियाँ पैराफ़िन अकेले ही हमारे काम आए—पीछे पैराफ़िन और स्टीयेरिन दोनों बराबर-

बराबर मिलाकर काम आने लगे। मेरे रूप और गुण, दोनों की तरक्की हुई।

हमारी राम-कहानी यहीं नहीं ख़त्म होती—ये तो शुरू की बातें हैं। यह अभी और आगे बढ़ती है किन्तु हमें डर है कि उसे अब अधिक सुनकर तुम्हारा मन कहीं ऊब न उठे। अतः मोम की बात को हम यहीं पर छोड़ते हैं।

अब रही बात बत्ती की। बत्ती की अच्छी प्रणाली सन् १८२५ में निकली। पहले लोग कुछ सूत मिलाकर बत्ती का काम निकाल लेते थे। मगर, वह बत्ती बुझ-बुझ जाती थी। रोशनी भी साफ नहीं होती थी। इसलिए सूत को बाँटकर बोराक्स और अमोनिया सालफेट के पानी में भिगोकर सुखा लेने से अच्छी रोशनी निकलती।

इस तरह मेरे शरीर-गठन की अच्छी-से-अच्छी प्रणाली लोगों ने निकाल ली। फिर तो अनगिनत कारखाने बने, तरह-तरह के साँचे बने और नाना रूपों में ढल-ढलकर मैं बड़े-बड़े बक्सों में सजकर रेल, मोटर, जहाज़, बग्घी और कुलियों पर लद-लदकर बाज़ारों में बिकने लगी। रंगों और आकारों का क्या पूछना। कुन्दा-सा शरीर, लाल-पीला, सफ़ेद-हरा, जो चाहो रंग, छोटा-बड़ा सब तरह का आकार। गरीब की झोपड़ी से लेकर महलों तक मेरी पहुँच। लेकिन, इधर जो बयार बही है, देखती हूँ, मेरी खैरियत नहीं। बाज़ारों में मेरी टके को भी पूछ नहीं। वैज्ञानिकों की दिमागी ख़ुराफ़ातों से रोशनियों की तो बाढ़-

उ

सी आ गई है। रोज़ एक-न-एक तरह की नई चमक-दमक और रूप-रंग के आगे मेरी बात भी नहीं पूछते। यह बहाव शायद मेरा नामो-निशान मिटाकर ही दम ले।

शब्दार्थ

नसीब होना = प्राप्त होना। महफ़िल = सभा, जलसा। उत्सव = तेहवार, मंगल-कार्य। नसीब = भाग्य। आड़े दिन = बुरे दिन। शुभ्र = उज्ज्वल। स्निग्ध = चिकना। ईजाद = आविष्कार। शरीर-निर्माण = देह की बनावट। प्रणाली = रीति। कुन्दा = लकड़ी का बड़ा मोटा और बिना चीरा हुआ टुकड़ा। बयार = हवा। ख़ैरियत = कुशल। ख़ुराफ़ात = बेहूदा बातें।

धार्मिक एकता

[श्री राय ब्रजराज कृष्ण जी ने इस लेख में अत्यन्त सुबोध रीति से बतलाया है कि वाह्य रूप की अनेकता के आधार पर विभिन्न धर्मों को एक दूसरे से भिन्न मानना तथा उनके अनुयायियों में परस्पर द्वेष और घृणा के भावों का रहना सर्वथा अवांछनीय है। सच्ची बात तो यह है कि संसार के सभी धर्मों का सार और आधार सत्य तथा पारस्परिक प्रेम है।]

मनुष्य का ऐसा स्वभाव है कि प्रायः हरएक आदमी अपनी चीज़ को, अपने धर्म को भी, उत्तम समझता है। प्रायः मनुष्य को यह घमंड होता है कि मैं उच्च जाति का हूँ; मैं गोरे रंग का

हूँ; मेरी जाति पर परमात्मा की विशेष कृपा है; दुनिया में मेरा साम्राज्य है; जल और वायु, आकाश और पाताल, सब जगह मेरा प्रभुत्व है, मेरे राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता है; मेरा देश सबसे अधिक धनी और हर प्रकार सम्पन्न है—इत्यादि—इत्यादि। उसी तरह वह यह भी विश्वास रखता है कि मेरा ही धर्म सबसे अच्छा है, बिलकुल नया और अनोखा है, उसके ऐसा कोई दूसरा धर्म न कभी हुआ, न है, और न हो सकता है; उससे बढ़कर होने की तो कोई बात ही नहीं।

यह सारा घमंड झूठा है। संसार परिवर्त्तनशील है; किसी का दिन सदा एक-सा नहीं रहता। हाँ, यह ठीक है कि संसार में कोई दो चीज़ एकदम एक तरह की नहीं है; सब वस्तुओं में कुछ-न-कुछ अन्तर है; किसी भी एक वर्ग की चीज़ें ली जायँ तो उनमें एक दूसरे से बहुत-सी बातों में अन्तर ज़रूर दिखाई देगा; पर विचार करने से यह बात पाई जायगी कि उन सब का असली रूप और असली गुण एक है। उदाहरण के लिए गौओं को लीजिए। कोई गौ काली है तो कोई लाल, कोई सींगदार है तो कोई मुंडी, कोई चितकबरी है तो कोई एक-रंग; फिर भी दूध सबका एक समान सफ़ेद होता है। धर्म के विषय में भी बात ऐसी ही है।

कुछ विद्वानों का कहना है कि पुराने धर्मों की नक़ल नये धर्मों ने की है। पर यह सब व्यर्थ का झगड़ा है। सब धर्मों का मूल सत्य है। सचमुच धर्म सत्य है, और सत्य ही परम

धर्म है। ऐसी अवस्था में नक़ल करने अथवा नहीं करने का प्रश्न ही बे-सिर-पैर का है। सत्य न किसी की बपौती है, और न कोई सत्य का ठीकेदार हो सकता है। असल बात यह है कि प्रत्येक महापुरुष और धर्म-प्रचारक के मन में सत्य स्वतंत्र रूप से उमड़ता है; उसे इसकी ज़रूरत नहीं होती कि वह दूसरे से सत्य की और धर्म की शिक्षा ले।

बाइबल में लिखा है कि हम सब एक दूसरे के अंग हैं और परमात्मा ने दुनिया की सब जातियों की रचना एक ही रक्त से की है। मुसलमानों के धर्म-ग्रन्थ क़ुरान का भी मत है कि सारे जीव एक ही ईश्वरीय परिवार के अंग हैं। इसी प्रकार वेद का वाक्य है कि सब मनुष्य आपस में सिर, हाथ, धड़ और पाँव की भाँति एक बंधन में बँधे हैं।

परन्तु खेद है कि बहुतेरे लोग अपनेको जन-समाज का अंग नहीं समझते और अपने ही व्यक्तित्व पर विशेष ध्यान देते हैं, अपनेको निराला और दूसरों से बड़ा समझते हैं। पर इसके साथ-साथ कोई अकेले रहना पसंद नहीं करता; क्योंकि अकेले में तो बड़ाई-छुटाई ग़ायब हो जाती है। इससे भी साफ़ ज़ाहिर है कि हरएक आदमी दूसरों से अटूट बंधन में बँधा है।

दुर्भाग्यवश आजकल धर्म के नाम पर रोज़ झगड़े हुआ करते हैं, और इतने भयंकर कि उनसे ऊबकर कुछ लोग सोचने लगते हैं कि धर्म ही उठा देना चाहिए। पर बीमारी का इलाज बीमार को मार देना नहीं हो सकता। धर्म को उठा

देना कोई सहज बात नहीं है। धर्म के उठाने के पहले संसार से पीड़ा और मृत्यु का लोप करना होगा; क्योंकि दुःख की अवस्था में मनुष्य शान्ति के लिए हमेशा धर्म की शरण लेता है।

झगड़े की जड़ तो यह है कि बचपन ही से हमको शिक्षा मिलती है कि हमारा धर्म अन्य धर्मों से अलग है; और इस प्रकार अलग-अलग धर्मवाले अपने-अपने धर्म को दूसरों के धर्म से जुदा और विपरीत मानने लगते हैं, और फिर धर्म के नाम पर एक दूसरे से लड़ते-झगड़ते हैं—एक दूसरे का खून बहाते हैं।

झगड़ा मिटाने का सीधा और सच्चा उपाय यह है कि हम अलग-अलग धर्मों की बाहरी बातों को, जिनके कारण उन धर्मों में भेद जान पड़ता है, छोड़कर असली बातों की ओर ध्यान दें। असली बातों पर ध्यान न देकर हमलोग दूसरी छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देते हैं। इसीसे समाज का इतना अपकार हो रहा है। धर्म के मूल तत्त्व को जान लेने के बाद कोई झगड़ा बाक़ी नहीं रहेगा।

धर्म के मूल तत्त्व और बाहरी रूप में वही सम्बन्ध है, जो दाना और भूसी में है। खाने की, स्वास्थ्य देनेवाली चीज़, दाना है, भूसी नहीं; भूसी का काम तो केवल यह है कि दाने को हिफ़ाज़त से रक्खे। इस भाँति विचार करने से निश्चय होता है कि वास्तव में सब धर्म एक ही है।

क़ुरान में लिखा है कि मानव-समाज में समय-समय पर जो धर्म-प्रचारक हुए हैं उनके मतों में कोई भेद नहीं है; सबने एक

इसी सत्य का प्रचार किया है कि परमात्मा एक है और उसके सिवा कोई दूसरा पूज्य नहीं हो सकता।

ईसाई मत की शिक्षा भी इसी ढंग की है। बाइबल में साफ़-साफ़ कहा हुआ है कि ईश्वर किसी ख़ास मनुष्य का पक्षपाती नहीं है; जो सत्य पर रहकर ईश्वर की आराधना करता है उसीको ईश्वर अपनाता है।

वेद का वाक्य है कि सब मनुष्यों में आत्मा एक है; आत्मा का न कोई रूप है, न रंग है, न कोई ख़ास धर्म है।

सच तो यह है कि जो कुछ भेद है वह केवल शब्दों का है, असलियत का नहीं; असलियत, मूल तत्त्व, एक ही है। 'परमेश्वर' और 'अल्लाह-अकबर' दोनों का एक ही अर्थ है। 'अल्लाह' और 'ईश्वर' दोनों ही उसी एक भगवान् का नाम है; 'अकबर' और 'परम' दोनों का अर्थ है 'सबसे बड़ा'।

तात्पर्य यह कि बाहरी बातों में, शब्दों में, भेद होते हुए भी, सब धर्मों का मूल तत्त्व सनातन और विश्वव्यापी है, चाहे उसे विद्या कहें, या इर्फ़ान अथवा विज़डम्।

शब्दार्थ

प्रभुत्व = हुकूमत, शासनाधिकार। अनोखा = अनूठा, निराला। परिवर्त्तनशील = हमेशा बदलता रहनेवाला। व्यक्तित्व = किसी व्यक्ति के रूप-गुण की प्रभावशालिता। शरण = आश्रय, पनाह। मूल तत्त्व = सार वस्तु। पक्षपाती = तरफ़दार, हिमायती। आराधना = पूजा,

उपासना। सनातन=बहुत दिनों से चला आता हुआ, नित्य। विश्वव्यापी=सारे संसार में फैला हुआ।

अभिवादन-प्रणालियाँ

[पारस्परिक अभिवादन समस्त मानव-समाज की आवश्यकता और विशेषता है। प्रस्तुत लेख में पृथ्वी के विभिन्न देशों में प्रचलित अभिवादन-प्रणालियों का बड़ा ही रोचक एवं खोज-पूर्ण वर्णन दिया गया है।]

भारतवर्ष में बड़े लोगों, भाई-बन्धुओं और परिचित व्यक्तियों से भेंट हो जाने पर हम लोग जिन विभिन्न प्रकारों से अपने मनोभाव व्यक्त करते हैं, उन्हीं का नाम 'अभिवादन' है।

जब हम समवयस्क मित्रों से भेंट होने पर मन्द मुसकराहट के साथ उनसे मिलते हैं और कुशल पूछते हैं, बड़े लोगों को प्रणाम करते और छोटों को आशीर्वाद देते हैं, उस समय हममें व्यंजित अत्यधिक सरलता, नम्रता एवं कोमलता होती है और यही भाव सत्कार की जान है।

इस अभिवादन की प्रथाएँ देश-भेदानुसार भिन्न-भिन्न हैं। भारतवर्ष के पश्चिम प्रान्त के निवासी आपस में 'राम-राम' 'जय-गोपाल' आदि कहते हैं।

मुसलमान 'सलाम अलेकुम' 'आदाब अर्ज़' कहकर मिलते हैं और उत्तर में 'अलेकुम सलाम' कहते हैं।

अँगरेज़ जाति में प्रचलित अभिवादन-प्रणाली 'शेकहैंड' (हाथ मिलाना) है। मिलनेवाले परस्पर 'गुड मॉर्निंग,' 'गुड डे', 'गुड ईवनिंग' या 'गुड नाइट' कहते हुए हाथ मिलाते हैं और 'गुडबाई' कहते हुए एक दूसरे से पृथक् होते हैं। इसी हाथ मिलाने से उन लोगों का पारस्परिक सौहार्द और सद्भाव प्रकट होता है; किन्तु दूर से देखा-देखी होने पर वे परस्पर अपना-अपना सिर झुका लेते हैं। यदि विशेष सम्मान प्रदर्शित करने की आवश्यकता होती है तो सिर से टोपी उतार लेते हैं। कोई-कोई विशिष्ट आदर-प्रदर्शन के लिए टोपी उलट भी लेते हैं।

फ्रान्स में भी टोपी उतार लेने की प्रथा है। वहाँ लोग आपस में गाढ़ आलिंगन करते और दिल खोलकर गले मिलते हैं। वहाँ तो एक लार्ड मजदूर को भी देखकर टोपी उतार लेता या गले मिलता है। बेलजियम में भी यही रीति है।

स्पेन देश में किसानों की अभिवादन-प्रणाली बड़ी विचित्र है। सब अपने पास रोटी का एक-एक टुकड़ा रक्खे रहते हैं। मिलने के समय लोग उन टुकड़ों को दिखाकर मिलते हैं, लेकिन तुर्रा यह कि लोग उन टुकड़ों को लेते नहीं।

मलाया, लैपलैंड, टैसमानिया इत्यादि कई द्वीपों में चुम्बन, आघ्राण और नाक से रगड़ने की रीति है। फिलिपाइन में जब दो व्यक्ति परस्पर मिलते हैं, तो वे अपने दोनों हाथ दोनों कानों पर रखते हुए एक पैर उठाकर प्रेमाभिवादन करते हैं। रेड-इंडियन भेंट होने पर परस्पर सिगरेटों ही का आदान-प्रदान करते हैं।

ब्रह्मदेश में मित्रों के परस्पर मिलने के समय चुम्बन किया जाता है।

चीन देश में मिलने-जुलने की कई निराली चालें हैं। साल के पहले दिन भेंट होने पर हाथ जोड़ते और कुछ सिर झुका लेते हैं। दूसरे समय में मिलने पर टोपी से टोपी पहने मिलाते हैं; उसे उतारते नहीं। राह में भी बिना टोपी वहाँ कोई नहीं चलता। यदि कोई घर पर अतिथि आ जाय और घरवाले के सिर पर टोपी न हो, तो वह पहले टोपी पहन लेगा और तब अतिथि से मिलेगा। वहाँ कुशल पूछने की रीति यह है कि आपने 'भात खाया है ?' 'आपका आमाशय तो ठीक है न ?' इत्यादि। जापान में साधारणतः घुटने टेककर मिलने की रीति है। अफ्रिका की मूर जातियों में अभिवादन-प्रथा अत्यन्त अद्भुत एवं भयंकर है। किसी से मिलने पर लोग झट घोड़े पर चढ़कर उसे खदेड़ते हैं और उसकी ओर लक्ष्यकर पिस्तौल की खाली आवाज़ करते हैं। बेचारा अजनवी आदमी तो इस प्रकार के अद्भुत अभिवादन से भड़ककर भाग जाता है; पर जब इसकी वास्तविकता का परिचय हो जाता है, तो उसे हँसी आए बिना नहीं रहती। अफ्रिका के कई एक प्रान्तों में बाएँ कन्धे का कपड़ा हटा लिया जाता है और कई स्थानों में प्रेम-प्रदर्शन के लिए छाती पर का कपड़ा हटा लिया जाता है। ईजिप्ट में लोग यह कहकर मिलते हैं कि 'कहिए आज धूप कैसी है ?'

इन अद्भुत प्रथाओं से कितनों को हँसी आ जायगी; पर यदि वे ही उन देशों में रहते, तो क्या उन्हें ये नागवार मालूम होतीं ?

शब्दार्थ

अभिवादन = प्रणाम करना। प्रणाली = रीति। मनोभाव = मन का भाव। व्यक्त = प्रकट। समवयस्क = समान उम्रवाला। मन्द = हल्का। पृथक् = अलग। सौहार्द = स्नेह-भाव। विशिष्ट = विशेष प्रकार का। आघ्राण = सूँघना। आदान-प्रदान = लेना-देना। आमाशय = पेट।

कबीर

[नीचे उद्धृत दोहे तथा शब्द कबीर के हैं। इनमें क्रमशः सन्तोष, धैर्य्य, सामान्य नीति तथा वैराग्य सम्बन्धी उपदेश अत्यन्त सरल किन्तु प्रभात्वोपादक शैली में दिए गए हैं।]

दोहे

[सन्तोष]

चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ वेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सोई साहंसाह॥
माँगन गए सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं।
तिनसे पहिले वे मरे, होत करत जो नाहिं॥
मरि जाऊँ माँगू नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिं न आवे लाज॥

[धैर्य]

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय॥
कबिरा धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय।
टूक एक के कारने, स्वान घरै घर जाय॥

[सामान्य नीति]

काल करै सो आज कर, आज करे सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगो कब्ब॥

कबिरा आप ठगाइए, और न ठगिए कोय ।
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दुख होय ॥

जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोय तू फूल ।
तोहि फूल को फूल हैं, वाको हैं तिरसूल ॥

दुर्बल को न सताइए, जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वास से, लोह भसम हो जाय ॥

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय ॥

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप ॥

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजौं आपना, मुझसा बुरा न होय ॥

दाया दिल में राखिए, तू क्यों निरदय होय ।
साईं के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय ॥

निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय ॥

तिनका कबहूँ न निन्दिए, जो पाँवन तर होय ।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै, पीर घनेरी होय ॥

रूखा सूखा खाइ के, ठंढा पानी पीव ।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावो जीव ॥

कबीर गर्व न कीजिए, एक न हँसिए कोय ।
अजहूँ नाव समुद्र में, क्या जानें क्या होय ॥

माँगन मरन समान है, मति कोइ माँगो भीख ।
माँगन तें मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥
दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥
कबिरा गर्व न कीजिए, काल गहे कर केस ।
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥
हाड़ जरे ज्यों लाकड़ी, केस जरे ज्यों घास ।
सब जग जरता देखि कर, भए कबीर उदास ॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात ।
देखत ही छिप जायगी, ज्यों तारा परभात ॥
आछे दिन पाछे गए, गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करै, चिड़िया चुग गइ खेत ॥
माटी कहै कुम्हार को, तू क्या रूँदै मोहिं ।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं ॥
इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं ॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब ।
हरिअर-हरिअर रूखड़े, इंधन हो गए सब्ब ॥
माली आवत देखि कै, कलियाँ करी पुकार ।
फूली फूली चुनि लई, कालि हमारी बार ॥
आगि लगी आकाश में, झरि झरि परै अँगार ।
कबिरा जरि कंचन भया, काँच भया संसार ॥

सीस उतारै भुँइ धरै, तापर राखै पाँव ।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ ले जाय ॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं ।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं ॥
प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट परगट होय ।
जो पै मुख बोलै नहीं, नयन देत हैं रोय ॥
नयनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय ।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय ॥
जाति न पूछै साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥
जिन ढूँढा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ ॥
या दुनिया में आइकै, छाँड़ि देइ तू ऐंठ ।
लेना होय सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥
पाहन पूजै हरि मिलैं, तो मैं पुजौं पहार ।
तातें ये चाकी भली, पीस खाय संसार ॥
काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥

साँझ पड़े दिन बीतवै, चकवी दीन्ही रोय ।
चल चकवा वा देस को, जहाँ रैन ना होय ॥

शब्द

मन फूला फूला फिरे, जक्त में कैसा नाता रे ॥ टेक ॥
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा ।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा ॥
पेट पकरि के माता रोवै बाँह पकरि कै भाई ।
लपटि झपटि के तिरिया रोवै हंस अकेला जाई ॥
जब लगि माता जीवै रोवै बहिन रोवै दस मासा ।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा ॥
चार गजी चरगजी मँगाया चढ़ा काठ की घोड़ी ।
चारों कोने आग लगाया फूँक दियो जस होरी ॥
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को केस जरै जस घासा ।
सोना ऐसी काया जरि गई कोइ न आयो पासा ॥
घर की तिरिया देखन लागी ढूँढ़ फिरी चहुँ देसा ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो छोड़ो जग की आसा ॥

रहना नहिं, देस बिराना है ॥
यह संसार कागद की पुड़िया बूँद पड़े घुल जाना है ।
यह संसार काँठ की बाड़ी उलझ पुलझ मर जाना है ॥
यह संसार झाड़ औ झाँखर आग लगै बर जाना है ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है ॥

शब्दार्थ

चाह = इच्छा, कामना। मनुवाँ = मन। साहंसाह = सम्राट्। काज = काम। परमारथ = दूसरों की भलाई। मना = मन। टूक = टुकड़ा। स्वान = कुत्ता। परलै = प्रलय, मृत्यु। तिरसूल = तीन फल का भाला, (काँटा = आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दुःख)। हाय = पीड़ा, शाप। आपा = घमंड। हिरदै = हृदय में। आप = परमेश्वर। दाया = दया। निरदय = दयाहीन, कठोर। कीरी = चींटी। कुंजर = हाथी। नियरे = समीप, पास। जो = चाहे। तर = के तले, नीचे। पीर = पीड़ा। घनेरी = घनी, बहुत। बिरानी = पराई। चूपड़ी = चुपड़ी (रोटी)। अजहूँ = अभी भी। माँगन = माँगना। सीख = शिक्षा। केस = बाल। कित = कहाँ। परभात = प्रातःकाल। आछे = अच्छे। पाछे = पीछे। हेत = प्रेम, नेह। रूँदै = कुचलते हो। (तन की) नारी = नाड़ी। हरिअर-हरिअर = हरे-हरे। रूखड़े = वृक्ष। कालि = कल। भुँइ = भूमि। बाड़ी = बाग़। हाट = बाज़ार। साँकरी = तंग। घट = हृदय। जो पै = यद्यपि। बौरा = बावला। ऐंठ = अकड़। पैंठ = बाज़ार। पाहन = पत्थर। तातें = उससे। रैन = रात।

जक्त = जगत। बिर = वीर = भाई। तिरिया = स्त्री। हंस = जीवात्मा। चरगजी = वह कपड़ा जिसका कफ़न बनाया जाता है। जस = जैसे। होरी = होली। काया = शरीर। बिराना = पराया। कागद = कागज़। काँट = काँटा। बाड़ी = बगीचा। उलझ-पुलझ = फँसकर। झाँखर = काँटेदार झाड़ी। सतगुरु = परमात्मा।

सूर

[नीचे उद्धृत पद सूरदास के हैं। ये क्रमशः विनय, कृष्ण-केलि तथा भ्रमरगीत प्रकरणों से लिए गए हैं।]

विनय

चरन कमल बंदौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कछु दरसाई॥
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौं तेहि पाँई॥१॥

कृष्ण-केलि

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वैहै लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत ओंछत नागिनि-सी भुँइ लोटी॥
काचो दूध पिआवत पचि पचि देत न माखन रोटी।
सूर स्याम चिरजिव दोउ भैया हरि हलधर की जोटी॥२॥

मैया मोहिं बड़ो करि दै री।
दूध दही घृत माखन मेवा जो माँगौं सो दै री॥
कछू हवस राखै जिनि मेरी जोइ जोइ मोहिँ रुचै री।
रंगभूमि में कंस पछारौं कहौं कहाँ लौं मैं री॥
सूरदास स्वामी की लीला मथुरा बसि खोजै री।
सुंदर स्याम हँसत जननी सों नंद बबा की पैरी॥३॥

चंद खिलौना लैहों मैया मेरी चंद खिलौना लैहौं ।
धौरी को पय पान न करिहौं, बेनी सिर न गुथैहौं ॥
मोतिन माल न धरिहौं उर पै, तेरो गोद न ऐहौं ।
लाल कहैहौं नंद बबा को, तेरो सुत न कहैहौं ॥
कान लाय कछु कहति जसोदा, दाउहिं नाहिं सुनैहौं ।
चंदा हू ते अति सुंदर तोहि, नवल दुलहिया ब्यैहौं ॥
तेरी सौंह मेरी सुन मैया, अबही ब्याहन जैहौं ।
सूरदास सब सखा बराती, नूतन मंगल गैहौं ॥४॥

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसों कहत मोल को लीनो तोही जसुमति कब जायो ॥
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तात ॥
गोरे नंद जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर ।
चुटुकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर ॥
तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै ।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत ।
सूरस्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत ॥५॥

मैया मैं न चरैहों गाई ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरो पाँइ पिराई ॥
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहिं अपनी सौंह दिवाई ।
यह सुनि सुनि जसुमति ग्वालन कों गारी देत रिसाई ॥

मैं पठवति अपने लरिका कों आवै मन बहराई ।
सूर स्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाई ॥६॥

भ्रमर-गीत

ऋँखिया हरि दरसन की भूखी ।
कैसे रहैं रूप रस राँची ये बतियाँ सुनि रूखी ॥
अवधि गनत इक टक मग जोवत तब एती नहिं झूँखी ।
अब इन जोग सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी ॥
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी ।
सूर सिकत हठि नाव चलाओ ये सरिता हैं सूखी ॥७॥

उर में माखनचोर गड़े ।
अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधो तिरछै ह्वै जु अड़े ।
यदपि अहीर जसोदानंदन तदपि न जात छँड़े ।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहिं न लगत बड़े ॥
को बसुदेव देवकी है को ना जानैं औं बूझैं ।
सूर स्यामसुंदर बिनु देखे और न कोऊ सूझैं ॥८॥

ऊधो ब्रज में पैठ करी ।
यह निरगुन निरमूल गाँठरी अब किन करहु खरी ॥
नफा जानि कै ह्याँ ले आये सबै बस्तु अँकरी ।
यह सौदा तुम ह्वाँ लै बेंचौ जहाँ बड़ी नगरी ॥
हम ग्वालिन गोरस दधि बेंचौ लेहि अबै सबरी ।
सूर यहाँ कोउ गाहक नाहीं देखियत गरे परी ॥९॥

शब्दार्थ

(१) राई = राजा। पंगु = लँगड़ा। मूक = गूँगा। रंक = कँगाल, अत्यन्त निर्धन। पाँई = पैर, चरण।

(२) अजहूँ = अभी तक। बल = बलराम। बेनी = चोटी। ह्वैहै = हो जायगी। काढ़त = खोलते हुए। गुहत = गूँथते हुए। ओंछत = पोंछते हुए। भुँई = भूमि पर। पचि पचि = ज़बरदस्ती। जोटी = जोड़ी। (३) हवस = इच्छा। जिनि = मत, नहीं। बबा = पिता। पैरी = ड्योढ़ी। (४) लैहों = लूँगा। धौरी = सफ़ेद। पय = दूध। उर = छाती। दाउहिं = बलराम को। नवल = नई। सौंह = सौगंध। (५) रिस = क्रोध, गुस्सा। तात = पिता। कत = क्यों। सिखै देत = सिखाता है। बलबीर = बलराम। मोही को = मुझ ही को। खीझै = गुस्सा करती है। रीझै = प्रसन्न होती है। बलभद्र = बलराम। चवाई = निन्दा करनेवाला। धूत = धूर्त्त। गोधन = गायें। सौं = सौगन्ध। (६) सिगरे = सब। पिराई = दर्द करता है। पत्याहि = विश्वास करती है। रिसाई = क्रोध करके। पठवति = भेजती हूँ। रिंगाई = चला-चलाकर।

(७) राँची = अनुरक्त। मग जोवत = मार्ग देखा करती थीं। झूँखी = पछताई। दूखी = दुःखित हुईं। बारक = एक बार। पतूखी = पत्ते का दोना। सिकत = बालू में। सरिता = नदियाँ। (८) कैसेहु = किसी भी प्रकार। ऊधो = उद्धव। वै = वे। न जात छँड़े = नहीं छोड़े जाते। (९) पैंठ = दुकान। निरगुन गाँठरी = निर्गुण ब्रह्म की गठरी।

निरमूल = निर्मूल, बहुमूल्य । किन = क्या (सं० किन्तु) । करहु खरी = बेचकर दाम खरे करते हो । अँकरी = महँगी । गोरस = दूध । सबरी = कुल । गरे परी = यह गठरी तो गले पड़ी प्रतीत होती है ।

तुलसी दास

[नीचे उद्धृत चौपाइयाँ तथा दोहे तुलसी दास के हैं । इनमें क्रमशः 'वर्षाकाल' तथा 'शरत्काल' का वर्णन और सामान्य नीति सम्बन्धी अत्यन्त सुन्दर एवं उपदेशपूर्ण उक्तियाँ दी गई हैं ।]

वर्षाकाल

[चौपाई]

बरसा काल मेघ नभ छाए । गर्जत लागत परम सुहाए ।
दामिनि दमकि रही घन माहीं । खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं ।
बरषहिं जलद भूमि नियराए । जथा नवहिं बुध विद्या पाए ।
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसें । खल के वचन संत सह जैसें ।
छुद्र नदी भरि चली तोराई । जस थोरेहु धन खल इतराई ।
सिमिट सिमिट जल भरहि तलावा । जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा ।
दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई । बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ।
आक जवास पात बिनु भयऊ । जस सुराज खल उद्यम गयऊ ।

खोजत कतहुँ मिलै नहिं धूरी। करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी।
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दंभिन कर मिला समाजा।
ऊसर बरषै तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा।
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रियगन उपजें ग्याना।

[दोहा]

कबहुँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं॥
कबहुँ दिवस महुँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसै उपजै ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग॥

शरत्काल

[चौपाई]

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई।
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषाकृत प्रगट बुढ़ाई।
उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोभहिं सोखै संतोषा।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी।
जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए।
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी।
जल संकोच बिकल भै मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना।
बिन घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा।

[दोहा]

चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहिं आस्रमी चारि।

[चौपाई]

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरिसरन न एकौ बाधा।
फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसे।
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुरजन पर संपति देखी।
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहै न संकर द्रोही।
सरदातप निसि ससि अपहरई। संतदरस जिमि पातक टरई।
मसकदंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किए कुल नासा।

[दोहा]

भूमि जीव संकुल रहे, गए सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिलें जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ।

नीति के दोहे

तुलसी मीठे बचन सें, सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन यह मंत्र है, परिहरु बचन कठोर ॥१॥
तुलसी संत सुअंबु तरु, फूलि फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत ॥२॥
काम क्रोध मद लोभ को, जौलों मन में खान।
तौलों पंडित मूरखौ, तुलसी एक समान ॥३॥

तौ लगि योगी जगत गुरु, जौ लगि रहत निरास।
जब आसा मन में जगी, जग गुरु योगी दास ॥४॥
दुर्जन दर्पन सम सदा, करि देखो हिय गौर।
सन्मुख की गति और है, विमुख भए पर और ॥५॥
तुलसी जो कीरति चहहिं, पर कीरति को खोइ।
तिनके मुँह मसि लागि हैं, मुए न मिटि हैं धोइ ॥६॥
मंत्री गुरु अरु वैद्य जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राजधर्म तन तीन कर, होइ बेगिही नास ॥७॥
मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान को एक।
पाले पोसे सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥८॥
तुलसी पावस के समै, धरी कोकिला मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमें पूछिहैं कौन ॥९॥
तुलसी काया खेत है, मनसा भए किसान।
पाप पुराय दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान ॥१०॥
आवत ही हरषे नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइए, कंचन बरसे मेह ॥११॥
तुलसी कबहुँ न त्यागिए, अपने कुल की रीति।
लायक ही सो कीजिए, ब्याह बैर अरु प्रीति ॥१२॥
जगतें रहु छत्तीस ह्वै, रामचरन छत्तीन।
तुलसी देखु विचारि हिय, है यह मतौ प्रवीन ॥१३॥
रैन को भूषण इन्दु है, दिवस को भूषण भान।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान ॥१४॥

शब्दार्थ

परम = अत्यन्त। सुहाए = सुन्दर। दामिनि = बिजली। घन = बादल। थिर = स्थिर। जलद = बादल। बुध = विद्वान् लोग। इतराई = इतराकर, अकड़कर। पहि = पास। दादुर = मेढ़क। बटु = विद्यार्थी। आक जवास = विशेष प्रकार के पौधों के नाम हैं। समुदाई = समूह। सुराज = अच्छा राज्य। खद्योत = जुगनू। दंभिनकर = पाखंडी लोगों का। कामा = कामवासना। मारुत = वायु। बिलाहिं = लुप्त हो जाते हैं। नसाहिं = नष्ट हो जाते हैं। निबिड़ = घना। पतंग = सूर्य।

बिगत = बीत गई। कास = एक प्रकार की घास। अगस्त = एक तारा, इसके उदित होने पर मार्ग आदि का जल सूख जाता है। सरिता = नदी। सर = तालाब। सोह = शोभा देता है। गत मद मोहा = मोह और अहंकार से रहित। खंजन = पक्षीविशेष। सुकृत = पुण्य। रेनु = धूलि। असि = इस प्रकार। धरनी = पृथ्वी। निपुन = चतुर। जसि = जैसे। संकोच = कमी। बिकल = व्याकुल। मीना = मछली। अबुध = बुद्धि से हीन। परिहरि = छोड़कर। आसा = आशा। हरषि = प्रसन्न होकर। तापस = तपस्वी। बनिक = व्यापारी। श्रम = अपने अपने आश्रम का विहित कर्म। आस्रमी = ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन चार आश्रमों के लोग। नीर = जल, पानी। अगाधा = बहुत गहरा। निर्गुण ब्रह्म = रूपादि गुणों से रहित ईश्वर। सगुन = रूपादि गुणों से युक्त। चक्रवाक = चकवा पक्षी। पेखी = देखकर। चातक = पक्षीविशेष। तृषा = प्यास। संकर द्रोही = शिव का शत्रु। सरदातप = शरद ऋतु की गरमी। अपहरई = हरता है। पातक = पाप।

मसकदंस = मच्छड़ का काटना । हिमत्रासा = जाड़े के डर से । सदगुरु = सुयोग्य गुरु । संसय = शंका ।

बसीकरन = दूसरों को वश में करनेवाला । परिहरु = छोड़ दो । अंबु = जल । परहेत = दूसरों के लिए । पाहन = पत्थर । जौलों = जबतक । तौ लगि = तब तक । जगत गुरु = संसार का गुरु । निराश = आशा से मुक्त । दास = सेवक । दर्पन = आइना । हिय = हृदय । गौर = ध्यान । सन्मुख = सामने । विमुख = पीछे । कीरति = कीर्ति, यश । मसि = स्याही । बेगिही = शीघ्र ही । पावस = वर्षाकाल । कोकिला = कोयल । काया = शरीर । मनसा = मनसे । लुने = काटता है । निदान = अन्त में । सनेह = स्नेह । कंचन = सोना । मेह = मेघ । रीति = प्रथा । लायक = योग्य । छत्तीस = न्यारा, अलग । छत्तीन = लीन होकर, मिलकर । मतौ = मत, विचार । प्रवीन = चतुर, पटु । रैन = रात । भूषन = गहना । इन्दु = चाँद, चन्द्रमा । भान = सूर्य ।

रहीम

[नीचे उद्धृत दोहे और सोरठे अब्दुर्रहीम खाँ 'ख़ानख़ानाँ' के हैं । इनमें कवि ने सामान्य नीति के अत्यन्त मार्मिक उपदेश दिए हैं ।]

अमर बेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिए काहि ॥
कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन ।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन ॥

तरुवर फल नहिं खात है, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान॥
थोथे बादर क्वाँर के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भए, करै पाछली बात॥
दादुर, मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माँहि।
रहिमन चातक रटनि हू, सरवर को कोउ नाहिं॥
दीन सबल को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय॥
दुरदिन परे रहीम कहि, दुर थल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि॥
दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसन्त के माहिं॥
धन थोरो इज्जत बड़ी, कह रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न माँह समात॥
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जिअत कंज तजि अनत बसि, कहा भौंर को आय॥
बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथी हहरि कै, दयो दाँत द्वै काढ़ि॥
भलो भयो घर ते छुट्यो, हंस्यो सीस परिखेत।
काके काके नवत हम, अपन पेट के हेत॥
भार झोंकि भार में, रहिमन उतरे पार।
पै बूड़े मँझधार में, जिनके सिर पर भार॥

यह रहीम निज संग लै, जन मन जगत न कोय ।
बैर, प्रीति, अभ्यास, जस, होत, होत ही होय ॥
रहिमन अती न कीजिए, गहि रहिए निज कानि ।
सैंजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि ॥
रहिमन अब वे बिरछ कहँ, जिनकी छाँह गँभीर ।
बागन बिच बिच देखिअत, सेहुड़, कुंज, करीर ॥
रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाय ।
बधिक बधै मृग बान सों, रुधिरै देत बताय ॥
रहिमन आँटा के लगे, बाजत है दिन राति ।
घिउ शक्कर जे खात हैं, तिनकी कहा बिसाति ॥
रहिमन कठिन चिताहुते, चिंता को चित चेत ।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत ॥
रहिमन करि सम बल नहीं, मानत प्रभु की धाक ।
दाँत दिखावत दीन ह्वै, चलत घिसावत नाक ॥
रहिमन कहत सुपेट सों, क्यों न भयो तू पीठ ।
रीते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ ॥
रहिमन गली है साँकरी, दूजो ना ठहराहि ।
आपु अहै तौ हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहि ॥
रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ ॥
रहिमन तब लगि ठहरिए, दान मान सनमान ।
घटत मान देखिए जबहिं, तुरतहि करिय पयान ॥

रहिमन निज संपति बिना, कोउ न बिपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को, नहिं रबि सकै बचाय॥
रहिमन लाख भली करो, अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पिअत हूँ, साँप सहज धरि खाय॥
रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम, जस, दान।
भू पर जनम वृथा धरै, पशु बिनु पूँछ बिषान॥
रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल नहीं, भीतर फाँकें तीन॥
रहिमन बिपदाहू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय॥
समय लाभ सम लाभ नहिं, समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी, समय चूक की हूक॥
होय न जाकी छाँह ढिग, फल रहीम अति दूर।
बढ़ि हू सो बिनु काज ही, जैसे तार खजूर॥
ओछे को सतसंग, रहिमन तजहु अँगार ज्यों।
तातो जारै अंग, सीरो पै कारो लगै॥
रहिमन नीर पखान, बूड़ै पै सीझै नहीं।
तैसे मूरख ज्ञान, बूझै पै सूझै नहीं॥
धन दारा अरु सुतन में, रहत लगाए चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिन कर मित्त॥
कहि रहीम धन बढ़ि घटे, जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात॥

जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय।
जो जल उमँगै पार ते, सो रहीम बहि जाय॥
जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन कर, स्वान स्वाद सों खात॥
दीरघ दोहा अरथ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुण्डली, सिमिटि कूदि चढ़ि जाहिं॥
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥
धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥
पावस देखि रहीम मन, कोयल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हमको पूछत कौन॥
प्रीतम छबि नैनन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय॥
मन से कहाँ रहीम प्रभु, दृग सों कहाँ दिवान।
देखि दृगन जो आदरैं, मन तेहि हाथ बिकान॥
मुकता कर, करपूर कर, चातक जीवन जोय।
एतो बड़ो रहीम जल, ब्याल बदन बिष होय॥
मुनिनारी पाषान ही, कपि पसु गुह मातंग।
तीनों तारे रामजू, तीनों मेरे अंग॥
रहिमन या तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़ि जान दै, गरुए राखि बटोर॥

लोहे की न लोहार की, रहिमन कही बिचार।
जो हनि मारै सीस में, ताही की तलवार॥
चिन्ता बुद्धि परेखिए, टोटे परख त्रियाहि।
सगे कुबेला परखिए, ठाकुर गुनो कि आहि॥
जहाँ गाँठ तहँ रह नहीं, यह रहीम जग जोय।
मड़ए तर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय॥
जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह॥
जो सुलगे ते बुझि गए, बुझे ते सुलगे नाहिं।
रहिमन दाहे प्रेम के, बुझि बुझि कै सुलगाहिं॥
रहिमन अँसुवा नैन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहि देई॥
रहिमन खोटी आदि की, सो परनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै, कज्जल बमन कराय॥
रहिमन ठठरी धूरि की, रही पवन ते पूरि।
गाँठ जुक्ति की खुलि गई, अंत धूरि को धूरि॥
रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहै कोय॥
अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे सों तौ जग नहीं, झूठे मिलैं न राम॥
अमरत ऐसे बचन में, रहिमन रिस की गाँस।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस॥

आप न काहू काम के, डार पात फल फूल।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन पेड़ बबूल॥
ए रहीम दर-दर फिरहिं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो, यारी छोड़िए, वै रहीम अब नाहिं॥
अंजन दियो तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सों हरि लख्यो, रहिमन बलि बलि जाय॥
कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति-कसौटी जे कसे, सोई साँचे मीत॥
कहु रहीम केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय॥
कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग॥
कागद को सो पूतरा, सहजहि में घुरि जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खींचत बाय॥
कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलनि सों बैर।
रहिमन बसि सागर विषे, करत मगर सों बैर॥
खीरा सिर तें काटिए, मलियत नमक लगाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत इहै सजाय॥
खैर, खून, खाँसी, खुशी, बैर, प्रीति मदपान।
रहिमन दाबे ना दबे, जानत सकल जहान॥
जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिन, रवि नाहिंन हित होय॥

जे गरीब पै हित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई-जोग॥

जे रहीम बिधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चंद्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढ़ि॥

जेहि रहीम तन मन लियो, कियो हियो बिच भौन।
तासों सुख-दुख कहन की, रही बात अब कौन॥

जैसी तुम हम सों करी, करी करी जो तीर।
बाढ़े दिन के मीत हौ, गाढ़े दिन रघुबीर॥

जो मरजाद चली सदा, सोई तौ ठहराय।
जो जल उमगै पार तें, सो रहीम बहि जाय॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥

जो रहीम गति दीप की, कुल कुपूत-गति सोय।
बारे उजिआरो लगै, बढ़े अँधेरो होय॥

जो बिषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत बमन करि, स्वान स्वाद सों खात॥

जासों ही कछु पाइए, कीजै ताकी आस।
रीते सरवर पर गए, कैसे बुझै पियास॥

दिव्य दीनता के रसहिं, का जानै जग अंधु।
भली बिचारी दीनता, दीनबंधु से बंधु॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं बित-हानि को, जो न होय हित-हानि॥

स

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पसु से अधिक, रीझेहु कछू न देत॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका मो मोल॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय॥

भावी काहू ना दही, भावी-दह भगवान।
भावी ऐसी प्रबल है, कहि रहीम यह जान॥

भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिरि ते भूमि लौं, लखौ तौ एकै रूप॥

मथत मथत माखन रहे, दही मही बिलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परै ठहराय॥

यह न रहीम सराहिए, देन-लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी लाइए, हारि होय कै जीत॥

यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग रह साथ।
उवत चंद जेहि भाँति सों, अथवत ताही भाँति॥

रहिमन उजरी प्रकृति को, नहीं नीच को संग।
करिया बासन कर गहे, कारखि लागत अंग॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे-चाटे स्वान के, दुहू भाँति बिपरीति॥

कहु रहीम का करि सकै, ज्वारी, चोर, लबार।
जो पति राखनहार है, माखन-चाखनहार॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगि है देर॥
रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तौ कहि भीतर रही, जूती खात कपाल॥
रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचान।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जान॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तलवारि॥
रहिमन नीचन संग वसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि॥
रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरैं, मोती, मानुष, चून॥
रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तौ जाहु बचाय।
पाँयन बेड़ी परत है, ढोल बजाय-बजाय॥
रहिमन बहु भेषज करत, ब्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ॥
रहिमन बात अगम्य की, कहन सुनन की नाहिं।
जे जानत ते कहत नहिं, कहत ते जानत नाहिं॥
रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तपै तरैयनि खोय॥
रहिमन रिस को छाँड़ि कै, करो गरीबी भेस।
मीठो बोलो, नै चलो, सबै तुम्हारो देश॥

रहिमन विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान ।
भू पर जन्म वृथा धरै, पशु बिनु पूँछ बिषान ।।
रहिमन ते नर मरि चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं ।
उनतें पहिले वै मरे, जिन मुख निकसति नाहिं ।।
राम न जाते हरिन संग, सीय न रावन साथ ।
जो रहीम भावी कतहुँ, होति आपुने हाथ ।।
राम नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा में हानि ।
कहि रहीम क्यों मानिहै, जम के किंकर कानि ।।
बरु रहीम कानन भलो, बास करिय फल भोग ।
बंधु मध्य धनहीन ह्वै, बसिबो उचित न योग ।।
वे रहीम नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग ।
बाँटनवारे को लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ।।
सदा नगारा कूच का, बाजत आठों जाम ।
रहिमन या जग आइ कैं, को करि रहा मुकाम ।।
समय दसा कुल देखि कैं, सबै करत सनमान ।
रहिमन दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ।।
सरवर के खग एक से, बाढ़त प्रीति न धीम ।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ।।
सर सूखे पंछी उड़ैं, औरे सरन समाहिं ।
दीन मीन बिन पंख के, कहु रहीम कहँ जाहिं ।।
सौदा करो सो करि चलो, रहिमन याही बाट ।
फिरि सौदा पैहो नहीं, दूरि जान है बाट ।।

संतत संपति जानि कैं, सबको सब कोउ देत।
दीनबंधु विनु दीन की, को रहीम सुधि लेत॥

सीत हरत, तम हरत नित, भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा, जो घटि लखै उलूक॥

हरि रहीम ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
खैंचि आपनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर॥

माँगे मुकुरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
माँगत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ॥

रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पियावत मान बिन।
जो बिष देय बुलाय, प्रेमसहित मरिबो भलो॥

धनि रहीम जल ताल को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन बिगरे दूध को, मथे न माखन होय॥

कोउ रहीम जनि काहु के, द्वार गए पछिताय।
संपति के सब जात हैं, बिपति सबै लै जाय॥

काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहेब चारा देइ॥

सबको सब कोऊ करै, कै सलाम कै राम।
हित रहीम तब जानिए, जब कछु अटकै काम॥

धन दारा अरु सुतन सों, रहत लगाए चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिन को मित्त॥

जे गरीब को आदरैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग॥

फरजी साह न ह्वै सकै, गति टेढ़ी तासीर।
रहिमन सूधी चाल तें, प्यादा होत वजीर॥

छिमा बड़ेन को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकास लौं, छुटो न बावन नाम॥

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिं।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिं॥

शब्दार्थ

अमर बेलि = अमर बेल (अमर लता)। कदली = केला। भुजंग = साँप। सँचहि = सञ्चित करते हैं। सुजान = सज्जन। थोथे = जल से खाली। घहरात = गड़गड़ाते हैं। सदृश = समान। लखत है = देखता है। दीनबंधु = ईश्वर। दुरथल = दूर जगह। हूजत = हो जाते हैं। बिछुरत = अलग होने पर। कंज = कमल। भाव = प्रीति। हहरिकै = भय से काँपकर। नवत = झुकते हैं। अती = सीमा का उल्लंघन। सैंजन = एक प्रकार का वृक्ष है। बिरछ = वृक्ष। गँभीर = घनी। असमय = विपत्ति का समय। हित = मित्र। अनहित = शत्रु। रुधिरै = खून। बाजत है = (मृदङ्ग) बजता है। बिसाति = मजाल, शक्ति। करि = हाथी। घिसावत = रगड़ता है। रीते = खाली रहने पर। अनरीते = चोरी आदि

पाप । दीठ = दृष्टि। साँकरी = पतली । पयान = प्रस्थान। जलज = कमल। रवि = सूर्य । भली = भलाई । अगुनी = बुरे गुणवाला । राग = गीत । संगीत = बाजा । पथ = दूध । वृथा = व्यर्थ । विषान = सींग । रेत = बालू। चूक = खो देना । हूक = पीड़ा। ढिग = पास । सतसंग = साथ । तातो = गर्म, जलता हुआ । सीरो = ठंढा, बुझा हुआ । पै = पीछे, फिर । कारो = काला । नीर = पानी में । पखान = पत्थर । बूड़ै = डूब जाता है । सीझै नहीं = नर्म नहीं होता । बूझै = जानता है । पै = किन्तु । सूझै नहीं समझता नहीं । मरजाद = मर्यादा । पार = किनारा । संतन = महात्मा लोग । स्वान = कुत्ता । वमन = कै, उल्टी । स्वाद सों = स्वाद से । दीर्घ = लम्बे । आखर = अक्षर । आहिं = हैं । कुण्डली = बेंत का गोला । सिमिटि = सिकुड़कर । अघाय = तृप्त होकर । उदधि = समुद्र । वक्ता = बोलनेवाले । छबि = रूप । काल = सर्प । बदन = मुख । छोह = प्रेम । गेह = घर । भेद = रहस्य । गोय = छिपाकर । अठिलैहैं = हँसी उड़ाएँगे । मुसकिल = कठिनाई । गाढ़े = कठिन । राम = भगवान् । अमरत = अमृत । रिस = क्रोध । गाँस = तीर का मुख । निरस = रसहीन । सगे = अपने । केतिक = कितनी । बिहाना = व्यतीत होना । बेर = फलविशेष। केर = केला । कागद = काग़ज़ । पूतरा = पुतली । बाय = वायु, श्वास । सबलनि सौं = बलवानों से । सागरविषे = समुद्र में । सजाय = दण्ड । दाबे = दबाने से । जहान = संसार । वित्त = धन । अंबुज = कमल । दूषण = दोष । दूबरो = दुबला, क्षीण । कूबरो = कुबड़ा, टेढ़ा । नखत = नक्षत्र, तारा । भौन = भवन, घर । कुसंग = बुरी संगति । बारे = बचपन में, जलाने पर । बढ़े = युवा होने पर, बुझ जाने पर । रीते =

खाली। दुरदिन = बुरे दिन। बित-हानि = धन की हानि। हित हानि = मित्र की हानि। नाद = स्वर। रीझेहु = खुश होने पर भी। मो = मेरा। भूप = राजा। गुनिन = गुणवान् लोग। मही = मट्ठा, छाछ। बिलगाय = अलग हो जाता है। सीस = सिर। सराहना = प्रशंसा करना। साँति = शान्ति से। उवत = उगता है। अथवत = अस्त होता है। उजरी = निर्मल। बासन = बरतन। गहे = पकड़ने से। ओछे = नीच। बिपरीति = प्रतिकूल। सरग = स्वर्ग। कपाल = सिर। परबस = शत्रु के वश में। मामिला = मुक़दमा। न डारि दीजिए = मत फेंक दीजिए। पानी = चमक, अभिमान, पानी। भेषज, = दवा। व्याधि = रोग। खग = पक्षी। अगम्य = अज्ञेय। सम = के समान। बापुरो = बेचारा। तरैयनि = तारों को। भावी = होनी। कानन = बन। बाँटनवारे को = पीसनेवाले को। जाम = पहर। मुकाम = डेरा। बाट = बाज़ार, पथ। सुधि = ख़बर। तम = अंधकार। घटि = कम। उलूक = उल्लू पक्षी। सुहाना = अच्छा लगना। अमी = अमृत। अटकै काम = कामपड़े।

बिहारी

[नीचे उद्धृत दोहे कविवर बिहारी लाल के हैं। इसका विषय सामान्य नीति है।]

दोहे

जगत जनायो जिहिं सकल, सो हरि जान्यो नाहिं ।
ज्यों आँखिन सब देखिए, आँखि न देखी जाहिं ॥१॥
दुसह दुराज प्रजान मैं, क्यौं न करै दुख-द्वंद ।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि मावस रवि चंद ॥२॥
को कहि सकै बड़ेन सों, लखे बड़ीयौ भूल ।
दीने दई गुलाब की, इन डारन वे फूल ॥३॥
पटु पाँखैं भखु काँकरे, सदा परेई संग ।
सुखी परेवा जगत मैं, एकै तुही बिहंग ॥४॥
कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय ।
वहि खाये बौराय जग, यहि पाए बौराय ॥५॥
दीरघ साँस न लेइ दुख, सुख साईं मति भूल ।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल ॥६॥
बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चितु खरो डरात ।
ज्यौं निकलंक मयंक लखि, गनैं लोग उतपातु ॥७॥

शब्दार्थ

जगत = संसार । जनायौ = जनाया । जिहिं = जिसमें । सकल = सारा । जान्यो = जाना । ज्यों = जैसे । आँखिन = आँखों के द्वारा । दुसह = दुःख, असहनीय । दुराज = द्विराज्य, दो राजाओं का शासन । दुख-द्वंद = दुःख और संकट अर्थात् घोर कष्ट । मावस = अमावस्या । [नोट—ज्योतिष के अनुसार अमावस्या की रात को सूर्य और चन्द्रमा

दोनों एक ही राशि में रहते हैं।] बड़ेन सों=बड़ों से। लखे=देखकर। बड़ीयौ=बड़ी भी। दीने=दिए हैं। दई=दैव ने, विधाता ने। इन डारन=इन (कँटीली) डालियों पर। वे फूल=वैसे (सुन्दर और कोमल) फूल। पट्ट=पट, वस्त्र। पाँखैं=पंख। भखु=भक्ष्य, भोजन। काँकर=कंकड़। परेई=कबूतरी। परेवा=कबूतर। बिहंग=पक्षी। कनक=सोना। कनक=धतूरा। मादकता=नशा। अधिकाय=अधिक है। वहि=उसे (धतूरे को)। बौराय=पागल हो जाता है। यहि=इसे (सोने को)। दीरघ साँस=लम्बी साँस। लेइ=ले। साईं=ईश्वर। मति=मत। दई दई=दैव-दैव, विधाता-विधाता। दई=दी है। सु=उसको। कबूल=स्वीकृत कर। बुरौ=बुरा व्यक्ति। तजै=छोड़ दे। चितु=चित्त, मन। खरो=बहुत। ज्यों=जैसे। निकलंक=कलंक रहित। मयंक=चन्द्रमा। लखि=देख कर। गनैं=गिनते हैं। उतपातु=उपद्रव (उपद्रव-सूचक)। [नोट—ज्योतिष के अनुसार चन्द्रमा का काला दाग हलका पड़ जाय अथवा बिलकुल यदि दिखाई न पड़े तो समझना चाहिए कि हिम की वर्षा होगी।]

वृन्द

[नीचे उद्धृत दोहे वृन्द कवि के हैं। इनमें सामान्य नीति तथा लोक-गति का वर्णन किया गया है।]

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस शृंगार न सुहात ॥१॥
अपनी पहुँच विचारि कै, करतब करिए दौर।
तेते पाँव पसारिए, जेती लम्बी सौर ॥२॥
विद्याधन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाए ना मिलै, ज्यों पंखा की पौन ॥३॥
रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।
सबही जानत बढ़त है, वृक्ष बराबर बेल ॥४॥
नयना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत ॥५॥
अति परिचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चंदन देति जराय ॥६॥
भले बुरे सब एक सों, जौ लों बोलत नाहिं।
जानि परतु हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माहिं ॥७॥
सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय ॥८॥
जे चेतन ते क्यों तजें, जाको जासों मोह।
चुँबक के पीछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह ॥९॥
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिर पर परत निसान ॥१०॥
भली करत लागत बिलम, बिलम न बुरे बिचार।
भवन बनावत दिन लगै, ढाहत लगै न बार ॥११॥

कुल सपूत जान्यौ परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥१२॥

कछु कहि नीच न छेड़िए, भलो न बाको संग।
पाथर डारै कीच में, उछरि बिगारै अंग ॥१३॥

ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल, घटत घटत घट जाय ॥१४॥

बुरे लगत सिख के वचन, हिए बिचारो आप।
करुवी भेषज बिन पिए, मिटै न तन की ताप ॥१५॥

जो पावै अति उच्च पद, ताको पतन निदान।
ज्यौं तपि तपि मध्याह्न लौं, अस्त होतु है भान ॥१६॥

मूरख गुन समझै नहीं, तौ न गुनी में चूक।
कहा घट्यो दिन को विभौ, देखै जौ न उलूक ॥१७॥

करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक को, आम कहाँ तें होइ ॥१८॥

क्यों कीजै ऐसो जतन, जाते काज न होय।
परवत पर खोदै कुआँ, कैसे निकसै तोय ॥१९॥

जो जाको गुन जानही, सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है, काग निबौरी हेत ॥२०॥

जाही ते कछु पाइए, करिए ताकी आस।
रीते सरवर पै गए, कैसे बुझत पियास ॥२१॥

दीबो अवसर को भलो, जासो सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम ॥२२॥

फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै व्यौपार।
जैसे हाँड़ी काठ की, चढ़ै न दूजी बार ॥२३॥

हितहू की कहिऐ न तिहिं, जो नर होत अबोध।
ज्यों नकटे को आरसी, होत दिखाए क्रोध ॥२४॥

दुष्ट न छोड़े दुष्टता, कैसे हूँ सुख देत।
धोए हूँ सौ वेर के, काजर होत न सेत ॥२५॥

जाके संग दूषण दुरै, करिए तिहि पहिचानि।
जैसे समझै दूध सब, सुरा अहीरी पानि ॥२६॥

जैसे बन्धन प्रेम को, तैसो बन्ध न और।
काठहि भेदै कमल को, छेद न निकरै भौंर ॥२७॥

बहुत निबल मिल बल करैं, करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी, करी निबन्ध न होय ॥२८॥

साँच झूँठ निर्णय करै, नीति निपुण जो होय।
राजहंस बिन को करै, क्षीर नीर को दोय ॥२९॥

दोषहिं को उमहै गहै, गुण न गहै खल लोक।
पिऐ रुधिर पय ना पिऐ, लागि पयोधर जोंक ॥३०॥

कारज धीरे होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै, केतक सींचो नीर ॥३१॥

छोटे मन में आय हैं, कैसे मोटी बात।
छेरी के मुँह में दियौ, ज्यों पेठा न समात ॥३२॥

सबसों आगे होय कै, कबहुँ न करिए बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात ॥३३॥

ओछे नर के पेट में, रहे न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात ॥३४॥
सरस्वति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों त्यों बढ़ै, बिन खरचे घटि जात ॥३५॥
वह संपति केहि काम की, जिन काहू पै होउ।
नित्य कमावै कष्ट करि, बिलसै औरहि कोउ ॥३६॥

शब्दार्थ

नीकी = अच्छी। अवसर = मौक़ा। बरनत = वर्णन करने पर। युद्ध = लड़ाई। सुहात = अच्छा लगता है। पहुँच = सामर्थ्य। करतब दौर = कर्त्तव्य की दौड़, कार्य। तेते = उतने। सौर = लिहाफ़, चादर। विद्याधन = विद्यारूपी धन। उद्यम = प्रयास, कोशिश। बिना डुलाए = बिना हिलाए। पौन = पवन, हवा। हित = भलाई, लाभ। वृक्ष = पेड़। बेल = लता। नयना = आँख। हिय = हृदय। हेत = हित, प्रेम। अहेत = अहित, द्वेष। निर्मल = स्वच्छ, साफ। आरसी = दर्पण, आइना। अति = अत्यन्त। परिचै = परिचय, जान-पहचान। अरुचि = घृणा। अनादर भाय = निरादर का भाव। मलयागिरि = मलयागिरि दक्षिण का एक पहाड़, जहाँ चन्दन बहुतायत से होता है। भीलनी = भील जाति की स्त्री। एक सों = एक समान। काक = कौवा। पिक = कोयल। सहायक = मदद करनेवाले। सबल = बलवान। निबल = निर्बल, कमज़ोर। जगावत = तेज़ कर देता है। चेतन = चेतनायुक्त, सजीव। तजें = छोड़ें। अचेतन = चेतनाहीन, जड़, निर्जीव। अभ्यास

=साधना । जड़मति = जड़बुद्धिवाला । सुजान = चतुर, ज्ञानी । सिल = शिला = पत्थर । बिलम = विलम्ब, देरी । भवन = मकान । ढाहत = गिराने में । बार = देरी । सपूत = सुपुत्र, अच्छा लड़का । लखि = देखकर । सुभ = शुभ, अच्छा । लच्छन = लक्षण, चिह्न । गात = शरीर पर । बिरवा = वृक्ष । पात = पत्ते । वाको = उसका । पाथर = पत्थर । ओछे = नीच । दीनी = दी है । छीलर = छिछला, उथला । ताल = तालाब । सिख = शिक्षा, उपदेश । करुवी = कड़ुई । भेषज = दवा । तन = शरीर । ताप = ज्वर, बुखार । उच्च = ऊँचा । पद = स्थान । पतन = गिरना । निदान = अन्त में । मध्याह्न = दोपहर । लौं = तक । अस्त होतु है = डूब जाता है । भान = भानु, सूर्य । गुन = गुण । चूक = दोष । विभौ = विभव, वैभव, महत्त्व । उलूक = उल्लू । रोपै = लगावे । बिरवा = पेड़ । जतन = यत्न, कोशिश । जाते = जिससे । काज = काम । परवत = पर्वत, पहाड़ । तोय = पानी । तिहिं = उसको । अंबहि = आम को । निबौरी = नीम का फल । रीता = खाली । दीबो = देना । बरसिबो = बरसना । फेर न ह्वै है = फिर नहीं होगा (चलेगा) । व्यौपार = व्यापार । काठ = लकड़ी । दूजी = दूसरी । हितहु की = भलाई की । अबोध = मूर्ख । क्रोध = गुस्सा । सुख देत = सुख देने पर । सेत = श्वेत, उजला । दूषण = दोष, बुराई । सुरा = शराब । अहीरी = ग्वालिन । पानि = पाणि, हाथ । बंध = बंधन । और = दूसरा । काठहि = काठ को । भेदै = छेद देता है । न निकरै = नहीं निकलता । भौंर = भौंरा । तिनकन = तिनकों की । रसरी = रस्सी । करी = बनाकर । करी = हाथी । निर्णय = निश्चय । निपुण = कुशल । क्षीर = दूध ।

नीर=पानी। उमहै गहै=हर्ष के साथ ग्रहण करते हैं। रुधिर=रक्त, ख़ून। पय=दूध। पयोधर=स्तन। केतक=कितना भी। आय है=आवेगी। मोटी बात=बड़ी बात। छेरी=बकरी। पेठा=सफेद कुम्हड़ा। गारी खात=गालियाँ सुननी पड़ती हैं। सरस्वति=सरस्वती, विद्या की देवी। भंडार=ख़जाना। अपूरब=अपूर्व=अद्भुत। बिलसै=भोग करे। औरहि कोउ=दूसरा कोई।

गिरिधर

[नीचे उद्धृत कुण्डलियाँ गिरिधर कवि की हैं। इनमें नीति और लोक-गति का वर्णन किया गया है।]

कुण्डलियाँ

दौलत पाय न कीजिए, सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को, ठाउँ न रहत निदान॥
ठाउँ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजै।
मीठे बचन सुनाय, बिनय सब ही की कीजै॥
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि, रहत सब ही के दौलत॥१॥

गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रंग, काग सब भए अपावन॥

कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के ॥२॥
साँईं सब संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में, तब लग ताको यार ॥
तब लग ताको यार, यार सँग ही सँग डोलैं।
पैसा रहा न पास, यार मुख से नहिं बोलैं ॥
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोई साँईं ॥३॥
साँईं अवसर के परे, को न सहै दुःखद्वंद्व।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचंद ॥
वै राजा हरिचंद, करै मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी वेष, फिरे अर्जुन बलधारी ॥
कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोईं।
को न करै घटि काम, परे अवसर के साँईं ॥४॥
जाकी धन-धरती हरी, ताहि न लीजै संग।
जो चाहै लेतै बनै, तौ करि डारु अपंग ॥
तौ करि डारु अपंग, भूलि परतीति न कीजै।
सौ-सौ सौंहैं खाय, चित्त में एक न दीजै ॥
कह गिरिधर कविराय, खटक जैहै नहिं ताकी।
अरि समान परिहरिय, हरी धन-धरती जाकी ॥५॥
साँईं अपने भ्रात को, कबहुँ न दीजै त्रास।
पलक दूर नहिं कीजिए, सदा राखिए पास ॥

सौ

सदा राखिए पास, त्रास कबहूँ नहिं दीजै।
त्रास दई लंकेस, ताहि की गति सुनि लीजै॥
कह गिरिधर कविराय, राम सों मिलियो जाई।
पाय बिभीषन राज, लंकपति बाज्यो साँई॥६॥

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, ताही में चित देइ॥
ताही में चित देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसै न कोइ, चित्त में खता न पावै॥
कह गिरिधर कविराय, यहै करु मन परतीती।
आगे को सुख समुझि, होइ बीती सो बीती॥७॥

पानी बाढ्यो नाव में, घर में बाढ्यो दाम।
दोनों हाथ उलीचिए, यहै सयानो काम॥
यहै सयानो काम, राम को सुमिरन कीजै।
परस्वारथ के काज, सीस आगे धरि दीजै॥
कह गिरिधर कविराय, बड़ेन की याही बानी।
चलिए चाल सुचाल, राखिए अपनो पानी॥८॥

बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछिताय।
काज बिगारै आपनो, जग में होति हँसाय॥
जग में होति हँसाय, चित्त में चैन न पावै।
खान पान सन्मान, राग रँग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माहिं, कियो जो बिना बिचारे॥९॥

साईं अपने चित्त की, भूल न कहिए कोइ।
तब लग मन में राखिए, जब लग कारज होइ॥
जब लग कारज होइ, भूलि कबहूँ नहीं कहिए।
दुरजन हँसे न कोय, आप सियरे ह्वै रहिए॥
कह गिरधर कविराय, बात चतुरन के ताँईं।
करतूती कहि देत, आप कहिए नहिं साँईं॥१०॥

साईं समय न चूकिए, यथा शक्ति सन्मान।
को जाने को आइ है, तेरी पौरि प्रमाण॥
तेरी पौरि प्रमाण, समय असमय तकि आवै।
ताको तू मन खोलि, अंक भरि हृदय लगावै॥
कह गिरधर कविराय, सबै यामैं सधि आई।
शीतल जल फल फूल, समय जनि चूको साईं॥११॥

कृतघन कबहुँ न मानहीं, कोटि करै जो कोय॥
सर्बस आगे राखिए, तऊ न अपनो होय।
तऊ न अपनो होय, भले की भली न मानै॥
काम काढ़ि चुप रहै, फेरि तिहि नहिं पहिचानै।
कह गिरिधर कविराय, रहत नितही निर्भय मन॥
मित्र शत्रु सब एक, दाम के लालच कृतघन॥१२॥

शब्दार्थ

दौलत = धन। अभिमान = घमण्ड। चारि = चार। ठाउँ = स्थान पर स्थिर। निदान = अन्त में। लीजै = लीजिए। बिनय =

नम्रता का व्यवहार। सब घट तौलत = सबके हृदयों को तौलकर देखती है कि वे हलके हैं या भारी। पाहुन = अतिथि, मेहमान। निशिदिन = रातदिन अर्थात् दिन। गाहक = लेनेवाले, क़दर करनेवाले। सहस = सहस्र, हजार। लहै = प्राप्तकरता है, लेता है। सबै-सुहावन = सबको सुन्दर लगती है। अपावन = अपवित्र। मन के ठाकुर = मनके राजा, अपने आपको अज्ञानवश बहुत बड़ा आदमी समझने-वाले। साँई = स्वामी, पति। [कहते हैं कि जिन कुण्डलियों के आदि में 'साँई' शब्द आया है वे गिरिधर की स्त्री की बनाई हुई हैं।] मतलब = स्वार्थ। गाँठ में = पास में। तब लग = तबतक। ताको = उसको। यार = मित्र, दोस्त। डोलैं = फिरते हैं। लेखा = देखा। बेगरजी = निःस्वार्थ। बिरला = दुर्लभ। अवसर = मौका। वै = वे = प्रसिद्ध। मरघट = श्मशान। रखवारी = रखवाली। तपस्वी = साधु। वेष = पहनावा। बलधारी = बलवान्। रसोई तपना = भोजन पकाना। घटि काम = छोटा काम। धन = धरती = धन और ज़मीन। अपंग = विवश। भूलि = भूलकर। परतीति = प्रतीति, विश्वास। सौंहैं = शपथें। खटक = आशंका। ताकी = उसकी। अरि = शत्रु। परिहरिय = छोड़ देना चाहिए। भ्रात = भाई। कबहुँ = कभी भी। त्रास = कष्ट। पलक दूर नहीं कीजिए = सामने से नहीं हटाना चाहिए। दई = दिया। लंकेश = रावण। गति = दशा। सों = से। मिलियो = मिल गया। लंकपति = लंका का राजा। बाज्यो = घोषित हुआ। बिसारि दे = भूल जा। आगे की सुधि लेइ = भविष्य की चिन्ता कर। चित देइ = मन लगा। खता = दुःख। करु = कर। बाढ्यो = बढ़ा

हुआ । दाम=धन । उलीचिए=निकाल डालना चाहिए । सयानो=चतुराई का । सुमिरन=स्मरण । पर स्वारथ के काज=परमार्थ के लिए । सीस=सिर । सुचाल=अच्छी चाल । पानी=प्रतिष्ठा । पछिताय=पछताता है । बिगारै=बिगाड़ता है । हँसाय=हँसी । चैन=शान्ति । कछु=कुछ । टरत न टारे=टालने से नहीं टलता । खटकत है=खटकता है । जिय माहिं=मन में । कोइ=किसी से । भूलि=भूलकर भी । कारज=कार्य । सियरे=ठंडे होकर, चुपचाप । के ताईं=के लिए । करतूती=करतूत, काम । यथाशक्ति=अपनी शक्ति के अनुसार । सन्मान=सम्मान करने में । पौरि प्रमाण=ड्योढ़ी की आशा करके । मन खोलि=दिल खोलकर । अंक भरि=आलिंगन करके । सबै या मैं सधि आई=सब कामनाएँ इसी से सिद्ध हो जायँगी । शीतल=ठंढा । कृतघन=कृतघ्न, किए हुए उपकार को न माननेवाला । कोटि=करोड़ । सर्बस=सर्वस्व, सबकुछ । भली=भलाई । काम काढ़ि=काम निकालकर । नितही=सदा । लालच=लालच के कारण ।

बरसात का आख़िर

[प्रकृति वर्षा-ऋतु के बीतने पर जो रूप धारण करती है, श्री रामनरेश त्रिपाठी ने इन पद्यों में, उसका वर्णन किया है ।]

दौलत-सा बरसाकर पानी ।
जैसे जगत-सेठ-सा दानी ॥
बादल अपने-अपने घर को ।
गए सुखी कर दुनिया भर को ॥

कीचड़ का अब काम नहीं है।
कहीं धूल का नाम नहीं है।।
नहीं फिसलने का अब डर है।
नहीं मेढ़कों की टर-टर है।।

तालाबों में निथरा जल है।
जंगल-भर में चहल-पहल है।।
निखर उठे बन बीहड़ सारे।
नदियाँ नद लग गए किनारे।।

उमड़े हुए जोश में नाले।
चलते हैं अब होश सँभाले।।
ख़ाली कई पड़े हैं ऐसे।
दिवालिया हो बैठा जैसे।।

फूल रहे हैं कमल ताल में।
फूल खिले हैं डाल-डाल में।।
भौंरे गूँज रहे हैं ऐसे।
सारंगी बजती हो जैसे।।

खेत बाग़ बन फुलवाड़ी में।
झुरमुट में, झाड़ी-झाड़ी में।।
चिड़ियों की चहचह है ऐसी।
बच्चों की चिलबिल हो जैसी।।

खुश हैं सभी जानवर बन में।
मौज भरी है उनके मन में॥
झुंड-झुंड मिलकर चरते हैं।
आपस में कलोल करते हैं॥

गाते हैं 'बिरहे' चरवाहे।
खेत जोतते हैं हरवाहे॥
खड़े किसान मेड़ पर अपने।
देख रहे हैं सुख के सपने॥

आसमान है साफ़ सजीला।
तंबू तना हुआ है नीला॥
और चाँद का क्या कहना है!
आसमान का वह गहना है॥

शब्दार्थ

जगत-सेठ = संसार का सबसे बड़ा साहूकार। निथरा = साफ़, स्वच्छ। निखरउठे = चमकउठे। बीहड़ = विकट, घने। ताल = तालाब। झुरमुट = पौधों का समूह। मौज = खुशी। कलोल = खेल। बिरहा = अहीरों का एक प्रकार का गीत। चरवाहे = मवेशियों के चरानेवाले। हरवाहे = हल चलानेवाले। मेड़ = खेत के चारों ओर का बाँध। सजीव = सुन्दर।

—

वह देश कौन सा है ?

[इस कविता में श्री रामनरेश त्रिपाठी जी ने मातृभूमि—भारतवर्ष—की विभिन्न विभूतियों का सुन्दर वर्णन किया है ।]

मनमोहनी प्रकृति की जो गोद में बसा है।
सुख स्वर्ग सा जहाँ है, वह देश कौन सा है ।।

जिसका चरण निरन्तर रतनेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन सा है ।।

नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना, वह देश कौन सा है।

जिसके बड़े रसीले फल, कंद, नाज, मेवे।
सब अंग में सजे हैं, वह देश कौन सा है ।।

जिसमें सुगन्धवाले, सुन्दर प्रसून प्यारे।
दिन रात हँस रहे हैं, वह देश कौन सा है ।।

मैदान, गिरि, वनों में हरियालियाँ लहकतीं।
आनन्दमय जहाँ है, वह देश कौन सा है ।।

जिसके अनन्त धन से धरती भरी पड़ी है।
संसार का शिरोमणि, वह देश कौन सा है ।।

सबसे प्रथम जगत में जो सभ्य था यशस्वी।
जगदीश का दुलारा, वह देश कौन सा है॥

पृथ्वी-निवासियों को जिसने प्रथम जगाया।
शिक्षित किया, सुधारा, वह देश कौन सा है॥

जिसमें हुए अलौकिक तत्त्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी।
गौतम, कपिल, पतंजलि, वह देश कौन सा है॥

छोड़ा स्व-राज्य तृणवत् आदेश से पिता के।
वह राम था जहाँपर, वह देश कौन सा है॥

निस्स्वार्थ शुद्ध प्रेमी भाई जहाँ हुए थे।
लक्ष्मण, भरत सरीखे, वह देश कौन सा है॥

देवी पतिव्रता श्री सीता जहाँ हुई थीं।
माता-पिता जगत् का, वह देश कौन सा है॥

आदर्श नर जहाँ पर थे बाल ब्रह्मचारी।
हनुमान, भीष्म, शंकर, वह देश कौन सा है॥

विद्वान, वीर, योगी, गुरु राजनैतिकों का।
श्रीकृष्ण था जहाँ पर, वह देश कौन सा है॥

विजयी बली जहाँ के बेजोड़ सूरमा थे।
गुरु द्रोण, भीम, अर्जुन, वह देश कौन सा है॥

जिसमें दधीचि दानी, हरिचन्द्र, कर्ण-से थे।
सब लोक का हितैषी, वह देश कौन सा है॥

बाल्मीकि, व्यास ऐसे जिसमें महान कवि थे।
श्री कालिदासवाला, वह देश कौन सा है॥

निष्पक्ष न्यायकारी जन जा पढ़े-लिखे हैं।
वे सब बता सकेंगे, वह देश कौन सा है॥

चालीस कोटि भाई, सेवक, सपूत, जिसके।
'भारत' सिवाय दूजा, वह देश कौन सा है॥

शब्दार्थ

मनमोहनी = मन को मुग्ध करनेवाली। चरण = पैर। निरन्तर = सर्वदा। रतनेश = समुद्र। मुकुट = ताज। सुधा = अमृत। सलोना = सुन्दर। रसीले = रसभरे। नाज = अन्न। अंग = हिस्सा। प्रसून = फूल। हँस रहे हैं = खिले हुए हैं। गिरि = पहाड़। लहकती = लहलहाती है। अनन्त = अपार। शिरोमणि = सर्वश्रेष्ठ। यशस्वी = यशवाला। जगदीश = ईश्वर। दुलारा = प्यारा। अलौकिक = अपूर्व। तत्त्वज्ञ = दार्शनिक। ब्रह्मज्ञानी = ब्रह्म को जाननेवाले। स्व-राज्य = अपना राज्य। तृणवत् = तिनके के समान। आदेश = आज्ञा। निस्स्वार्थ = स्वार्थ-रहित। बाल ब्रह्मचारी = बचपन से ही ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करनेवाले। सूरमा = शूर, वीर। हितैषी = भलाई चाहनेवाला। महान = बड़े। निष्पक्ष = पक्षपात-रहित। न्यायकारी = न्यायशील। दूजा = दूसरा।

जन्मभूमि

[इस कविता में पं० कामता प्रसाद गुरु ने जन्मभूमि की महिमा का गान किया है।]

जहाँ जन्म देता हमें है विधाता,
उसी ठौर में चित्त है मोद पाता।
जहाँ हैं हमारे पिता, बन्धु, माता,
उसी भूमि से है हमें सत्य नाता॥

जहाँकी मिली वायु है जीव-दानी,
जहाँका भिदा देह में अन्न-पानी।
भरी जीभ में है जहाँ की सुवानी,
वही जन्म की भूमि है भूमि-रानी॥

लगी धूल थी देह में जो हमारी,
कभी चित्त से हो सकेगी न न्यारी।
बनाती रही देह को जो निरोगी,
किसे धूल ऐसी सुहाती न होगी?

पिला दूध माता हमें पालती है,
हमारे सभी कष्ट भी टालती है।
उसी भाँति है जन्म की भू उदारा,
सदा संकटों में सुतों का सहारा॥

कहीं जा बसें, चाहता जी यही है,
रहे सामने जन्म की जो मही है।
नहीं मूर्ति प्यारी कभी भूलती है,
छटा लोचनों में सदा झूलती है॥

जिसे जन्म की भूमि भाती नहीं है,
जिसे देश की याद आती नहीं है।
कृतघ्नो महा कौन ऐसा मिलेगा ?
उसे देख जी क्या किसी का खिलेगा ?

धनी हो बड़ा या बड़ा नामधारी,
नहीं है जिसे जन्म की भूमि प्यारी,
नच ने मान-सम्पत्ति पाई;
बुरे के बढ़े से हुई क्या भलाई !

जिन्हें जन्म की भूमि का मान होगा,
उन्हें भाइयों का सदा ध्यान होगा।
दशा भाइयों की जिन्होंने न जानी,
कहेगा उन्हें कौन देशाभिमानी ?

कई देश के हेतु जी खो चुके हैं,
अनेकों धनी निर्धनी हो चुके हैं।
कई बुद्धि ही से उसे हैं बढ़ाते,
यथाशक्ति हैं वे ऋणों को चुकाते॥

दयानाथ, ऐसी हमें बुद्धि दीजे,
दशा देश की देख छाती पसीजे।
दुखों से बचाते रहें देश प्यारा,
बनावें उसे सभ्य सत्कर्म द्वारा॥

शब्दार्थ

विधाता = ईश्वर। ठौर = जगह। मोद = आनन्द। सत्य = सच्चा। नाता = सम्बन्ध। जीव-दानी = जीवन देनेवाली। भिदा = व्याप्त हो गया, रम गया। सुबानी = सुन्दर बोल। न्यारी = दूर, अलग। निरोगी = नीरोग, स्वस्थ। टालना = दूर करना। भू = भूमि। उदारा = उदार। संकट = विपत्ति। सुत = लड़का। जी = मन। मही = पृथ्वी। छटा = शोभा। लोचन = आँख। झूलती है = विद्यमान रहती है। कृतघ्नी = कृतघ्न, उपकार को न माननेवाला। महा = महान्, बड़ा। खिलेगा = प्रसन्न होगा। नामधारी = बड़े नामवाला। बढ़े से = बढ़ने से। मान = अभिमान। के हेतु = के लिए। ऋण = कर्जा। दयानाथ = भगवान्। दशा = अवस्था। छाती पसीजे = दया पैदा हो। सत्कर्म = अच्छे काम।

सच्चा साथी

[शेख़ नईमुद्दीन मास्टर ने इस कविता में दर्शाया है कि जीवन में मनुष्य का सच्चा साथी साहस है।]

चिन्ताओं में डूब रहा था
सोच रहा था पग पग में,

निस्सहाय असमर्थ व्यक्ति मैं
क्या कर सकता हूँ जग में !

नहीं मित्र है कोई मेरा
और न कुछ तैयारी है,
जीवन व्यर्थ जायगा मेरा
दुःख इसीका भारी है।

इतने ही में बोला 'साहस'—
"छिः ! ऐसा क्यों कहते हो,
भूल गए क्या मेरे बल को
जो हताश यों होते हो ?

काम कठिन है कौन जगत में
जिसे नहीं मैं कर सकता,
मनःकामना है ऐसी क्या
जो न पूर्ण मैं कर सकता ?

वृथा समय क्यों खोते हो झट
चलो, बढ़ो, आगे आओ,
करना है जो कुछ भी तुमको
जरा मुझे तो बतलाओ।

और सभी साथी हैं झूठे
देंगे सच्चा साथ नहीं,

किन्तु देख लेना तुम मुझको
छोड़ूँगा मैं हाथ नहीं।

दुख में, सुख में, जीवन-पथ में
साथ तुम्हारा मैं दूँगा,
आँधी, पानी, अंधकार में
राह तुम्हें बतलाऊँगा।

निरुत्साह हो जाने पर मैं
तुमको धैर्य बँधाऊँगा,
नव-जीवन संसार करूँगा,
आगे सदा बढ़ाऊँगा।

हनूमान, लक्ष्मण, अंगद को
मैंने ही बलवान किया,
भीम, पार्थ, अभिमन्यु, कर्ण को
मैंने ही सम्मान दिया।

यही नहीं, प्रह्लाद भक्त ने
भी मेरा बल पाया था,
शिवा, प्रताप, महाराणा को
मैंने वीर बनाया था।

मेरे ही कहने से बाबर
काबुल को तज आया था,

दूर देश भारत में आकर
अपना राज्य जमाया था ।
गया हुआ दिल्ली सिंहासन
फिर हुमायुँ ने पाया था,
मेरे ही बल शेरशाह ने
अपना यश फैलाया था।
इसी भाँति यदि तुम भी मुझको
अपना मित्र बनाओगे,
सच कहता हूँ 'शेख' मुझे तुम
सच्चा साथी पाओगे ।"
अतः याद रक्खो यह मित्रो
साहस ही सच्चा बल है,
हतोत्साह हो जाने पर तुम
कहो न 'जीवन' निष्फल है।

शब्दार्थ

निस्सहाय = असहाय । जग = संसार । हताश = निराश । मन:कामना = मन की इच्छा । जीवन-पथ = जीवन-यात्रा । राह = मार्ग, रास्ता । निरुत्साह = उत्साह से रहित । नव-जीवन = नया जीवन, नई शक्ति । पार्थ = अर्जुन । सम्मान = आदर । तज = छोड़कर । जमाया था = स्थापित किया था । सिंहासन = राज गद्दी । हतोत्साह = उत्साह-हीन ।

राही

[इस कविता में श्री बैजनाथ प्रसाद सिनहा 'विस्मृत' अध्यवसायी पुरुष के चरित्र का एक ऐसे यात्री के रूप में वर्णन करते हैं जो अपने पथ में आनेवाली सारी विघ्न-बाधाओं को दृढ़ता के साथ झेलते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना ही जानता है।]

मैं राही हूँ, अपने पथ पर
बढ़ना ही मेरा ध्येय अटल।

मग में हों काँटे बिछे हुए
चाहे हो खुदी हुई खाई,
झाड़ी-झुरमुट हो, जंगल हो
चाहे भीषण दलदल काई।

मुझको कुछ भी परवाह नहीं
नाला-नद हो या पर्वत हो,
सब बाधाओं को ठेल मुझे
केवल चलना भाता भाई!

मुझको जीवन का मोह नहीं
इच्छा न तनिक सुस्ताने की,
तरुवर के नीचे बैठ घड़ी-
भर शीतल छाया पाने की।

जग की मस्ती का अनुभव करने
का मुझको अवकाश नहीं।

है चीज नहीं कोई मेरे ढिग
अपना मन बहलाने की,
पर, ये अभाव मेरे पाँवों की
गति को रोक नहीं सकते।

है लुभा नहीं सकती मेरे
मन को दुनिया की चहलपहल,
मै राही हूँ अपने पथ पर
बढ़ना ही मेरा ध्येय अटल।

हिम्मतवाले की जीत सदा
इस दुनिया में होती, भाई!
जिसने अपनी हिम्मत हारी
उसने फ़ौरन मुँह की खाई।

जो कफ़न|बाँध सिर से चलता
पीता है वही सुधा-प्याली।

रहती उसके ही होठों पर
हरदम सुख की लाली छाई।
मैं राही हूँ अपने पथ पर
बढ़ना ही मेरा ध्येय अटल॥

शब्दार्थ

ध्येय = उद्देश्य। अटल = दृढ़। मग = रास्ता। भीषण = भयानक। बाधाएँ = विघ्न। ठेल = हटाकर। सुस्ताना = विश्राम लेना। तरुवर = छायावाला पेड़। अवकाश = छुट्टी, फ़ुरसत। ढिग = पास। अभाव = विनोद के साधनों का पास में न होना। चहलपहल = प्रलोभन। मुँह की खाना = बुरी हार होना। सिर से कफ़न बाँधना = मरने को तैयार होना। सुधा = अमृत।

अछूत बालक की पुकार

[इस कविता में कवि ने अस्पृश्यता-निवारण की आवश्यकता की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट किया है। एक अछूत बालक मन्दिर के अन्दर जाकर भगवान् के दर्शन करने में भी प्रतिबन्ध पाकर उनसे प्रार्थना करता है कि वे अब संकीर्ण मन्दिरों को छोड़ बाहर चले आवें ताकि अछूत भी उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त कर सकें।]

मंदिर से मैं दूर खड़ा हूँ,
नाथ ! निकट जाऊँ क्योंकर,
सुनता हूँ है मूर्ति मनोहर,
पर दर्शन पाऊँ क्योंकर ?

कहते हैं—"अछूत लोगों को,
दर्शन का अधिकार नहीं,
तेरे लिए देव-मंदिर का,
खुल सकता है द्वार नहीं।"

यदि मैं भीतर आऊँ तो क्या,
नाथ! करोगे मुझपर कोप,
अथवा मेरी छूत के डर से,
इस मंदिर से होगे लोप?

करुणानिधि! क्यों दिया आपने,
मुझ बालक को ऐसा श्राप,
यदि पवित्रता को भी छू दूँ,
तो उसको लग जावे पाप?

इस मंदिर से मैं निराश हो,
घर को लौटा जाता हूँ,
दर्शन-अमृत-अभिलाषा को,
मृगतृष्णावत् पाता हूँ।

हैं संकीर्ण बहुत ये मंदिर,
बहुत कड़े इनके बन्धन,
फिर स्वतंत्र हो महि पर विचरो,
हम भी चरण छुएँ भगवन्।

छोड़ो यह अस्पृश्य-शुद्धता,
मंदिर से बाहर आओ,
बहुत रहे ऊँचे लोगों में,
अब नीचों के घर आओ॥

शब्दार्थ

निकट = पास । द्वार = दरवाज़ा । कोप = क्रोध । लोप होना = लुप्त होना, ग़ायब होना । करुणानिधि = दया के समुद्र, अत्यन्त दयावान् । श्राप = शाप । पवित्रता = पवित्रता की मूर्ति, भगवान् । दर्शन-अमृत-अभिलाषा = दर्शन रूपी अमृत की इच्छा । मृगतृष्णावत् = झूठी आशा के समान । संकीर्ण = संकुचित, अनुदार । बन्धन = नियम । महि = पृथ्वी । चरण = पैर । अस्पृश्य-शुद्धता = ऐसी शुद्धता जिसे छूत लग सकती है ।

एक बूँद

[इस कविता में पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने जल की एक बूँद का उदाहरण देकर पाठकों को शिक्षा दी है कि उन्हें उन्नति के लिए घर छोड़कर बाहर जाने में कभी संकोच या भय नहीं करना चाहिए।]

ज्यों निकलकर बादलों की गोद से ।
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी ॥
सोचने फिर-फिर यही जी में लगी ।
आह ! क्यों घर छोड़कर मैं यों कढ़ी ॥ १ ॥

दैव मेरे भाग में क्या है बदा ।
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में ॥
या जलूँगी गिर अँगारे पर किसी ।
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में ॥ २ ॥

बह गई उस काल एक ऐसी हवा ।
वह समुन्दर-ओर आई अनमनी ॥
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला ।
वह उसी में जा पड़ी, मोती बनी ॥ ३ ॥

लोग यों ही हैं झिझकते सोचते ।
जब कि उनको छोड़ना पड़ता है घर ॥
किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें ।
बूँद-सा कुछ और ही देता है कर ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ज्यों = जैसेही । जी = मन । कढ़ी = बाहर निकली । दैव = ईश्वर । भाग = भाग्य । बदा है = लिखा है । चू पड़ूँगी = गिर पड़ूँगी । समुन्दर-ओर = समुद्र की तरफ़ । अनमनी = खिन्न, उदास । बूँद-सा = जल की बूँद के समान ।

कर्मवीर

[इस कविता में 'हरिऔध' जी ने एक सच्चे कर्मवीर के स्वभाव तथा लक्षणों का विशद वर्णन किया है।]

आज करना है जिसे, करते उसे हैं आज ही।
सोचते कहते हैं जो कुछ, कर दिखाते हैं वही॥
मानते जी की हैं, सुनते हैं सदा सबकी कही।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आपही॥
भूल करके दूसरों का मुँह कभी तकते नहीं।
कौन ऐसा काम है, वे कर जिसे सकते नहीं॥१॥

जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं॥
आज-कल करते हुए, जो दिन गँवाते हैं नहीं।
यत्न करने में कभी जो दिन गँवाते हैं नहीं॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके किए।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिए॥२॥

व्योम को छूते हुए दुर्गम पहाड़ों के शिखर।
वे घने जंगल जहाँ रहता है तम आठो पहर॥
गर्जते जल-राशि की उठती हुई ऊँची लहर।
आग की भय-दायिनी फैली दिशाओं में लवर॥

ये कँपा सकतीं कभी जिसके कलेजे को नहीं।
भूलकर भी वह नहीं नाकाम रहता है कहीं ॥३॥

चिलचिलाती धूप को जो चाँदनी देवें बना।
काम पड़ने पर करें जो शेर का भी सामना ॥
जो कि हँस-हँस के चबा लेते हैं लोहे का चना।
'है कठिन कुछ भी नहीं'—जी में है जिनके यह ठना ॥
कोस कितने भी चलें, पर वे कभी थकते नहीं।
कौन-सी है गाँठ जिसको खोल वे सकते नहीं ॥४॥

काम को आरंभ करके, यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूलकर मुँह मोड़ते ॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहीं तोड़ते।
संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते ॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन।
काँच को करके दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन ॥५॥

पर्वतों को काटकर सड़कें बना देते हैं वे।
सैकड़ों मरुभूमि में नदियाँ बहा देते हैं वे ॥
गर्भ में जल-राशि के बेड़ा चला देते हैं वे।
जंगलों में भी महा मंगल मचा देते हैं वे ॥
भेद नभ-तल का उन्होंने है बहुत बतला दिया।
है उन्होंने ही निकाली तार की सारी क्रिया ॥६॥

सब तरह से आज जितने देश हैं फूले-फले।
बुद्धि, विद्या, धन-विभव के हैं जहाँ डेरे डले॥
वे बनाने से उन्हीं के बन गए इतने भले।
वे सभी हैं हाथ से ऐसे सपूतों के पले॥
लोग जब ऐसे, समय पाकर जनम लेंगे कभी।
देश की औ' जाति की होगी भलाई भी तभी॥७॥

शब्दार्थ

दूसरों की मदद चाहना = दूसरों का मुँह तकना। यों = इसी तरह, व्यर्थ। आज-कल करना = टालमटोल करना। गँवाना = नष्ट करना। नमूना = आदर्श। व्योम = आकाश। दुर्गम = जिनपर जाना कठिन हो। शिखर = चोटी। तम = अंधकार। आठों पहर = दिन-रात। [नोट—३ घंटे का १ पहर होता है।] जल-राशि = समुद्र। भय-दायिनी = डरानेवाली, भयंकर। लवर = लपट। कलेजा = हृदय। नाकाम = असफल। चिलचिलाती = तेज़, सख्त। लोहे के चने चबाना = कठिन काम को सम्पन्न करना। ठना है = दृढ़ निश्चय है। गाँठ = गुत्थी, उलझन, समस्या। यों = इसी तरह, अधूरा। गगन = आकाश। बातों से गगन के फूल तोड़ना = ऐसी बातें कहना जिसका करना असम्भव हो। संपदा = सम्पत्ति। कारबन = कोयला। काँच = शीशा। रतन = रत्न। मरुभूमि = रेगिस्तान। भेद = रहस्य। नभ-तल = आकाश-मण्डल। धन-विभव = धन-दौलत।

तारे

[इन पंक्तियों में 'हरिऔध' जी ने रात्रि के अन्धकार-पूर्ण आकाश में चमकते हुए तारों की शोभा का वर्णन किया है ।]

बिखरे मोती न्यारे हैं ।
या चमकीले तारे हैं ।
सुथरी नीली चादर पर,
सुन्दर फूल पसारे हैं ।।

किसी बड़ी अलबेली के,
बड़े छबीले प्यारे हैं ।
या अँधियाली रातों की,
आँखों के ये तारे हैं ।।

नीचे किसी चँदोवे के,
बूटे सजे सँवारे हैं ।
या सुरमई बिछौने में,
टँके अमोल सितारे हैं ।।

सरग-बाग के पौधों के,
दमक रहे फल सारे हैं ।
या है दहकी आग कहीं,
फैल रहे अंगारे हैं ।।

दिये देवताओं के घर के,
जगते जोत सहारे हैं।

या आकाश-विमानों पर,
बैठे देव दुलारे हैं॥

शब्दार्थ

न्यारे = अनोखे। सुथरी = स्वच्छ, साफ़। पसारे हैं = फैलाए हैं। अलबेली = सुन्दर (स्त्री)। छबीले = सुंदर। चँदोवा = चँदोया, शामियाना। सुरमई = सुरमे के रंग का, काला। सितारा = सोने या चाँदी की गोल बिंदी। सरग-बाग = स्वर्ग की फुलवाड़ी। दमकना = चमकना। दहकना = जलना। दिया = दीया। जगना = जलना। जोत = ज्योति, प्रकाश। आकाश-विमान = आकाश में उड़नेवाले विमान। दुलारा = प्यारा। देव दुलारे = देवताओं के प्यारे बच्चे।

फूल और काँटा

[इस कविता में 'हरिऔध' जी ने फूल और काँटे का उदाहरण देकर यह दिखलाया है कि किसी का बड़प्पन उसके जन्म पर नहीं, प्रत्युत कर्म पर निर्भर है।]

हैं जनम लेते जगह में एक ही।
एक ही पौधा उन्हें है पालता॥

रात में उनपर चमकता चाँद भी।
एक ही सी चाँदनी है डालता ॥१॥

मेह उनपर है बरसता एक सा।
एक सी उनपर हवाएँ हैं बही ॥
पर सदा ही यह दिखाता है हमें।
ढंग उनके एक से होते नहीं ॥२॥
छेदकर काँटा किसी की उँगलियाँ।
फाड़ देता है किसी का वर वसन ॥
प्यार-डूबीं तितलियों का पर कतर।
भौंर का है बेध देता श्याम तन ॥३॥
फूल लेकर तितलियों को गोद में।
भौंर को अपना अनूठा रस पिला ॥
निज सुगंधों औ' निराले रंग से।
है सदा देता कली जी की खिला ॥४॥
है खटकता एक सबकी आँख में।
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर ॥
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे।
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ॥५॥

शब्दार्थ

मेह = मेघ, बादल। ढंग = आचरण। वर वसन = सुन्दर वस्त्र। भौंर = भौंरा। श्याम = काला। तन = शरीर। अनूठा = बढ़िया।

निराला = अद्भुत। जी = मन। आँख में खटकना = बुरा लगना। सोहत = सुन्दर लगना। सुर-सीस पर = देवताओं के सिर पर। कुल = वंश। कसर = कमी।

एक तिनका

[इस पद्य में 'हरिऔध' जी ने यह दिखलाते हुए कि मनुष्य कितना अल्प-शक्ति है, उसे अपने बल पर कदापि गर्व न करने का उपदेश दिया है।]

मैं घमण्डों में भरा ऐंठा हुआ
एक दिन जब था मुँडेरे पर खड़ा।
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ
एक तिनका आँख में मेरी पड़ा॥

मैं झिझक उट्ठा, हुआ बेचैन-सा
लाल होकर आँख भी दुखने लगी।
मूँठ देने लोग कपड़े की लगे
ऐंठ बेचारी दबे-पाँवों भगी॥

जब किसी ढब निकल वह तिनका गया
तब समझ ने यों मुझे ताने दिए—
"ऐंठता तू किसलिए इतना रहा,
एक तिनका है बहुत तेरे लिए"॥

शब्दार्थ

घमण्ड = अभिमान। ऐंठा हुआ = अकड़ा हुआ। मुँडेरा = मुँडेर (पैरापेट)। झिझक उट्ठा = घबरा गया। कपड़े की सूँठ देना = कपड़े की गोली बनाकर सेंकना। दबे-पावों भगी = चुपचाप चली गई। किसी ढब = किसी तरह। समझ = बुद्धि।

ग्राम्य जीवन

[इस कविता में कविवर श्री मैथिली शरण गुप्त ने बतलाया है कि यदि हमारे ग्रामों में केवल शिक्षा का प्रचार और हो जाता तो वे साक्षात् स्वर्ग बन जाते।]

अहा! ग्राम्य जीवन भी क्या है,
क्यों न इसे सबका मन चाहे।
थोड़े में निर्वाह यहाँ है,
ऐसी सुविधा और कहाँ है॥ १॥

यहाँ शहर की बात नहीं है,
अपनी-अपनी घात नहीं है।
आडम्बर का नाम नहीं है,
अनाचार का काम नहीं है॥ २॥

वे रईस सरदार नहीं हैं,
वे मछुए बाज़ार नहीं हैं।
यहाँ गँठकटे चोर नहीं हैं,
तरह-तरह के शोर नहीं हैं॥ ३॥

सीधे-सादे भोले-भाले,
हैं ग्रामीण मनुष्य निराले।
एक दूसरे की ममता है,
सबमें प्रेममयी समता है॥ ४॥

यद्यपि वे काले हैं तन से,
पर अति ही उज्ज्वल हैं मन से।
अपना या ईश्वर का बल है,
अन्तःकरण अतीव सरल है॥ ५॥

प्रायः सबकी सब विभूति है,
पारस्परिक सहानुभूति है।
कुछ भी ईर्ष्या-द्वेष नहीं है,
कहीं कपट का लेश नहीं है॥ ६॥

छोटे से मिट्टी के घर हैं,
लिपे-पुते हैं, स्वच्छ-सुघर हैं।
खपरैलों पर बेलें छाईं,
फूली, फली, हरी मन भाईं॥ ७॥

काशीफल, कुष्मांड कहीं हैं,
कहीं लौकियाँ लटक रही हैं।
है जैसा गुण यहाँ हवा में,
प्राप्त नहीं डाक्टरी दवा में ॥ ८ ॥

सन्ध्या-समय गाँव के बाहर,
होता नन्दन-विपिन निछावर।
श्रम-सहिष्णु सब जन होते हैं,
आलस में न पड़े सोते हैं ॥ ९ ॥

दिन-दिन-भर खेतों में रहकर,
करते रहते काम निरन्तर।
अतिथि कहीं जब आ जाता है,
वह आतिथ्य यहाँ पाता है ॥ १० ॥

ठहराया जाता है ऐसे,
कोई सम्बन्धी हो जैसे।
जगती कहीं ज्ञान की ज्योती,
शिक्षा की यदि कमी न होती ॥ ११ ॥

× × ×

तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते,
पूर्ण शान्ति-रस में सन जाते ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ग्राम्य = गाँवों का। चाहे = पसन्द करे। निर्वाह = गुज़र। सुविधा = सुभीता। घात = धोखेबाज़ी। आडम्बर = दिखावा। अनाचार = कुकर्म। मछुए-बाज़ार = जहाँ मछलियाँ बेचते हैं। गँठकटे = गाँठ काटनेवाले। निराले = अद्भुत। ममता = स्नेह। प्रेममयी = प्रेम युक्त। समता = समानता। तन = शरीर। उज्ज्वल = साफ़। अन्तःकरण = हृदय, दिल। अतीव = अत्यन्त। सरल = सीधा, निश्छल। विभूति = सम्पत्ति। पारस्परिक = एक दूसरे के प्रति। कपट = डाह। लेश = थोड़ा भी। काशीफल = कुम्हड़ा। कुष्मांड = पेठा। नन्दन-विपिन = इन्द्र की पुष्प-वाटिका। श्रम-सहिष्णु = मेहनती। निरन्तर = लगातार। अतिथि = मेहमान। आतिथ्य = आदर-सत्कार। ज्योती = प्रकाश।

स्वर्गीय संगीत

[इस कविता में कविवर श्री मैथिली शरण गुप्तजी ने मनुष्य को सदैव आशा और उत्साह के साथ उद्योग करने का उपदेश दिया है और बताया है कि उद्योग ही से भाग्य का निर्माण होता है। स्वयं भाग्य कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है।]

नर हो, न निराश करो मन को।
कुछ काम करो, कुछ काम करो,
जग में रहके कुछ नाम करो।
यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो,

या

समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो।
कुछ तो उपयुक्त करो तन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥१॥

सँभलो कि सुयोग न जाय चला,
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला?
समझो जग को न निरा सपना,
पथ आप प्रशस्त करो अपना।
अखिलेश्वर हैं अवलंबन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥२॥

निज गौरव का नित ज्ञान रहे,
"हम भी कुछ हैं" यह ध्यान रहे।
सब जाय अभी, पर मान रहे,
मरणोत्तर गुंजित गान रहे।
कुछ हो, न तजो निज साधन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥३॥

प्रभु ने तुमको कर दान किए,
सब वाँछित वस्तु-विधान किए।
तुम प्राप्त करो उनको न अहो,
फिर है किसका यह दोष कहो?
समझो न अलभ्य किसी धन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥४॥

किस गौरव के तुम योग्य नहीं ?
कब कौन तुम्हें सुख भोग्य नहीं ?
जन हो तुम भी जगदीश्वर के,
सब हैं जिसके अपने घर के।
फिर दुर्लभ क्या उसके जन को ?
नर हो, न निराश करो मन को ॥५॥

करके विधिवाद न खेद करो,
निज लक्ष्य निरंतर भेद करो।
बनता बस, उद्यम ही विधि है,
मिलता जिससे सुख का निधि है।
समझो धिक निष्क्रिय जीवन को,
नर हो, न निराश करो मन को ॥६॥

शब्दार्थ

उपयुक्त करो = सफल बनाओ। तन = शरीर। सुयोग = अच्छा अवसर। सदुपाय = शुभ उद्योग। प्रशस्त = अच्छा, दृढ़। अखिलेश्वर = भगवान्। अवलंबन को = सहायता के लिए। स्वत्व = अधिकार-रूपी। निज = अपना। गौरव = महत्व। नित = सदैव। मान = प्रतिष्ठा, इज़्ज़त। मरणोत्तर = मरने के बाद। गुंजित गान रहे = यशगान गूँजता रहे। तजो = छोड़ो। साधन = उपाय। कर = हाथ। वांछित = मनचाही। वस्तु-विधान = वस्तुओं की व्यवस्था। अलभ्य = जो न मिल सके।

भोग्य = भोगने योग्य । जगदीश्वर = परमात्मा । करके विधिवाद = भाग्य को कोसकर । खेद = पश्चात्ताप । लक्ष्य = उद्देश्य, निशाना । निरंतर = सदैव । उद्यम = उद्योग । विधि = भाग्य । निधि = ख़ज़ाना । निष्क्रिय = कर्म-रहित ।

गृहस्थ-गीता

[गृहस्थ-गीता नामक पुस्तक श्री श्रीप्रकाश तथा श्री मैथिलीशरण गुप्त की सम्मिलित रचना है । इसमें गुप्तजी ने श्रीप्रकाश जी के गद्य में लिखे भावों को पद्य का रूप दिया है । प्रस्तुत पंक्तियाँ उसी पुस्तक से ली गई हैं । इनमें आदर्श नागरिक जीवन की आवश्यकता पर बल देते हुए यह दिखलाया गया है कि हमारे देश में इस समय इसका अत्यन्त अभाव है ।]

[१]

जहाँ अनेक एक रहते हैं,
एक अनेक वहाँ है,
सबका सुख जब हुआ हमारा
फिर निज दुःख कहाँ है ?
आए नहीं अमृत पीकर हम,
तो विष भी न पिएँगे,
हम सजीव की भाँति मरेंगे
मरे-मरे न जिएँगे ।

[२]

कुछ कर सकने का साहस ही
अपना बस है नर का,
जब विश्वास नहीं अपना ही,
तब फिर क्या ईश्वर का ?
अपने ही हाथों अपनेको
हमने हाय ! हराया,
कौन कार्य छोटा या खोटा
अपना और पराया।

[३]

पथ में कूड़ा फेंकें तो फिर
घर ही हम क्यों झाड़ें,
अपना और दूसरों का क्यों
आवागमन बिगाड़ें।
अपना पाप पड़ोसी के सिर
जब डाला जाता है
लेकर उसका रोग-दोष वह
वहीं लौट आता है।

[४]

फल चक्खो, पर उसके छिलके
फेंक न दो तुम यों ही,

फिसल गिरोगे तुम्हीं मार्ग में
पैर पड़ेगा ज्यों ही।
प्रथम थूकना सीखो, पीछे
पान भले ही खाओ,
दया करो, हा! निजमुख-रस को
तुम पर-विष न बनाओ।

[५]

मार्ग सभी के लिए एक-सा,
आँख खोलकर चलिए,
नहीं आप ही, लिए और भी
छाता-छड़ी, सँभलिए।
बाधा नहीं चाहते हैं तो
बनिए स्वयं न बाधक,
सज्जनता तो यही कहेगी—
रहिए सबके साधक।

[६]

खोटी नहीं जीविका कोई,
खरे रहें यदि गेही,
छोटे काम जिन्हें कहते हो,
बड़े वस्तुतः वे ही।

कोरी या चमार या धोबी
कौन नहीं निज अंगी ?
महतों से बढ़कर महतर हैं
जन-समाज के संगी।

[७]

हम स्वकार्य-सम्मान करें तो
मान्य क्यों न वह होगा ?
अपनी वृत्ति बिगाड़ आप ही
कब किसने सुख भोगा ?
काम समय पर, दाम समय पर,
सीख यही कहती है,
उभय ओर की शंका हममें
झंका सी रहती है।

[८]

वह महान, जो मार्ग दिखावे
सबको ऊँचे चढ़कर,
कीर्ति छोड़ कर्त्तव्य करे जो
वह उससे भी बढ़कर।
जो नीरव निज धरम निबाहे
वही परम त्यागी है,

रहे अजाना सबका, प्रभु का
माना बड़भागी है।

[९]

कार्य बिना जाने हम उसको
शिर पर ले लेते हैं,
अपनी भूल किन्तु औरों के
मत्थे मढ़ देते हैं।
घास छीलना भी क्या सीखे
बिना कभी आता है,
किसी कर्म का कौशल ही तो
योग कहा जाता है।

[१०]

कुछ को कठिन जानकर, कुछ को
मलिन मानकर छोड़ा,
धीरे-धीरे सब कामों से
हमने हाथ सिकोड़ा।
हुआ यही परिणाम, अकर्मा
हुए और हम हारे,
रक्षायुध तक विदेशियों के
करगत हुए हमारे।

[११]

नहीं नागरिकता आ पाई
व्यसन आ गए उसके,
रसन न आया असन आ गए,
बसन आ गए उसके।
गई साथ ही सहज सरलता
शुद्ध ग्राम-जीवन की,
हुई और भी हानि हमारी
तन की, मन की, धन की।

शब्दार्थ

एक रहते हैं=मिलकर रहते हैं। अनेक=अनेकों के बराबर। आये नहीं...न पिएँगे=यद्यपि हम अमर नहीं हैं तो भी अज्ञानवश अकाल-मृत्यु के शिकार भी नहीं बनेंगे। सजीव=ज़िन्दा, समर्थ। साहस=हिम्मत। विश्वास=भरोसा। खोटा=बुरा। पथ=रास्ता। आवागमन=आना-जाना। रोग-दोष=बीमारी का दुःख। निजमुख-रस को=अपने मुँह के थूक को। पर-विष=दूसरे का विष, ज़हर। मार्ग=रास्ता। बाधा=रुकावट। बाधक=रुकावट डालनेवाला। साधक=सहायक। खोटी=बुरी। खरे=अच्छे। गेही=गृहस्थ। वस्तुतः=वास्तव में। स्वकार्य-सम्मान=अपने काम का आदर। वृत्ति=जीविका, पेशा। सीख=विश्वास (क्रेडिट्)। उभय ओर की=दोनों ओर की। झंका=झंकार, विपरुता। महान=बड़ा। कीर्ति=

यश । नीरव = चुपचाप । परम = बड़ा । बड़भागी = बड़ा भाग्यवान् । कौशल = निपुणता । योग = मुक्ति का मार्ग । मलिन = मैला । परिणाम = फल । अकर्मा = कर्महीन । रक्षायुध = रक्षा के हथियार । करगत हुए = हाथ में चले गए । व्यसन = दुर्गुण, बुराइयाँ । रसन = रस लेना । असन = खाना । वसन = वस्त्र । सहज = स्वाभाविक ।

तब याद तुम्हारी आती है

[इस कविता में कवि ने बताया है कि प्रकृति के विविध मनोहर दृश्यों को देखकर हमें इस जगत के रचयिता की बलात् स्मृति हो आती है ।]

१. जब बहुत सुबह चिड़ियाँ उठकर
कुछ गीत खुशी के गाती हैं ।
कलियाँ दरवाज़े खोल-खोल
जब दुनिया पर मुसकाती हैं ।
ख़ुशबू की लहरें जब घर से
बाहर आ दौड़ लगाती हैं ।
हे जग के सिरजनहार प्रभो !
तब याद तुम्हारी आती है ।

२. जब छम-छम बूँदें गिरती हैं,
बिजली चम-चम कर जाती है ।

मैदानों में बन बाग़ों में
जब हरियाली लहराती है।
जब ठंढी-ठंढी हवा कहीं से
मस्ती ढोकर लाती है।
हे जग के सिरजनहार प्रभो!
तब याद तुम्हारी आती है।

३. चुपचाप चमकते तारों की
महफ़िल जब रात सजाती है।
जब चाँद शान से उठता है
दिल की दुनिया जग जाती है।
कुछ पता नहीं, लेकिन ज़रूर,
वह संदेशा कुछ लाती है।
हे जग के सिरजनहार प्रभो।
तब याद तुम्हारी आती है।

शब्दार्थ

सिरजनहार = बनानेवाले। चम-चम = चमक। लहराना = शोभा देना। महफ़िल = सभा। शान = सजधज।

भक्त की अभिलाषा

[इस कविता में पं० गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने भगवान् के प्रति भक्त की भावनाओं तथा आकांक्षाओं का सुन्दर चित्रण किया है ।]

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ ।
तू है महासागर अगम, मैं एक धारा क्षुद्र हूँ ॥
तू है महानद-तुल्य तो मैं एक बूँद-समान हूँ ।
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ ॥१॥

तू है सुखद ऋतुराज तो मैं एक छोटा फूल हूँ ।
तू है अगर दक्षिण-पवन तो मैं कुसुम की धूल हूँ ॥
तू है सरोवर अमल तो मैं एक उसका मीन हूँ ।
तू है पिता तो पुत्र मैं तव अंक में आसीन हूँ ॥ २ ॥

तू है दया का सिंधु, तो मैं भी दया का पात्र हूँ ।
करुणेश तू है, चाहता मैं नाथ करुणा-मात्र हूँ ॥
तू दीन-बंधु प्रसिद्ध है, मैं दीन से भी दीन हूँ ।
तू नाथ! नाथ अनाथ का, असहाय मैं प्रभु-हीन हूँ ॥३॥

तू जानता मन की दशा, रखता न तुझसे बीच हूँ ।
जो कुछ कि हूँ, तेरा किया हूँ, उच्च हूँ या नीच हूँ ॥
अपना मुझे, अपना समझ, तरना न मुझको अब पड़े ।
तजकर तुझे, यह दास जाकर द्वार अब किसके अड़े ॥४॥

तू है दिवाकर, तो कमल मैं, जलद तू, मैं मोर हूँ।
सब भावनाएँ छोड़कर, अब कर रहा यह शोर हूँ॥
मुझमें समा जा इस तरह, तन-प्राण का जो तौर है।
जिससे न फिर कोई कहे—मैं और हूँ, तू और है॥५॥

शब्दार्थ

विस्तीर्ण = फैला हुआ। क्षुद्र = छोटा। महासागर = बड़ा समुद्र। अगम = अथाह। महानद = बड़ी नदी। ऋतुराज = वसंतऋतु। कुसुम = फूल। अमल = निर्मल। मीन = मछली। अंक = गोद। आसीन = बैठा हुआ। सिंधु = समुद्र। पात्र = अधिकारी। करुणेश = करुणा का स्वामी। करुणा-मात्र = केवल करुणा। असहाय = जिसका कोई सहायक न हो। प्रभु-हीन = जिसका कोई मालिक न हो। बीच = भेद। तपना = दुःख भोगना। दिवाकर = सूर्य। जलद = बादल भावनाएँ = अभिलाषाएँ। तन = शरीर। तौर = तरीका।

चाह

[श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'भारतीय आत्मा' ने इन पंक्तियों में मातृभूमि की सेवा में जीवन अर्पण करनेवाले देश-सेवकों के प्रति श्रद्धा प्रकट की है।]

चाह नहीं, मैं सुर-बाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ।

चाह नहीं, प्रेमी माला में बिंध
प्यारी को ललचाऊँ ॥१॥

चाह नहीं, सम्राटों के शव पर
हे हरि ! डाला जाऊँ ।
चाह नहीं, देवों के सिर पर
चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ ॥२॥

मुझे तोड़ लेना 'वनमाली' !
उस पथ में देना तू फेंक ।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक ॥३॥

शब्दार्थ

सुर-बाला = देवाङ्गना, किसी देवता की पत्नी । प्रेमी माला = किसी प्रेमी की माला । शव = लाश । हरि = ईश्वर । इठलाना = इतराना, घमंड करना । पथ = रास्ता । मातृ-भूमि = भारतवर्ष ।

शिक्षा

[इस कविता में श्री ठाकुर गोपालशरण सिंह ने अनेक सुन्दर उदाहरण द्वारा यह प्रतिपादित किया है कि संसार में सफलता प्राप्त करने के लिए कठिनाइयों का सामना करना अनिवार्य है ।]

शिशु ने दुनिया में आकर,
रो-रोकर हँसना सीखा ।
लघु होकर बढ़ना सीखा,
गिर-गिरकर चलना सीखा ॥१॥

वीरों ने इस वसुधा में,
मर-मरकर जीना सीखा ।
कितने ही चक्कर खाकर,
चंगों ने चढ़ना सीखा ॥२॥
भूखे-प्यासे रह-रहकर,
विहगों ने उड़ना सीखा ।
उर छेद-छेदकर अपना,
मुरली ने गाना सीखा ॥३॥

मिट-मिटकर वारिधरों ने,
पानी बरसाना सीखा
सिर पटक-पटक पत्थर पर,
झरनों ने झरना सीखा ॥४॥

गुरु गिरवर से गिर-गिरकर,
नदियों ने बहना सीखा ।
घट-बढ़कर शशि ने जग को,
पीयूष पिलाना सीखा ॥५॥

पहले पतंग ने आकर,
निज देह जलाना सीखा।
जल-जलकर दीप-शिखा से,
फिर प्रेम निभाना सीखा॥६॥

शब्दार्थ

शिशु = बच्चा। लघु = छोटा। वसुधा = पृथ्वी। चंगा = स्वस्थ। विहग = पक्षी। उर = हृदय, कलेजा। मुरली = बाँसुरी। वारिधर = बादल। गुरु = बड़ा। गिरि = पहाड़। वर = श्रेष्ठ, ऊँचा। शशि = चन्द्रमा। पीयूष = अमृत। पतंग = पतंगा। दीप-शिखा = दीये की ज्वाला।

तक़दीर और तदबीर

[इस कविता में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने तक़दीर और तदबीर अर्थात्—भाग्य और पुरुषार्थ—के प्रभाव को पृथक्-पृथक् दिखलाकर यह सिद्ध किया है कि जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए दोनों के सहयोग की आवश्यकता है।]

तक़दीर—

तदबीर से तक़दीर यह बोली हँसकर—
नहीं कोई दुनिया में मेरे बराबर।

मैं दम-भर में जो चाहूँ करके दिखा दूँ;
भिखारी को राजा का राजा बना दूँ ॥१॥

करम-रेख कहते हैं मुझको जहाँ में,
ज़रा सोच जी में, कहाँ तू? कहाँ मैं?
मुझे अपने सिर पै जगह सबने दी है;
मेरे हाथ में सबकी नेकी-बदी है ॥२॥

मैं बनती हूँ तो काम बनते हैं सारे,
मैं बिगड़ूँ तो है कौन जो कुछ सँवारे।
चमकते हैं जो आसमाँ पर सितारे;
फिरूँ मैं तो दम-भर में फिर जायँ सारे ॥३॥

मैं मारूँ तो वह कौन है जो बचाए?
बचाऊँ तो ताक़त किसे जो सताए?
जो बदलूँ, बदल जाय सारा ज़माना;
करे बैर की बात अपना बिगाना ॥४॥

न करती जो मैं राज दुनिया में आकर;
तो हो जाते छोटे-बड़े सब बराबर।
जहाँ में मेरी बात सबसे बड़ी है;
मेरी चाह हर एक को हर घड़ी है ॥५॥

न है कोई ऐसा मुझे जो न माने;
मेरे भेद को आदमी कैसे जाने?

ली

मेरे सामने तेरी क्या है हक़ीकत ?
बता गर तू रखती है कोई करामत ॥६॥

तदबीर—

यह सुन बात तदबीर भी हँसके बोली;
झड़े फूल मुँह से जबाँ जब कि खोली।
बहन, जो कहा तुमने वह सब सही है,
बड़ाई मगर तुमको मुझसे मिली है ॥७॥

करम-रेख हो तुम यह मैं जानती हूँ;
तुम्हारे गुणों को मैं पहचानती हूँ।
मगर मैं मददगार हूँ औ' सहारा,
न मुझ बिन चले काम कोई तुम्हारा ॥८॥

मेरी चाल होती है सबसे निराली,
नहीं है मेरी बात मतलब से खाली।
जहाँ में जो रौनक नज़र आ रही है,
मेरी ही करामात दिखला रही है ॥९॥

ज़मीं मैंने जोती, फ़सल मैंने बोई,
न होता अगर नाज, जीता न कोई।
ये सब बाग़ मेवों के मैंने लगाए,
मजेदार मीठे सभी फल चखाए ॥१०॥

यह फूलों की क्यारी जो लहरा रही है,
मेरी रंगतें सबको दिखला रही है।
जो कपड़े हैं ये रेशमी औ' जरी के,
नमूने हैं सब मेरी कारीगरी के ॥११॥

हकीमों को मैं ही बताती हूँ हिकमत,
भरी है कलों में मेरी ही करामत।
मैं लोहे को देती हूँ सोने की क़ीमत,
मेरा हाथ लगने से खुलती है किस्मत ॥१२॥

जहाँ में जो है आदमी ने बनाया,
वह सब मेरी हिकमत ने जलवा दिखाया।
जो एक तख्त-ताऊस तुमने सुना है,
वह मेरी ही कारीगरी से बना है ॥१३॥

जो है ताज बीबी का रौज़ा अनोखा,
बनाया है मैंने नहीं इसमें धोखा।
जो चाहूँ अभी आग को खाक कर दूँ,
लगा हाथ नापाक को पाक कर दूँ ॥१४॥

सिखाऊँ वह कारीगरी आदमी को
अचंभा जिसे देख हो सब किसी को।
ज़रा देख तू रेल को तार ही को,
मिले इनसे आराम कितना सभी को ॥१५॥

बनाया 'एयरशिप' है वह चीज़ भरकर,
कि उड़ने लगे आदमी उसमें बेपर।
तेरी बात को भी मगर मानती हूँ,
मैं अच्छी तरह तुझ को पहचानती हूँ ॥१६॥

मेरे काम सब हैं तेरे आसरे पर;
तेरे बिन मेरा है सभी काम अबतर।
जो मैं और तू साथ हों तो मज़ा हो;
मिलें जिसको दोनों वह सबसे बड़ा हो ॥१७॥

शब्दार्थ

तदबीर = पुरुषार्थ, प्रयत्न। तकदीर = भाग्य, किस्मत। दम-भर में = क्षण भर में। करम-रेख = भाग्य, जो किस्मत में लिखा हो। जहाँ = दुनिया। नेकी-बदी = भलाई-बुराई। सँवारना = सुधारना। आसमाँ = आकाश। ताक़त = शक्ति। ज़माना = युग, काल। बिगाना = पराया। चाह = इच्छा। भेद = रहस्य। हक़ीकत = हस्ती,। गर = यदि। करामत = चमत्कार। ज़बाँ = जीभ। ज़बाँ खोली = बोलना शुरू किया। सही = ठीक। निराली = विचित्र। ऐनक = शोभा। नाज = अन्न। मज़ेदार = स्वादिष्ट। हिकमत = चिकित्सा, वैद्यक। हिकमत = कौशल, कुशलता। जलवा = सौन्दर्य। तख़्त-ताऊस = मोर की शक्ल का शाहजहाँ का रत्नजटित सिंहासन। रौज़ा = समाधि। अनोखा = अद्भुत। धोखा = सन्देह। ख़ाक = राख। नापाक = अपवित्र। बेपर = बिना पंखों का। आसरा = सहारा, सहयोग। अबतर = खराब, अधूरा।

शहर और गाँव

[इस रचना में शहर और गाँव के पारस्परिक कथोपकथन के रूप में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने दोनों के गुण-दोषों पर विचार करते हुए गाँव को शहर की अपेक्षा बढ़िया और बड़ा माना है ।]

शहर

शहर गाँव से बोला भाई
मुझको तुझपर मिली बड़ाई
मुझसे सबको बहुत नफ़ा है
तुझसे तो हर शख़्स खफ़ा है

मैं आराम बहुत देता हूँ
काम बहुत-से मैं करता हूँ
अच्छे-अच्छे माल बनाकर
रख देता हूँ सजा-सजाकर

मैं पूरी, पकवान, मिठाई
देता हूँ सब बनी-बनाई
बिसकुट, रोटी, नान-ख़ताई
मक्खन, रबड़ी, दूध, मलाई

और बहुत-से उम्दा खाने
सबको देता हूँ मनमाने

रात-बिरात किसी दम आवे
थका मुसाफ़िर खाना पावे

टिक रहने के बहुत ठिकाने
अच्छे बने मुसाफ़िरख़ाने
जो कुछ चाहे सब मिलता है
मुरझाया दिल भी खिलता है

तेरा भी हूँ बहुत सहारा
मुझसे तेरा बड़ा गुज़ारा
लेकर पैदावारी तेरी
देता हूँ दौलत बहुतेरी

क़र्ज़ा तभी सर से टलता है
काम तभी तेरा चलता है
तेरे हैं बहुतेरे दुश्मन
चोर, लुटेरे, शाह, महाजन

मुझ बिन तुझे चैन से रहना
मुश्किल है, भाई, सच कहना
जो मेरा एहसान न माना
तो तू है पूरा दीवाना

गाँव

गाँव हँसा सुनकर ये बातें
कहा, जानता हूँ सब घातें
जो एहसान जताते हो तुम
बातें बड़ी बनाते हो तुम

पहले जी बहलाते हो तुम
पीछे खूब रुलाते हो तुम
जो मीठी बातों में आवे
पीछे सिर धुनकर पछतावे

अब तुम मेरी सुनो कहानी
हुई बड़ी मुझसे नादानी
जो मैं पास तुम्हारे आया
अपना सारा भरम गँवाया

सारे दुख, तकलीफ़ें सारी
मिलीं मुझे तुझसे कर यारी
पहले दुनिया में मैं ही था
कोई दुख उस वक़्त नहीं था

सब चंगे थे, रोग नहीं था
जूड़ी, प्लेग, बुखार नहीं था
सादा खाना सब खाते थे
पच जाता था, सुख पाते थे

दूध दही की कमी नहीं थी
गाय, भैंस की क्या गिनती थी
तुमने जो अब चाट लगाई
उसने बीमारी फैलाई

सब सामाँ जो तू रखता है
मेरा पैदा किया हुआ है
मेरी ही मिहनत का फल है
जिससे तुझको इतना बल है

ग़ौर करो तो मुझको जानो
दिल में सोचो तो पहचानो
अपने मुँह से सभी बड़े हैं
तुमसे मिल लाखों बिगड़े हैं

शब्दार्थ

शख़्स = आदमी। खफ़ा = नाराज़, अप्रसन्न। माल = सामान। पकवान = घी आदि में पकाई हुई चीज़, पूरी आदि। नान-ख़ताई = एक तरह की मिठाई। मनमाने = इच्छित। रात-बिरात = सबेरे या देर से, किसी समय। दम = समय, वक्त़। टिक रहना = ठहरना। ठिकाना = जगह, स्थान। मुसाफ़िरख़ाना = सराय, धर्मशाला, रेल के यात्रियों के ठहरने की जगह। गुज़ारा = निर्वाह। महाजन = रुपए के लेन-देन का व्यवसाय करनेवाला। एहसान = किया गया उपकार। दीवाना =

पागल। घातें = दाव, चाल। नादानी = बेवकूफ़ी, मूर्खता। भरम = मान। यारी = दोस्ती। चंगा = स्वस्थ, तन्दुरुस्त। चाट = लत। समाँ = सामान, चीज़ें। ग़ौर करो = विचार करो।

अद्भुत माया

[श्री सोहन लाल द्विवेदी इन पंक्तियों में ईश्वर की सृष्टि में उसकी अद्भुत लीला के दर्शन करते हैं।]

पत्ती में तेरी हरियाली,
मेंहदी में तेरी लाली।
देखो जहाँ, वहीं पर तेरी
करामात है वनमाली।
बिना डोर के लटक रहे हैं
नभ में नित उज्ज्वल तारे।
बिना प्राण के बजा रहे हैं
वंशी वंश-वृक्ष सारे।
कैंची नहीं हाथ में तेरे,
कटी पत्तियाँ न्यारी हैं।
रंग नहीं हाथों में तेरे,
फूल रँगे, बलिहारी है!

जान सका है कौन आज तक,
तेरी अद्भुत माया है।
कहीं चमकती धूप दिवस-सी
कहीं रात-सी छाया है।

शब्दार्थ

करामात = कौशल । वनमाली = ईश्वर । नभ = आकाश । नित = सदैव । उज्ज्वल = उजले । प्राण = श्वास । वंशी = बाँसुरी । वंश-वृक्ष = बाँस के पेड़ । न्यारी = अनोखी । बलिहारी है = तुमपर हम निछावर हैं। अद्भुत = आश्चर्यजनक, विचित्र । माया = लीला । दिवस-सी = दिन के समान ।

सूखी पत्ती

[इन पंक्तियों में श्री बदरी नाथ भट्ट ने एक सूखी पत्ती का उदाहरण देकर मनुष्य-जीवन की—इसके रूप, यौवन, इज़्ज़त और रिश्तों की—अस्थिरता की ओर संकेत किया है और इन वस्तुओं पर अभिमान न करने का उपदेश दिया है ।]

पड़ी भूमि पर ठोकर खाती,
पीला तेरा रंग हुआ है,
सब रस-रूप समय ने लूटा,
चुर-मुर सारा अंग हुआ है।

जिसपर रहती थी सवार नित,
घुल-घुलकर बातें करती,
वही हवा अब धूल फेंकती,
उलटा सारा ढंग हुआ है।

हुई चूर अभिमान-नशे में,
तब हँसती तू भूल रही थी,
कौन पूछता है अब तुझको,
वह सुख-सपना भंग हुआ है।

सबके सिर पर चढ़ी हुई थी,
अब सब पैरों-तले-कुचलते,
ऊँचे बढ़कर नीचा देखा,
सभी रंग बदरंग हुआ है।

जिस झोंरे पर झोंरे लेती,
फूल-फूलकर भूल रही थी,
उसने भी है तुझे भुलाया,
सारा प्रेम कुरंग हुआ है।

अब क्या जुड़ सकती है तरु में,
किसकी है तू, कौन है तेरा?
इस दुनिया में कोई किसी के,
दुःख में कभी न संग हुआ है।

शब्दार्थ

चुर-मुर होना = सूखकर टुकड़े होना। घुल-घुलकर = प्रेम से। चूर = मस्त। अभिमान = घमण्ड। सुख-सपना = सुख का स्वप्न। भंगहोना = टूटना। बदरंग होना = बिगड़ जाना। झौंरा = पत्तियों का गुच्छा। झौंरा = झोंका। फूल-फूलकर = घमंड से। कुरंग = हिरन। हिरन होना = लुप्त होना। तरु = पेड़।

वर्षा आई

[इन पद्यों में कवि ने वर्षा ऋतु के आने पर प्रकृति में जो शोभा सर्वत्र दीखने लगती है, उसका वर्णन किया है।]

देखो भाई, वर्षा आई।
वर्षा आई, वर्षा आई !

कृषकों को हर्षानेवाली,
धरती को सरसानेवाली,
चातक को तरसानेवाली,
रिम-झिम जल बरसानेवाली,

लानेवाली सुख सुघराई,
देखो भाई, वर्षा आई।

पौधे उगे जगत हरिआया,
हरी हुई झुलसी जग-काया,
देखो तो ईश्वर की माया,
छन में धूप, पलक में छाया,

सुख-दुख दोनों भाई-भाई ;
देखो भाई, वर्षा आई ।

उमड़-घुमड़ बादल-दल आते,
झम-झमकर पानी बरसाते,
खाई-नाले को भर जाते,
मैल गंदगी दूर बहाते,

टूटे बाँध, नदी उफ़नाई;
देखो भाई, वर्षा आई ।

जुगनू का अनुपम उजियाला,
दादुर का वह शोर निराला,
झिंगुर का गाना मतवाला,
दिन में सतरंगी रँगवाला,

इन्द्र-धनुष की अजब निकाई;
देखो भाई वर्षा आई ।

कहीं धान के खेत सुहाते,
मानों हरे जलधि लहराते,

मेड़ों पर मस्ती में माते,
कृषक घूमते गाते-गाते,
कंधे रख लाठी हरजाई;
देखो भाई, वर्षा आई।

मकई कहीं खड़ी मदमाती,
हरे अंचलों को फहराती,
निज 'बालों' को गोद खेलाती,
सिर पर धीरे चँवर डुलाती,
बल खाती या पवन-सहाई;
देखो भाई, वर्षा आई।

शब्दार्थ

कृषक = किसान। हर्षानेवाली = प्रसन्न करनेवाली। सरसानेवाली = सरस (हरी-भरी) बनानेवाली। चातक = एक पक्षी जो स्वाति नक्षत्र के जल के लिए तरसता रहता है। सुघराई = सुन्दरता। हरिआना = हरा-भरा होना। झुलसना = सूख जाना। जग-काया = जगत का शरीर। उमड़-घुमड़ = बढ़कर और घूम-घूमकर। उफ़नाना = उबलना। मतवाला = मस्ती से भरा हुआ। सतरंग = सात रंगोंवाला। अजब = विचित्र। निकाई = सुन्दरता। सुहाना = शोभा देना। जलधि = समुद्र। हरजाई = हर जगह। बाल = मकई का भुट्टा (तथा बच्चा)। चँवर = चौरी। बलखाती = इठलाती। पवन-सहाई = हवा के सहारे।

कर-जुग

[इन पंक्तियों में नज़ीर अकबराबादी यह शिक्षा देना चाहते हैं कि वर्त्तमान युग को कलियुग कहकर लोगों को बुरे कर्मों में प्रवृत्त नहीं होना चाहिए। यह कर्म-युग है। इसमें जो जैसा कर्म करेगा उसे वैसा ही फल मिलेगा।]

दुनिया अजब बाज़ार है, कुछ जिन्स याँकी साथ ले,
नेकी का बदला नेक है, बद से बदी की बात ले।
मेवा खिला, मेवा मिले; फल-फूल दे, फल-पात ले।
आराम दे, आराम ले; दुख दर्द दे, आफ़ात ले।

कल-जुग नहीं कर-जुग है यह, याँ दिन को दे और रात ले,
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है? इस हाथ दे उस हाथ ले।

जो और को फल देवेगा, वह आप भी फल पाएगा,
गेहूँ से गेहूँ जौ से जौ, चावल से चावल पाएगा।
जो आज देवेगा यहाँ, वैसा वह वाँ कल पाएगा,
कल देवेगा, कल पावेगा, कलपेगा गर कलपाएगा।

कल-जुग नहीं कर-जुग है यह, याँ दिन को दे और रात ले,
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है? इस हाथ दे उस हाथ ले।

जो चाहे ले, चल इस घड़ी, सब जिन्स याँ तैयार है,
आराम से आराम है, आज़ार से आज़ार है।

दुनिया न तू इसको समझ, दरिया की यह मँझधार है,
औरों का बेड़ा पार कर, तेरा भी बेड़ा पार है।

कल-युग नहीं कर-जुग है यह, याँ दिन को दे और रात ले,
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है? इस हाथ दे उस हाथ ले।

अपने नफ़े के वास्ते मत और का नुक़सान कर,
तेरा भी नुक़साँ होएगा, इस बात का भी ध्यान कर।
खाना जो तू खा, देखकर, पानी पिए तो छानकर,
याँ पाँव को रख फूँककर और ख़ौफ़ से गुज़रान कर।

कल-जुग नहीं कर-जुग है यह, याँ दिन को दे और रात ले।
क्या ख़ूब सौदा नक़्द है? इस हाथ दे उस हाथ ले।

शब्दार्थ

कर-जुग = कर्म-युग । अजब = विचित्र । जिन्स = चीज़ें, वस्तुएँ । याँकी = यहाँ की । नेकी = भलाई । बद = बुरा काम । आफ़ात = आफ़तें । कल-जुग = कलियुग । वाँ = वहाँ अर्थात् परलोक में । कलपेगा = दुःख भोगेगा । आज़ार = दुःख, कष्ट । दरिया = नदी । मँझधार = बीच धारा । बेड़ा पार करना = संकट से छुड़ाना । नफ़ा = लाभ । फूँककर = सावधानी से । ख़ौफ़ = भय, डर । गुज़रान = निर्वाह ।

मैलेपन की सज़ा

[इस कविता में कवि ने मैले कपड़ों का उदाहरण देकर बतलाया है कि मनुष्य के लिए मैला रहना बहुत हानिकर तथा निन्दनीय है ।]

धोबी घूम-घूम घर-घर से, मैले कपड़े लाता है।
इसके बाद उन्हें कस-कसकर, लादी एक बनाता है।।
लाद गधे पर गली-गली फिर, पूरा शहर घुमाता है।
मैलेपन की सज़ा यही है, गोया यह दिखलाता है।।

घर में लाकर बेदर्दी से, सबमें रेह लगाता है।
देकर तेज़ आँच भट्ठी में, उनको ख़ूब तपाता है।।
इतना कर चुकने पर भी, धोबी को सब्र न होता है।
बनकर वह बेरहम नदी, नालों में, उन्हें डुबोता है।।

बार-बार गोते देकर, पाटे पर ख़ूब पटकता है।
छी-छी करता हुआ उन्हें, हाथों से ख़ूब झटकता है।।
एक-एक को ऐंठ-ऐंठकर, बेपानी कर देता है।
कपड़े रोते हैं पर धोबी, माफ़ी उन्हें न देता है।।

बल्कि बाँधकर रस्सी से, उनको उलटा लटकाता है।
सुखलाकर तहकरके, सबपर, लोहा गर्म चलाता है।।
देखा हमने मैले कपड़ों, की क्या दुर्गति होती है।
पर उजले कपड़ों को इसकी, कुछ भी फ़िक्र न होती है।।

स

इसी तरह मैले लोगों को, नाना रोग सताते हैं।
पर जो सदा साफ़ रहते हैं, उनके पास न जाते हैं॥
रहकर साफ़ अगर हम अपनी, आदत भली बनाएँगे।
तो बनकरके तन्दुरुस्त, सबके प्यारे हो जाएँगे॥

शब्दार्थ

सज़ा = दण्ड। लादी = मैले कपड़ों का गट्टर, जिसे धोबी गदहे पर लादकर ले जाता है। गोया = मानो। बेदर्दी = निर्दयता। रेह = एक प्रकार की खारी मिट्टी जिससे धोबी लोग कपड़े साफ़ करते हैं। आँच = गरमी। भट्टी = एक प्रकार का बड़ा चूल्हा। सब्र = संतोष। बेरहम = निर्दय। गोते देकर = डुबोकर। पाटा = कपड़े धोने का तख़्ता। ऐंठ-ऐंठ कर = मरोड़-मरोड़कर। दुर्गति = बुरी दशा।

अछूत

[इन पंक्तियों में प्रो० विश्वनाथ प्रसाद अछूतों के वास्तविक मूल्य की ओर संकेत करते हुए उनके साथ समानता का व्यवहार करने की आवश्यकता बतलाते हैं।]

कौन कहता है इन्हें अछूत ?
इन्हें आज पहचाना,—ये हैं आज़ादी के दूत॥
देवालय से दूर इन्हें जो करते समझ अपूत।
छुआछूत यह नहीं, चढ़ा है उनके सिर भ्रम-भूत॥

माँ-समान जो साफ स्नेह से करते हैं मल-मूत ।
घृणा उन्हीं से इतनी! छी-छी! यह कृतघ्न करतूत !!
ऐ द्विज, नाहक द्वेष न कर, हैं ये हरि-चरण-प्रसूत ।
चेतो रे! क्या निर्दयता के होंगे शास्त्र सबूत ?
सुन ले सब संसार, एक माँ के हैं हम सब पूत ।
गले लगाकर एक दूसरे को होंगे मजबूत ॥
कौन कहता है इन्हें अछूत ?
इन्हें आज पहचाना, ये हैं आज़ादी के दूत ॥

शब्दार्थ

आज़ादी = स्वतंत्रता । दूत = सफर मैना । देवालय = मन्दिर । अपूत = अपवित्र, नापाक । भ्रम-भूत = भ्रम का भूत । स्नेह = प्रेम । कृतघ्न = किए हुए उपकार को न माननेवाले । द्विज = ब्राह्मण । हरि-चरण-प्रसूत = ईश्वर के पैरों से उत्पन्न । निर्दयता = क्रूरता । शास्त्र = धर्म-ग्रन्थ ।

—

ठोकर

[इस कविता में श्री आरसी प्रसाद सिंह ने बतलाया है कि मनुष्य को ठोकरें खाकर हतोत्साह नहीं हो जाना चाहिए; प्रत्युत उनसे शिक्षा ग्रहण करके अपने उद्देश्य की पूर्ति में नये उत्साह के साथ लग जाना चाहिए ।]

[१]

हम करते हैं गलती कोई
तब लगती है हमको ठोकर!
जो वीर, सम्हल बढ़ जाते वे;
कापुरुष बैठ रहते रोकर!

[२]

वे ही गिरते हैं, जो निर्भय
होकर घोड़े पर चढ़ते हैं;
आते हैं काम वही पहले,
जो सैनिक आगे बढ़ते हैं!

[३]

ठोकर लगने से रुक जाए,
ऐसी भी कोई इच्छा है?
वीरों के लिए यहाँ तो बस,
ठोकर ही एक परीक्षा है!

[४]

गिरते हैं सभी, मगर कायर
गिरकर न कभी उठ पाते हैं!
सचमुच हैं वही बहादुर, जो
गिरते हैं, फिर उठ जाते हैं!

[५]

लगती है ठेस, लगे; आगे
बढ़ना है हमें अचल होकर!
हम विघ्नों के भी विघ्न बनें,
ठोकर को दे दें हम ठोकर!

[६]

जब ध्यान न देते नियमों पर,
हम रोगी तब हो जाते हैं;
ठोकर से हमको ईश्वर भी
अपनी गलती बतलाते हैं!

[७]

औषध की हमें जरूरत है,
हमको चंगा कर देने को;
ठोकर की हमें जरूरत है,
हममें हिम्मत भर देने को!

[८]

सच्चे न किसीसे डरते हैं,
ठोकर से कभी न घबराते;
कर जाते काम वही जग में,
मरनेवाले हैं मर जाते!

[९]

जो बढ़नेवाले हैं, ठोकर से
आगे ही बढ़ जाते हैं!
जो चढ़नेवाले हैं, वे तो
पर्वत पर भी चढ़ जाते हैं!

[१०]

ठोकर लगते ही रुक जाए,
वह भी क्या कोई जीवन है?
चलते-चलते जो थक जाए,
यह भी क्या कोई यौवन है?

[११]

ठोकर जीना सिखलाती है,
मुर्दा न बनें जीवन खोकर!
मुर्दे सो जाते चिर-दिन को,
जीवित उठ जाते हैं सोकर!

[१२]

ठोकर लगने पर हम देखें,
अपनी कमजोरी को जानें!
ठोकर खाने का मतलब है
पहले अपने को पहचानें!

[१३]

फिर लक्ष्य हमारा यदि ध्रुव है,
हम सफल रहेंगे ही होकर!
बाधा हमको कर सकती क्या?
क्या कर सकती हमको ठोकर?

शब्दार्थ

कापुरुष = कायर लोग । निर्भय = निडर । काम आना = मारा जाना । ठेस = चोट । औषध = दवा । चंगा = स्वस्थ । जग = संसार । पर्वत = पहाड़ । यौवन = जवानी । चिर दिन को = सदा के लिए । कमजोरी = कमी, त्रुटि । लक्ष्य = उद्देश्य । ध्रुव = स्थिर, निश्चित ।

एक ही बात

[इन छन्दों में श्री वियोगी हरि ने सब धर्मों की एकता का प्रतिपादन करते हुए बतलाया है कि यदि उपासक के हृदय में सच्चा ईश्वर-प्रेम हो तो वह किसी भी धर्म में रहकर ईश्वर को प्राप्त कर सकता है । स्वार्थ-त्याग, प्रेम और दुखियों के प्रति सहानुभूति —बस, यही सब धर्मों का सार है ।

[१]

इस मन्दिर में भी मिलेगा खुदा,
कुछ अन्दर इश्क़ की आग भी हो,

उस मस्जिद में भी दिखेगा तुम्हें,
मनमोहन से अनुराग भी हो।

वह हाजिर है हर के दिल में,
उसे चाहने की चित चाह भी हो,
मिल लो उस पीव से राह तो है,
पर दर्द-भरी कुछ आह भी हो।

[२]

मुझे वेद-पुरान-कुरान से क्या—
मुझे सत्य का पाठ पढ़ा दे कोई।
मुझे स्वर्ग या मुक्ति की चाह नहीं
मुझे त्याग का रंग चढ़ा दे कोई।

मुझे धर्म अधर्म से क्या करना,
मुझे प्रेम का प्याला पिला दे कोई,
मुझे मन्दिर-मस्जिद जाना नहीं,
मुझे राम-रहीम मिला दे कोई।

[३]

दिल खोल दया ही लुटाया करो,
दुख-दर्द का दान दिया न करो;
तुम वेद-कुरान की ओट में हाय !
ईमान की जान लिया न करो।

उस बाप के नाम पै भाइयों का
तुम नाहक रक्त पिया न करो;
कुरबानी खुदी की करो सरकार!
खुदाई का खून किया न करो।

[४]

पुजती हो गरीब की आह जहाँ
कहते हैं जिसे सब प्रेम-मही,
मेरी काशी वही, मेरा काबा वही
मेरा स्वर्ग वही मेरा धाम वही।

दिखता हो अनाथ के आँसुओं में
दिलदार जो दीन दुखी का सही;
मेरा अल्ला वही मेरा बुद्ध वही,
मेरा राम वही, मेरा श्याम वही।

[५]

जहाँ ऊँच या नीच का नाम न हो,
जहाँ जात या पाँत की बात नहीं;
न हो मन्दिर-मस्जिद-चर्च जहाँ
न हो पूजा नमाज में भेद कहीं।

जहाँ सत्य ही सार हो जीवन का
रिझवार सिंगार हो त्याग जहीं,

जहाँ प्रेम-ही-प्रेम की सृष्टि मिले;
चलो नाव को ले चलें खेके वहीं।

शब्दार्थ

अन्दर = हृदय में। इश्क़ = प्रेम। मनमोहन = ईश्वर। अनुराग = प्रेम। चित चाह = दिली ख़्वाहिश। पीव = प्रिय। सत्य का पाठ = सच्चाई की शिक्षा। ओट = आड़। रक्त = ख़ून। ख़ुदी = ख़ुदग़रज़ी, स्वार्थपरता। ख़ुदाई = ईश्वर का ईश्वरत्व। प्रेम-मही = प्रेम की भूमि। धाम = तीर्थस्थान। दिलदार = सहृदय। दीन = गरीब। सार = तत्व। रिझवार = रिझानेवाला। सृष्टि = दुनिया।

अभिलाषा

[इन पंक्तियों में श्री रामअचल पाण्डेय परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हमारा जीवन परोपकार के कार्यों में ही समाप्त हो।]

बनें ऐसे कि इस संसार में, कुछ कर दिखाएँ हम।
प्रभो! तेरी बड़ाई के, निराले गीत गाएँ हम॥

दुखी बीमार जो उनकी, सदा ही हम करें सेवा।
ग़रीबों के ही मुखड़े पर, तुम्हें बस देख पाएँ हम॥

किसी का दिल दुखाने के, ही पहले खुद ही मर जावें।
बुरे जो हैं भलाई से, भले उनको बनाएँ हम॥

न हो उतनी ख़बर अपनी, ख़बर जितनी हो औरों की।
बुराई को भलाई से, हमेशा जीत जाएँ हम॥

नहीं पैदा हुए हम इस, ज़मीं का भार बनने को।
कहीं इस वास्ते कि, चैन की बंशी बजाएँ हम॥

हमेशा काम कुछ करते रहें, डर दूरकर दिल से।
सहें सब कष्ट पर, संसार के दुख को भगाएँ हम॥

शब्दार्थ

निराला = अद्भुत। मुखड़ा = चेहरा। ख़बर = चिन्ता। ज़मीं = जमीन, पृथ्वी। चैन की बंशी बजाना = आराम से जीवन बिताना।

अनुरोध

[इस कविता में श्री गिरीश जी भारतवासियों से विद्या के प्रचार और आपस के मेल द्वारा देश की उन्नति करने का अनुरोध करते हैं।]

जब तक राज्य अविद्या का है
तब तक सुख न मिलेगा।
जब तक रात रहेगी तब तक
कमल न कभी खिलेगा।
इससे विद्या के प्रचार में
तन-मन से लग जाओ।

गाँव-गाँव में प्रति घर-घर में
ज्ञान-प्रकाश बढ़ाओ।
भाग्य देश का, फूट फोड़ती
है, सबको बतलाओ।
मेल बिना सब काम बिगड़ता,
सबको यह समझाओ।

भारत की उन्नति-हित सच्ची लगन दिखाओ प्यारे।
अपने पौरुष से फिर ला दो पहले के दिन न्यारे॥

शब्दार्थ

अनुरोध = आग्रह । ज्ञान-प्रकाश = विद्या का उजाला। मेल = एकता । उन्नति-हित = उन्नति (तरक्की) के लिए। लगन = धुन। पौरुष = पुरुषार्थ।

फ़ैशन की दुलत्ती

[फ़ैशन का भूत हम भारतीयों पर किस बुरी तरह सवार है एवं इसके चलते हमारा समाज–खासकर शिक्षित समाज–किस तरह बरबाद हो रहा है; प्रस्तुत छोटे से नाटक में श्री जगन्नाथ सिंह ने इसका मार्मिक चित्र खींचा है।]

पहला दृश्य

[गाना]

भारत मेरा देश है प्यारा
सारे जग में सबसे न्यारा
भारत का मैं लाल कहाऊँ
तन-मन-धन इसपर बलि जाऊँ

[सुसज्जित कमरे में विद्यार्थी रामशंकर कुर्सी पर अप-टु-डेट फ़ैशन में बैठा हुआ है। दूसरी तरफ़ से उसका पिता घनश्यामदास आता है। विद्यार्थी पिता को तिरछी नज़र से देखता है और मुँह से सीटी बजाता है।]

रामशंकर—हलो फादर! हाउ आर यू? (सिगरेट का एक डिब्बा अपने पिता के सामने पेश करता है।)

घनश्याम—अरे, यह क्या! यह कैसा रंग? (चकित होता है।)

पुत्र—माइ डियर फादर ! आप इस क़दर ख़ामोश क्यों हैं ?

पिता—बेटा, मैं तुझसे बहुत-कुछ आशा करता था; लेकिन तूने सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। क्या मैंने तुझको इसीलिए विलायत भेजा था कि तू अपने पिता के साथ भी गुस्ताख़ी किया करे ?

पुत्र—अहाहा ! आजकल का यही फ़ैशन है। किसी जमाने में बाप ही बेटे को सिगरेट देता था, अब बेटा ही बाप को देता है।

पिता—अब से भी तू सँभल जा बेटा, यह मैं नहीं कहता कि तू अँगरेजी मत पढ़ या मत बोल; लेकिन अपनेसे बड़े का लिहाज तो किया कर ?

पुत्र—ओहो ! लिहाज किस जानवर का नाम है ? आप उन पुरानी बातों को भूल जाइए। अब यह बीसवीं सदी है। मैं आपको यही राय दूँगा कि खाइए, पीजिए, मौज कीजिए—Eat, drink and be merry। पुरानी लकीरों के फ़कीर मत बने रहिए।

पिता—(दर्शकों की तरफ़ मुँह फेरकर) देखा आपने ? आज यह मेरा लड़का मुझे ही उपदेश सुना रहा है !

(रामशंकर के छोटे भाई शिवशंकर के ट्यूटर बाबू परमेश्वरदयाल उधर से टहलते हुए आते हैं।)

घनश्यामदास—अरे रामशंकर ! तुझको मास्टर साहब

का भी कुछ लिहाज नहीं ? कुर्सी पर डटा बैठा है उनके सामने ?

रामशंकर—फिर वही पुरानी बात ? अँगरेजी डिक्शनरी में लिहाज शब्द है ही नहीं। फिर भला मैं कैसे इसका प्रयोग करूँ ?

पिता—अब तू सयाना हुआ, बच्चा नहीं है; अब तुझको खुद ही अदब-लिहाज और तमीज-तहजीब सीखनी चाहिए। हाँ, मास्टर साहब, जरा रामशंकर की परीक्षा तो लीजिए कि क्या पढ़ा है।

मास्टर—हाँ जी रामशंकर, बोलो तो, पानीपत की तीसरी लड़ाई कब और किसके साथ हुई थी ?

रामशंकर—यह तो एक मामूली सवाल है। Third battle of Panipat सन् १८०२ में हैदरअली और पृथ्वीराज के बीच हुआ था !

मास्टर—वाह ! वाह ! यह तो नया इतिहास गढ़ डाला।

रामशंकर—तो आपने क्या समझा ? क्या मैं ऐसी-ही-ऐसी वाहियात बातों को सीखने के लिए विलायत गया था ? मैं जबतक यहाँ था, एक देहाती स्टूडेंट बना हुआ था; लेकिन वहाँ जाकर मैं एक अप-टु-डेट स्टूडेंट बन गया हूँ। इंगलिश ड्रेस पहनता हूँ, इंगलिश डिनर खाता हूँ, इंगलिश लैंगवेज बोलता हूँ, इंगलिश स्पोर्ट खेलता हूँ, इंगलिश में हँसता हूँ, इंगलिश में रोता हूँ, इंगलिश में सोचता हूँ—दुनिया के तमाम

कामों को इंगलिश में ही करता हूँ। मैं उन देहाती स्टूडेंटों में नहीं हूँ जो हिस्ट्री और जॉगरफ़ी के पीछे नाहक अपना माथा खपाते हैं।

[मास्टर साहब और पिता मुँह लटकाए जाते हैं।]

दूसरा दृश्य

[रामशंकर और उसके कुछ नौजवान दोस्त बैठे बात करते हैं।]

नरेन्द्र—क्यों दोस्त, कुछ उदास क्यों नज़र आते हो ?

राम०—अरे भाई, क्या कहूँ, आजकल बाबूजी का दिमाग कुछ ठीक नहीं मालूम पड़ता। वह बूढ़ा मास्टर उनको और बिगाड़े हुए है। जब देखो तब मेरी पोशाक, खान-पान और रहन-सहन पर हमेशा टीका-टिप्पणी किया करते हैं। फूटी आँखों भी मैं उन्हें नहीं सुहाता। क्या करूँ, भाई, उनसे बिलकुल परेशान हो गया हूँ।

शान्तिप्रसाद—जाने दो, यार; गोली मारो ऐसे बूढ़ों को। खूसट लोगों की बातों की भी कोई परवा करता है ? हम सब स्टूडेंट हैं, हमें नई रोशनी के उजाले में मौज-बहार लेनी चाहिए।

रामशंकर—ठीक कहा, भाई! Let them bark, हमें नये युग के प्रकाश से चलना चाहिए।

[इसी समय मनोहरलाल नामक एक गरीब मैट्रिक छात्र वहाँ आता है। उसके तन पर फटे कपड़े हैं और पैरों में फटी जूती। आकर सब दोस्तों को प्रणाम करता है।]

रामशंकर—(अपने नौकर को पुकारकर) रामफल ! निकाल-बाहर करो इस भिखमंगे लड़के को ।

गरीब विद्यार्थी—भाई रामशंकर, मुझको तुम एकदम भूल गए ? मैं तुम्हारा सहपाठी था—मनोहरलाल ! मैं कोर्स की किताबें खरीदने में असमर्थ हूँ । क्या मुझपर दया करके कुछ सहायता करोगे ?

रामशंकर—सहायता ? कैसी सहायता ? क्या यहाँ कोई धर्मखाता खुला हुआ है ? चलो, हटो यहाँ से। तुम्हारे ऐसे बहुतेरे सहपाठी थे ।

रामफल—(खाँसता हुआ) बबुआजी, ऐसा निठुर नहीं होना चाहिए। मैं इस लड़के को अच्छी तरह जानता हूँ। यह बड़ा होनहार है। इसकी मदद करने से बड़ा पुण्य होगा ।

रामशंकर—फजूल मत बको । तुम बुड्ढे हो गए—सठिया गए। जल्दी जाकर रसोइया को बुला लाओ ।

[गरीब विद्यार्थी हताश होकर जाता है, दोस्तों का ठहाका गूँजता है।]

मँगरू पाँड़े—(रामफल के साथ कमरे में प्रवेश करता है।) आशीर्वाद छोटे सरकार ! क्या हुक्म है ?

रामशंकर—ओ आशीर्वाद के बच्चे ! आशीर्वाद अपने बाप को देना। यहाँ आशीर्वाद-फासीर्वाद की जरूरत नहीं है। जा, जल्दी दो-चार अंडे तो तल ला ।

सा

मँगरू पाँड़े—सरकार, ऐसी बात आपके मुँह से ? ब्राह्मण को ऐसा नापाक हुक्म ? यह गन्दा काम मुझसे न होगा ।

रामशंकर—Foolish, nonsense. अंडे की सिफत तुझे मालूम नहीं है ? यह वह चीज है जिसके खाने से जिन्दगी का लुत्फ—

नरेन्द्र—यही तो जवानी का नायाब नुसखा है ।

शान्तिप्रसाद—अंडा तो फलाहार है । इसमें दोष क्या ?

मँगरू पाँड़े—हा दैव ! अब जमाना उलट गया ! बड़े सरकार के सामने कोई अंडे का नाम तक ले तो खैरियत नहीं, और यह छोटे सरकार अंडे के पक्के पुजारी बन गए ! सारा मुलुक भ्रष्ट हुआ जाता है ।

रामशंकर—You idiot—fool. दूर हो सामने से ।

(मारने के लिए दौड़ता है, पाँड़े भाग जाता है ।)

तीसरा दृश्य

(पूजागृह में सत्यदेव स्वामी की पूजा की तैयारी । रामचरण, शिवलोचन, चतुरानन्द इत्यादि बैठे हैं । रामशंकर पूरे अँगरेजी ठाट में आता है और पूजा-स्थान तक चला जाता है ।)

रामचरण—हें-हें-हें ! भइया रामशंकर ! जरा जूते उतार दो । देखते नहीं, भगवान् सत्यनारायण की कथा की तैयारी होती है । हिन्दूधर्म का कुछ भी तो खयाल करो ।

रामशंकर—इन पोंगापंथियों के मारे तो नाक में दम हो

रहा है। भला इस पूजा-पाठ से क्या होनेवाला है? यह भी ancient tradition का एक खोखला चिह्न है!

(पीछे लौट जाना चाहता है।)

शिवलोचन—अरे भाई, वापस क्यों जाते हो? ठहरो, प्रसादी लेकर जाना। पूजा तो खत्म होने दो।

रामशंकर—भला प्रसादी पाने से क्या होता है? (ठहरता नहीं, सीटी बजाता हुआ वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो जाता है।)

रामचरण—विलायत जाने से इसका दिमाग फिर गया! (मुँह बिचकाता है।) अब यह हमलोगों के समाज में नहीं खपेगा। (सब लोग 'श्रीमन्नारायण' की ध्वनि करते हैं।)

चौथा दृश्य

[एक फैशनेबुल दूकान पर मोटेमल महाजन बैठे हुए हैं।]

रामशंकर—(दूकान में घुसकर) मैं कुछ फशनेबुल चीजें चाहता हूँ।

मोटेमल—सरकार, यहाँ सब तरह की चीजें हैं—एक-से-एक बढ़कर! इंडियन लेबर, इंडियन कैपिटल, इंडियन ब्रेन, एवरी-थिङ्ग इंडियन!

रामशंकर—Hopeless! इंडियन चीज का नाम मत लीजिए। भला हिन्दुस्तानियों में इतना दिमाग कहाँ जो fancy चीजें बनावें। हिन्दुस्तानी चीजें बड़ी भद्दी होती हैं। मुझे तो सिर्फ इंगलैंड की बनी हुई चीजें चाहिए।

मोटेमल—लेकिन, सरकार ! अब वह समय नहीं। समय ने बहुत पलटा खाया है। अब हिन्दुस्तान में भी अच्छी-से-अच्छी चीजें तैयार होने लगी हैं। उचित तो यही है कि हिन्दुस्तान के पैसे हिन्दुस्तान ही में रहें। स्वदेशी चीजें विदेशी चीजों से सस्ती, टिकाऊ और सुन्दर होती हैं।

रामशंकर—गोली मारिए स्वदेशी चीजों को, मैं उन बेवकूफों में नहीं हूँ जो हिन्दुस्तान के लिए मरते हैं। मुझे नफीस चीजें चाहिए। विदेशी चीजें उम्दा और सुबुक होती हैं। स्वदेशी से उनका क्या मुकाबला ?

सेठजी—आप एक बार इन चीजों का व्यवहार करके देखें तो सही। अगर आरामदेह न हों तो वापस कर देंगे।

रामशंकर—नहीं-नहीं, मैं अँगरेजी कम्पनी की दूकान में जाता हूँ। यहाँ मेरा सौदा नहीं पटेगा। (प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

[राजपथ का एक निर्जन हिस्सा]

रामशंकर—(फटे कपड़े और जूते पहने, केश बिखरे हुए, बदरंग) ऐ दुनियावालो ! इधर देखो, मेरी आँखें अब खुली हैं ! ठीक है—

सुर्खरू होता है इन्साँ, ठोकरें खाने के बाद।
रंग लाती है हिना, पत्थर पै पिस जाने के बाद॥
देखिए किस्मत की खूबी, दिन बुरे आने लगे।
जिनको थी फूलों से रगबत, ठोकरें खाने लगे॥

हा! अब वह मेरा फ़ैशन कहाँ गया! फ़ैशन-फ़ोबिया (Fashion-phobia) का वह भूत मुझे बरबाद कर अब कहाँ चला गया! कहाँ गए वे हमारे खुशदिल दोस्त! हे ईश्वर! यही बुद्धि तूने मुझे पहले क्यों न दी? आज मैं दर-दर का भिखारी बना फिरता हूँ—रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए मुहताज हूँ! आज मेरी यह दशा हो गई है कि मैं अपना पेट भी नहीं भर सकता हूँ। घर पर जो स्त्री और एक छोटा-सा बच्चा है उसकी क्या हालत होगी? या ईश्वर!

(इतना कहकर रोता है और अपनी दोनों आँखों को हाथों से बन्दकर सड़क के एक किनारे बैठ जाता है।)

(दूसरी तरफ से श्रीमनोहरलाल, एम० ए०, बी० एल०, ऐडवोकेट-हाईकोर्ट, टहलते हुए आते हैं। रामशंकर को देखकर ठिठक जाते हैं। रामशंकर को गौर से देखते हैं।)

मनोहरलाल—भाई रामशंकर! क्या सचमुच तुम ही हो? क्या मैं तुमको इन्हीं आँखों से देख रहा हूँ? तुम्हारी यह हालत कैसे हुई?

रामशंकर—यह फ़ैशन की बीमारी का परिणाम है। मुझ अभागे को अब रो-रोकर अपने किए का फल भोगने दो। मुझे वह दिन खूब याद है, मैंने आपको एक गरीब देहाती विद्यार्थी समझकर अपने मकान से बाहर निकलवा दिया था! भाई, क्या मुझे तुम माफ करोगे? क्या ईश्वर मुझे माफ करेंगे?

मनोहरलाल—भाई रामशंकर, जाने दो उन बीती बातों को।

होनेवाली बात होकर ही रहती है। अब से भी तुम सँभल जाओ। भाई मेरे, जो ड्रेस या डिनर पश्चिमवालों के लिए ठीक है वह हमलोगों के लिए कदापि नहीं। भारत का हवा-पानी कुछ और ही है। 'देशी घोड़ा, विलायती चाल' ठीक नहीं। कल तुम हाईकोर्ट में आओ, एक वकील की क्लर्की दिला दूँगा। थोड़े ही दिनों में तुम्हारी दशा सुधर जायगी। किन्तु आज से याद रक्खो—"Let us adopt only the best of the west and the best of the east."—पूर्व और पश्चिम में जो कुछ सर्वोत्तम है, वही ग्रहण करने योग्य है; अन्धानुकरण सर्वनाशकारी है।

रामशंकर—धन्यवाद, भाई मनोहरलाल! गरीब ही सच्चे दोस्त होते हैं।

[पटाक्षेप]

शब्दार्थ

सुसज्जित = सजा हुआ। ख़ामोश = चुप, मौन। गुस्ताख़ी = ढिठाई, अशिष्टता। लिहाज़ = सम्मान, लज्जा। तमीज-तहजीब = शिष्टता और सभ्यता। नाहक = बेकार। टीका-टिप्पणी = नुक्ताचीनी। परेशान = तंग। आशीर्वाद = आशिष, दुआ। पोंगापंथी = मूर्ख। नफ़ीस = बढ़िया, सुन्दर। सुबुक = हलका, सुन्दर। सुर्खरू = सफल। इन्साँ = आदमी। हिना = मेंहदी। रगबत = अनुराग, चाह। परिणाम = फल। सर्वोत्तम = सबसे बढ़िया। अन्धानुकरण = बिना सोचे-समझे मानना। सर्वनाशकारी = सबको बरबाद करनेवाली। पटाक्षेप = परदा गिरना।

सुधार

['अच्छे-से-अच्छे लड़के भी बुरे लड़के की संगति में पड़कर बुरे हो जाते हैं।' प्रो० हरिमोहन झा ने इस सत्य पर ध्यान रखते हुए यहाँ दिखलाया है कि किस प्रकार सुशील, जो सचमुच सुशील था, रमानाथ के फेर में पड़कर बरबाद हो गया, किन्तु जब अंत में उसे होश आया और उसने पश्चात्ताप किया तब उसका सुधार हुआ।]

दृश्य १

(स्थान—सुशील की फुलवारी। सुशील बेंच पर बैठा हुआ एक किताब पढ़ रहा है। पीछे से रमानाथ आता है और चुपचाप दोनों हाथों से उसकी आखें मूँदता है)

सु०—कौन है ? भैया, सुरेश, वाह ! क्या मैं पहचान नहीं सकता ? (हाथ टटोलकर) अरे ! तुम हो महेन्द्र ? छोड़ो अब।

र०—(खिलखिलाते हुए) वाह रे बुद्धू। खूब पहचाना। (गाल में हलका सा थप्पड़ लगाकर) यहाँ अकेले बैठे क्या सोच रहे हो ? चलो मेरे साथ।

सु०—ना भाई। अभी मैं पढ़ रहा हूँ ! जानते हो ? यह है "महात्मा बिदुर के उपदेश।" मैं इसे बिना खतम किए नहीं उठूँगा।

र०—बस, बस, रहने दो। बड़े बगुला-भगत बने हो। यह सब दूसरे को समझाना। मेरे सामने नहीं चलेगी।

सु०—भाई, माफ करो। मुझे अभी फुरसत नहीं है। फिर यदि भैया मुझे तुम्हारे साथ देख लेंगे तो बिगड़ने लगेंगे।

र०—(किताब छीनकर) क्यों मैं बाघ थोड़े ही हूँ जो तुमको निगल जाऊँगा ? चलो, जरा मैदान की सैर कर आवें।

सु०—(हिचकिचाते हुए) उफ़ ! अभी छोड़ दो। अभी छोड़ दो। अभी टहलने का वक्त नहीं हुआ है।

र०—अच्छा, अभी नहीं, कुछ देर के बाद ही सही। तब तक लाओ, तुम्हारे बाल ठीक कर दूँ।

(कंघी करता है) ओह ! तुम बाल घुमाना भी नहीं जानते। न जानें दुनिया में कैसे काम चलाओगे।

सु०—भैया, मैं हाथ जोड़ता हूँ, छोड़ दो। यह सब मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं वैसे ही तुम्हारे साथ चलता हूँ।

र०—(एक शीशी निकालकर) लाओ, तुम्हारे रूमाल में ज़रा सेंट लगा दूँ। अच्छा, चलो। अब चलें।

दृश्य २

(स्थान—बाजार की सड़क। आगे-आगे रमानाथ, पीछे-पीछे सुशील सिर झुकाए जा रहा है।)

र०—(तम्बोली की दूकान के सामने) ठहरो, ज़रा यहाँ पान खा लें।

सु०—नहीं, तब तक मैं आगे चलता हूँ।

र०—(हाथ पकड़कर) वाह यार ! इतना नखरा कबसे सीख लिया ? मैं भला तुम्हें जाने दूँगा !

सु०—आप तो हर एक बात में अपनी ही ज़िद रखते हैं। मुझको कभी पान खाते देखा है ?

र०—अच्छा, तो मेरे ही कहने से सही। चलो, जरा पहले लेमनेड पी लिया जाय।

सु०—नहीं, यह तो मुझसे नहीं होगा। मैं यह सब कुछ नहीं पीता।

र०—अरे ! तुम भी पूरे गावदी ही बने रहे। यह क्या शराब है ? मैं तो रोज ही पी लेता हूँ।

सु०—अच्छा, पहले आप ही पी लीजिए।

र०—(आधी बोतल पीकर) लो इसीमें पी लो। क्या मेरा जूठा तो नहीं मानोगे ? (बोतल बढ़ा देता है। सुशील शरमाते हुए ठहर-ठहरकर पीता है।)

सु०—लो, भैया अब मैं नहीं पीऊँगा।

र०—तुम तो जैसे सत्ययुग में रहते हो। क्या बीड़ी-सिगरेट भी नहीं पीते ?

सु०—राम, राम ! मैंने आज तक कभी हाथ से भी नहीं छुआ।

र०—सचमुच ! तुम अजीब आदमी हो, भई ! क्या जंगल से बझाकर तो न लाए गए हो ?

सु०—(झेपकर) मास्टर साहब तो स्कूल में किसी को नहीं पीने देते।

र०—धत्तेरी मास्टर की। उसको तो मैं खूब जानता हूँ। पूरा

गुरुघण्टाल है। सत्तर चूहे खा के बिल्ली चली हज को। वह तुम लोगों पर भले ही जमा ले। हमारे सामने क्या ढोंग रचेगा ?

सु०—आप उनकी शिकायत क्यों करते हैं ? क्या उन्होंने आपका कुछ बिगाड़ा है ? मुझको चाहे जो कुछ कहिए, लेकिन..............

र०—खैर, जाने दो। माफ करो। (बीड़ी निकालकर) अगर तुम न पीओगे, तो मैं भी न पीऊँगा।

सु०—तो मत पीजिए। अच्छी बात है।

र०—क्या खफ़ा हो गए ? अच्छा, मैं डब्बा खोलता हूँ। तुम सलाई जलाकर सिगरेट में लगा दो।

सु०—(इधर-उधर देखकर) अच्छा लीजिए। (स्वगत) हाय ! ऐसा काम आज तक सपने में भी न किया था।

(रमानाथ मुँह में सिगरेट लगाता है, सुशील जल्दी से जली हुई सलाई बढ़ाता है जिससे रमानाथ की मूँछें झुलस जाती हैं।)

र०—(मूँछें झाड़ता हुआ) अच्छा, मत पीओ। चलो अड्डे पर। दो चार बाजी ताश वगैरह हो जाय।

(दोनों जाते हैं।)

दृश्य ३

(स्थान—सुशील का दालान। सुशील का बड़ा भाई मोहन हाथ में बेंत लिए हुए कुर्सी पर बैठा है।)

मो०—सच-सच बताओ। इतनी देर कहाँ थे ?

सु०—(सिटपिटाकर) महेन्द्र के यहाँ एक किताब बाक़ी थी। वही माँगने गया था।

मो०—अरे! तू इतनी जल्दी झूठ बोलना भी सीख गया! ठीक कह, उस पाजी रमानाथ के साथ तो नहीं था?

सु०—नहीं भैया। उससे तो मेरी बोलचाल तक नहीं है। मैं भला उसके पास क्यों जाने लगा।

मो०—देखो, सुशील! तुम अच्छे घर के लड़के हो, होनहार हो। देखो, उस दुष्ट रमानाथ के फेर में कभी न पड़ना। तुम अभी मिड्ल में पढ़ते हो, और वह तीन बार इन्ट्रेन्स में फेल होकर अवारा-सा बना घूमा फिरता है। उसके चंगुल में फँस जाओगे, तो जिन्दगी बरबाद हो जायगी। पीछे रोने-धोने से कुछ हाथ नहीं आयगा। समझे?

सु०—(रोकर) आप झूठ-मूठ तुहमत लगाते हैं। मैं उसके पास कब जाता हूँ?

मो०—(डपटकर) चुप रह बदमाश। बड़ी सफ़ाई देने चला है। क्या मुझे मालूम नहीं है कि तू अभी उसी के पास से चला आ रहा है। कहते-कहते थक गया कि तू उसका साथ न कर, नहीं तो वह तुझे अपनी ही नाईं तीन कौड़ी का बना छोड़ेगा। पर, जब देखो, तब उसी के पीछे लगा रहता है।

बस, ख़बरदार। यदि आज से फिर उस पातकी रमानाथ

के साथ देखा, तो अपना तेरा खून एक कर दूँगा। चल, पैर छूकर क़सम खा कि फिर उसका साया नहीं पकड़ेगा।

(दोनों जाते हैं।)

दृश्य ४

(स्थान—मैदान का एक सुनसान कोना। रमानाथ की चौकड़ी आकर जम जाती है। सुशील चुपचाप एक ओर बैठ जाता है।)

छन्नू—क्यों सुशील, दूर हटकर क्यों बैठे हो? पास में आओ न!

घूरन—यार! कल तुम्हारे भाई क्या कह रहे थे?

रमा०—कुछ ज़्यादा गर्मी चढ़ गई होगी।

नूरुल—न जानें, वह मुझसे क्यों इतना चिढ़ा रहता है! मेरी सूरत उसे फूटी आँखों भी नहीं सुहाती। जैसे मैं हर वक्त उसे हड़पने को तैयार रहूँ।

छन्नू—यार! एक बात मालूम हुई है?

घूरन—क्या वही सरकसवाली तो नहीं?

रमा०—चलो, हमलोग १० बजे रात तक रहेंगे। उसके बाद हम सुशील को उसके घर तक पहुँचा देंगे।

नूरुल—यार! तुम भी खूब कमाल करते हो।

घू०—पर अकेले-अकेले नहीं; हमलोगों का भी हिस्सा है।

छन्नू—अच्छा अब, चलते चलो। पाँच आदमी का कनसेशन टिकट कटा लेंगे।

(सब उठकर विदा होते हैं।)

दृश्य ५

(स्थान—सुशील की फुलवारी। सुशील अकेले रो रहा है।)

सु० (रोता हुआ)

हाय ! मैं कैसा बना दिवाना।
भला बुरा कुछ समझ न पाया काम किया मनमाना।
घोर शत्रु को अपना समझा, अपनेको बेगाना।।
पापी से मिलने के ख़ातिर, कितना किया बहाना।
हा ! हा ! ऐसा काम किया है, जो था कभी न जाना।।
इस कलङ्कमय जीवन से तो, अच्छा है मर जाना।
जब चिड़िया चुँग गई खेत तब कैसा है पछताना।।

अफ़सोस ! अफ़सोस ! मेरी जिन्दगी ख़राब हो गई। अधम रमानाथ ! तुमने मेरा सर्वनाश कर दिया। तुम्हीं ने मुझे बुरी लत लगाई और पाप का चसका डाला। हाय ! न जानें किस बुरी सायत में मैंने तुम्हारा काला मुँह देखा था। तुमने मुझे कहीं का न छोड़ा। घर में लोगों का स्नेह खोया। स्कूल में फेल हो गया। लड़कों में धाक जाती रही। न मालूम मेरी बुद्धि पर कौन-सा पर्दा पड़ गया था। हाय ! मैंने पिता जी को धोखा दिया, भाई से छल किया, पढ़ना छोड़ा, घर का रुपया बरबाद किया, और दिन-रात नशे में चूर रहा। न जानें मैंने कितने बुरे-बुरे काम कर डाले। अब मैं जीकर क्या करूँ, किसे मुँह दिखाऊँ ? धिक्कार ! धिक्कार !! सौ बार धिक्कार !!!

(धरती पर गिर पड़ता है।)

(सहसा पीछे से सुशील के पिता और भाई आते हैं ।)

पि०—उठो, सुशील । हम तुम्हारी सब बातें सुन चुके हैं। उठो, बेटा। सुबह का भूला यदि शाम को घर लौट आए, तो वह भूला नहीं कहलाता।

सु०—(पिता के पैरों पर गिरकर) पिताजी, मेरे अपराध क्षमा नहीं किए जा सकते । मैं आपलोगों को मुँह दिखाने के लायक नहीं हूँ।

पि०—वत्स, उठो। शान्त होओ। जो सच्चे हृदय से अपनी भूल पर पश्चात्ताप करता है, उसे ईश्वर क्षमा कर देते हैं। प्रतिज्ञा करो कि अब से फिर ऐसी गलती नहीं करोगे ।

सु०—(सिसकते हुए) भूलकर भी नहीं। जो होना था, हो गया। अब मैं सब कुछ जान गया हूँ। क्या दुहराकर अपने पाँव कुल्हाड़ी मारूँगा ?

मो०—(क्रोध से काँपते हुए) हाय ! मेरे सुशील को किसने दुःशील बनाया। यदि इस वक्त पापी रमानाथ को पकड़ पाता, तो इसी छड़ी से सारी गुंडपनी निकाल देता।

पि०—शान्त हो, वत्स ! देखो, पाप का फल ईश्वर देता है। उसे आप-से-आप दंड मिलेगा। सुशील, तुम ईश्वर से हाथ जोड़कर क्षमा माँगो।

(सुशील के और तीन छोटे-छोटे भाई आते हैं और सब मिलकर गाते हैं।)

भूल फिर करें नहीं, भगवान्।
यही हमको तुम दो वरदान॥
सारे जग से हिलमिलकर हम करें प्रेम का दान।
सत्य-धर्म को कभी न छोड़ें, टेकें अपनी आन॥
बड़े जनों का कहना मानें, कर उनका सम्मान।
सदा स्नेह साथी से रक्खें, भाई सोदर जान॥
रहें दूर पापी से, सीखें कभी न खोटी बान।
पाँव कुपथ में कभी न दें हम, जब तक तन में प्राण॥
'मोहन' निज कर्त्तव्य करें हम, रख उद्देश्य महान।
ऐसी शक्ति कृपाकर हमको, दे दो कृपा-निधान॥

(पटाक्षेप)

शब्दार्थ

बगुला-भगत = ढोंगी। नख़रा = नाज़, चुलबुलाहट। गावदी = अबोध, नासमझ। गुरुघंटाल = काइयाँ, चंट, धूर्त्त। साया पकड़ना = असर में आना। चौकड़ी = मंडली। खब्बीस = दुष्ट। बेगाना = पराया। कलंकमय = पाप से भरा हुआ। चिड़िया चुँग गई खेत = मौका चूक जाना। क्षमा = माफ। वत्स = बालक, बच्चा। दंड = सजा। सोदर = सहोदर, सगा। कुपथ = बुरा रास्ता। उद्देश्य = लक्ष्य, मतलब।

बुद्धदेव

[प्रस्तुत दृश्य श्री विश्वम्भर सहाय 'व्याकुल'-रचित 'बुद्धदेव' नाटक से उद्धृत है। इसमें महात्मा बुद्ध (सिद्धार्थ) के जीवन की वह झाँकी है, जिससे उनके हृदय में सब जीवों के प्रति उमड़ते प्रेम और अपार दया का आभास मिलता है।]

बन

[दोनों साधु जो सिद्धार्थ को शूद्रों के हाथ की खीर खाते हुए देख, छोड़कर चले आए हैं, खड़े हुए बातें कर रहे हैं।]

भूधर—कहो भैया! अब क्या चाहते हो? गुरुजी की ओर से तुम्हारा कैसा विचार है?

दिगम्बर—बस जी, अब यहाँ रहनेवाले और उनकी सेवा करनेवाले को धिक्कार है!

भूधर—मित्र लोभी के पास रहने से लोभ ही बढ़ता है।

दिगम्बर—और उनके तो आचार में भी भ्रष्टता है।

भूधर—यह तो है ही। इनके लिए तो आज खीर, कल रबड़ी, परसों मोहनभोग—अब तो ऐसे ही पदार्थ आया करेंगे।

दिगम्बर—और हम?

भूधर—हम क्या नीच शूद्रों के हाथ का खाया करेंगे?

दिगम्बर—परन्तु भैया! गुरुजी से ऐसी आशा थी नहीं; हम तो उन्हें बड़ा महात्मा और सिद्ध समझते थे।

भूधर—नहीं तो इतने दिन सेवा ही क्यों करते?

दिगम्बर—तुम यह तो सोचो, इतने दिन बिना खाए कोई कैसे रह सकता है ?

भूधर—छ वर्ष तो क्या, हमसे छ दिन भी नहीं रहा जाय।

दिगम्बर—भइया! अगले ही दिन मूर्च्छा आ जाय।

भूधर—तो अब क्या करने का विचार है ?

दिगम्बर—अब तो काशी चलने का संकल्प है।

भूधर—अच्छा! काशी! श्री विश्वनाथ काशी। जहाँ बहत गंगा, वहीं मुक्ति-राशि!

दिगम्बर—क्यों भाई! काशी में खान-पान का क्या ज्ञान रहेगा ?

भूधर—अरे! काशी में ज्ञान ? रात-दिन मेवा-मिष्टान्न!! भइया,

रंगे वस्त्र, सिर घोटम-घोटा,
हाथ कमंडल और एक सोटा,
फिर कैसा भोजन का टोटा ?

और फिर आजकल तो वहाँ वाममार्ग का प्रचार है।

दिगम्बर—तब तो पाँचो उँगलियाँ घी में हैं; किन्तु वहाँ पहुँचने तक मार्ग में भी तो कुछ खायँगे।

भूधर—बावले! गृहस्थियों को कृतार्थ करते-करते पहुँच ही जायँगे। हमारे हाथ में तो सोने का कटोरा है।

दिगम्बर—हाँ जी, ब्राह्मण के बालक हैं; यह गौरव क्या थोड़ा है।

भूधर—(नेपथ्य की ओर देखकर) लो अब यहाँ से उड़ंछू हो। देखो सामने से वेही लोभी महाराज आ रहे हैं।

[दोनों जाते हैं, सिद्धार्थ का प्रवेश।]

सिद्धार्थ—अरे! यह धूल कैसी? कहीं आँधी तो नहीं आ रही है? (ठहरकर) नहीं, आँधी नहीं, आँधी के साथ तो पवन का वेग बढ़ जाता है। (फिर देखकर) ओ हो! भेड़ों का रेवड़ आ रहा है। ऐसा क्या समय हो गया? ये अभी से ग्राम की ओर क्यों जा रहे हैं? (फिर देखकर) हाय! हाय! कैसा निर्दयी गड़रिया है। भेड़ों को चलते-चलते भी मारता है। यह लो! उस लँगड़े मेमने पर भी विपता आई। (चिल्लाकर) अरे, क्यों भाई! यह तो आप ही लँगड़ा है, इस बच्चे को क्यों मारते हो? तुम तो बड़े ही कठोर-हृदय हो?

गड़रिया—(बच्चे को मारता हुआ आता है।) महात्मा! भेड़ों की प्रकृति आप नहीं जानते। इस मेमने के रुक-रुककर चलने से रेवड़-का-रेवड़ अटक-अटककर चलता है। जितनी देर होती है, उतना ही मेरा कलेजा दहलता है।

सिद्धार्थ—ऐसी शीघ्रता से तुम कहाँ जा रहे हो? अपनी तनिक-सी जल्दी के कारण एक भोले पशु को क्यों सता रहे हो?

गड़रिया—महाराज! आज हमारे राजा वार्षिक यज्ञ कर रहे हैं; इसलिए हरएक गड़रिये से एक-एक सहस्र भेड़-बकरी ली जायँगी और बलिदान की जायँगी।

सिद्धार्थ—एक-एक सहस्र ! ऐसे कितने पशु बध किए जायँगे ?

गड़रिया—हम लोगों से तो एक लाख लिए जायँगें।

सिद्धार्थ—तो इसी कारण तुम जल्दी कर रहे हो ? अच्छा, चलो, मैं तुम्हारे इस बच्चे को, गोद में लिए हुए रेवड़ के आगे-आगे चलूँगा। विलम्ब न होने दूँगा। तुम्हारा प्रयोजन भी सिद्ध हो जायगा; इसे भी कष्ट न होने पायगा।

[बच्चे को उठाने नेपथ्य में जाते हैं।]

गड़रिया—छोड़ दीजिए। इसे छोड़ दीजिए! साधुजी, आप क्यों परिश्रम उठाते हैं ? रेवड़ को तो हम मार-पीटकर ले ही जाते हैं।

[सिद्धार्थ बच्चे को गोद में उठाकर लाते हैं।]

सिद्धार्थ—मार-पीटकर ! क्यों भाई ? यदि तुम्हारे पाँव में चोट लग जाय या कोई काँटा चुभ जाय और इस समय तुम्हारा स्वामी तुम्हारे दुःख की चिन्ता न करे, ऐसे ही जल्दी चलने के लिए कहे, तुमपर हाथ उठाए, तो बताओ तुम्हें कुछ दुःख होगा या नहीं ?

गड़रिया—होगा, महाराज ! क्यों नहीं होगा ?

सिद्धार्थ—तो ऐसे ही दूसरों का दुःख जानना चाहिए। अपने समान इस कोमल जीव को भी मानना चाहिए।

गड़रिया—महाराज ! भेड़ तो मुँड़ने ही के लिए हैं। संसार में छोटा बनना और निर्बल होना ही आपत्ति है। आप जाइए; अपनी तपस्या में ध्यान लगाइए; इन पशुओं के पीछे समय न गँवाइए।

सिद्धार्थ—नहीं भाई! मैं इस बच्चे को तो ले ही चलूँगा। वरन्, जहाँ तक हो सकेगा, तुम्हारे सारे जिह्वाहीन जीवों की सहायता भी करूँगा। मेरी तपस्या को इससे कुछ हानि नहीं होती। जो लोग गुफाओं और मन्दिरों के एकान्त में बैठे-बैठे मालाओं की गिन्ती गिना करते हैं, या रात-दिन प्रार्थना ही किया करते हैं, उनके जीवन की अपेक्षा मैं ऐसा जीवन श्रेय समझता हूँ जो दूसरों का दुःख दूर करने के लए तत्पर रहता है।

गड़रिया—महाराज की जैसी इच्छा!

[दोनों जाते हैं।]

शब्दार्थ

आचार = चरित्र, चाल-चलन। भ्रष्टता = खराबी। सिद्ध = पहुँचे हुए। संकल्प = विचार। मुक्ति = दुनिया के बंधन से छूटना। राशि = समूह। वाम-मार्ग = वह मत जिसमें मद्य, मांस आदि का विधान है। पाँचों उँगलियाँ घी में = खूब मौज। बावला = पागल। कृतार्थ = धन्य। गौरव = बड़प्पन। उड़ंछू होना = गायब होना। रेवड़ = झुंड। कठोर-हृदय = जिसके हृदय में जरा भी दया न हो। प्रकृति = स्वभाव, आदत। वार्षिक = सालाना। यज्ञ = वेद में लिखा हुआ कृत्य जिसमें हवन और पूजन होता है, उत्सव। प्रयोजन = मतलब। सिद्ध होना = पूरा होना। स्वामी = मालिक। तपस्या = तप। जिह्वाहीन = मूक, जो बोल नहीं सकते। गुफा = पहाड़ की खोह। अपेक्षा = सिवा। श्रेय = बहुत अच्छा। तत्पर = तैयार।

चौपट्ट राजा

[यह दृश्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के 'अंधेर नगरी' नामक प्रहसन से उद्धृत है। इसमें चौपट्ट राजा के चौपट्ट दिमाग का मज़ाक उड़ाया गया है। इसके पढ़ते समय जहाँ एक ओर हँसी का फव्वारा छूटता है, वहाँ दूसरी ओर राजा के कामों को देखकर दुख भी होता है।]

स्थान—राजसभा

(राजा, मंत्री और नौकर लोग यथास्थान स्थित हैं।)

एक सेवक—(चिल्लाकर) पान खाइए, महाराज !

राजा—(पीनक से चौंक के घबड़ा उठता है।) क्या कहा ? सुपनखा आई, ए महाराज ! (भागता है।)

मंत्री—(राजा का हाथ पकड़कर) नहीं, नहीं; यह कहता है कि पान खाइए, महाराज।

राजा—दुष्ट, लुच्चा, पाजी। नाहक हमको डरा दिया। मंत्री, इसको सौ कोड़े लगें।

मंत्री—महाराज ! इसका क्या दोष है ? न तमोली पान लगा कर देता, न यह पुकारता।

राजा—अच्छा, तमोली को दो सौ कोड़े लगें।

मंत्री—महाराज, आप पान खाइए सुनकर थोड़े ही डरे हैं, आप तो सुपनखा के नाम से डरे हैं, सुपनखा की सजा हो।

राजा—(घबड़ाकर) फिर वही नाम ? मंत्री, तुम बड़े खराब

आदमी हो। हम रानी से कह देंगे कि मंत्री बेर-बेर तुमको सौत बुलाने चाहता है। नौकर! शराब—

नौकर—(एक सुराही में से एक गिलास में शराब उझलकर देता है।) लीजिए महाराज। पीजिए महाराज।

राजा—(मुँह बना-बनाकर पीता है।) और दे। (नेपथ्य में 'दुहाई है दुहाई' का शब्द होता है।) कौन चिल्लाता है—पकड़ लाओ।

(दो नौकर एक फर्यादी को पकड़ लाते हैं।)

फ०—दोहाई है महाराज दोहाई है। हमारा न्याव होय।

राजा—चुप रहो। तुम्हारा न्याव यहाँ ऐसा होगा कि जैसा जम के यहाँ भी न होगा—बोलो क्या हुआ?

फ०—महाराज! कल्लू बनियाँ की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई। दोहाई है महाराज, न्याव हो।

राजा—(नौकर से) कल्लू बनिये की दीवार को अभी पकड़ लाओ।

मंत्री—महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती।

राजा—अच्छा, उसका भाई, लड़का, दोस्त, आशना जो हो उसको पकड़ लाओ।

मंत्री—महाराज! दीवार ईंट-चूने की होती है उसको भाई-बेटा नहीं होता।

राजा—अच्छा, कल्लू बनिये को पकड़ लाओ। ?

(नौकर लोग दौड़कर बाहर से बनिये को पकड़ लाते हैं।)

क्यों बे बनिये ! इसकी लरकी, नहीं बरकी क्यों दबकर मर गई ?

मंत्री—बरकी नहीं, महाराज, बकरी।

राजा—हाँ हाँ, बकरी क्यों मर गई—बोल,नहीं अभी फाँसी देता हूँ।

कल्लू—महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं। कारीगर ने ऐसी दीवार बनाई कि गिर पड़ी।

राजा—अच्छा, इस मल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ। (कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़कर लाते हैं।) क्यों बे कारीगर ! इसकी बकरी किस तरह मर गई ?

कारीगर—महाराज, मेरा कुछ कसूर नहीं, चूनेवाले ने ऐसा बोदा बनाया कि दीवार गिर पड़ी।

राजा—अच्छा, इस कारीगर को बुलाओ, नहीं नहीं निकालो, उस चूनेवाले को बुलाओ। (कारीगर निकाला जाता है, चूनेवाला पकड़कर लाया जाता है।) क्यों बे खैर-सुपाड़ी-चूनेवाले ! इसकी कुबड़ी कैसे मर गई ?

चूनेवाला—महाराज ! मेरा कुछ दोष नहीं; भिश्ती ने चूने में पानी ढेर दे दिया, इसी से चूना कमजोर हो गया होगा।

राजा—अच्छा, चुन्नीलाल को निकालो, भिश्ती को पकड़ो। (चूनेवाला निकाला जाता है, भिश्ती लाया जाता है।) क्यों बे भिश्ती ! गंगा-जमुना की किश्ती ! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई ?

भिश्ती—महाराज। गुलाम का कोई कसूर नहीं, कस्साई ने मसक इतनी बड़ी बना दी कि उसमें पानी जादे आ गया।

राजा—अच्छा, कस्साई को लाओ, भिश्ती निकालो। (लोग भिश्ती को निकालते हैं, कस्साई को लाते हैं।) क्यों बे कस्साई, मशक ऐसी क्यों बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई ?

कस्साई—महाराज ! गँड़ेरिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेड़ मेरे हाथ बेची कि उसकी मशक बड़ी बन गई।

राजा—अच्छा, कस्साई को निकालो, गँड़ेरिए को लाओ। (कस्साई निकाला जाता है, गँड़ेरिया आता है।) क्यों बे ऊख पौंड़े के गँड़ेरिया, ऐसी बड़ी भेड़ क्यों बेची कि बकरी मर गई ?

गँड़ेरिया—महाराज ! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उसके देखने में मैंने छोटी बड़ी भेड़ का खयाल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।

राजा—अच्छा, इसको निकालो; कोतवाल को अभी सरब-मुहर पकड़ लाओ। (गँड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल पकड़ा जाता है।) क्यों बे कोतवाल ! तैंने सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गँड़ेरिये ने घबड़ाकर बड़ी भेड़ बेची, जिससे बकरी गिरकर कल्लू बनियाँ दब गया ?

कोतवाल—महाराज ! मैंने तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इंतजाम के वास्ते जाता था।

मंत्री—(आप ही आप) यह तो बड़ा गजब हुआ, ऐसा न हो कि यह बेवकूफ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फाँसी दे। (कोतवाल से) यह नहीं, तुमने ऐसी धूम से सवारी क्यों निकाली ?

राजा—हाँ हाँ, यह नहीं, तुमने ऐसी धूम से सवारी क्यों निकाली कि उसकी बकरी दबी ?

कोतवाल—महाराज, महाराज—

राजा—कुछ नहीं, महाराज महाराज ले जाओ, कोतवाल को अभी फाँसी दो। दरबार बरखास्त।

(लोग एक तरफ से कोतवाल को पकड़कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मंत्री को पकड़कर राजा जाते हैं।)

(जवनिका गिरती है।)

शब्दार्थ

यथा-स्थान = अपने-अपने स्थान पर। सेवक = नौकर। पीनक = अफीमची का नशे में ऊँघना। सुपनखा = शूर्पणखा, राक्षसी जो रावण की बहन थी। न्याव = न्याय, इन्साफ। आशना = दोस्त, मित्र। बोदा = कमजोर। किश्ती = नाव। मशक = पानी के लिए चमड़े का बना थैला। धूम = समारोह, भीड़ भाड़। जवनिका = नाटक का परदा।

भारतदुर्दशा

[प्रस्तुत दृश्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के 'भारतदुर्दशा' नामक नाटक से लिया गया है। इसमें नाश की ओर बढ़ते हुए कोरी बातें बनानेवाले भारतीयों के थोथेपन और कापुरुषता का बड़ा ही कारुणिक चित्र खींचा गया है।]

स्थान—किताबखाना

(सात सभ्यों की एक छोटी सी कमेटी; सभापति चक्करदार टोपी पहने, चश्मा लगाए, छड़ी लिए; छः सभ्यों में एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक अखबार हाथ में लिए एडिटर, एक कवि और दो देशी महाशय।)

सभापति—(खड़े होकर) सभ्यगण! आज की कमेटी का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारतदुर्दैव की, सुना है कि, हम लोगों पर चढ़ाई है। इस हेतु आपलोगों को उचित है कि मिलकर ऐसा उपाय सोचिए कि जिससे हमलोग इस भावी आपत्ति से बचें। जहाँ तक हो सके अपने देश की रक्षा करना ही हमलोगों का मुख्य धर्म है। आशा है कि आपलोग अपनी-अपनी अनुमति प्रगट करेंगे। (बैठ गए, करतलध्वनि)

बंगाली—(खड़े होकर) सभापति साहब जो बात बोला बहुत ठीक है। इसका पेशतर कि भारतदुर्दैव हमलोगों का शिर पर आ पड़े, कोई उसके परिहार का उपाय शोचना अत्यंत आवश्यक है। किंतु प्रश्न एई है जे हमलोग उसका दमन

करने शाकता कि हमारा बीर्ज्जोबल के बाहर का बात है। क्यों नहीं शाकता ? अलबत्त शकैगा, परन्तु जो शब लोग एक मत्त होगा। (करतलध्वनि) देखो हमारा बंगाल में इसका अनेक उपाय शाधन होते हैं। ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन लोग इत्यादि अनेक शभा भी होते हैं। कोई थोड़ा बी बात होता हमलोग मिल के बड़ा गोल करते। गवर्नमेंट तो केवल गोल-माल शे भय खाता। और कोई तरह नहीं शोनता। ओ हुआँ का अखबारवाला सब एक बार ऐसा शोर करता कि गवर्नमेंट को अलबत्त शुनने होता। किंतु हेंयाँ, हम देखते हैं कोई कुछ नहीं बोलता। आज शब आप सभ्य लोग एकत्र हैं, कुछ उपाय इसका अवश्य शोचना चाहिए। (उपवेशन)

प० देशी—(धीरे से) यहीं, मगर जबतक कमेटी में हैं तभी तक। बाहर निकले कि फिर कुछ नहीं !

दू० देशी—(धीरे से) क्यों भाई साहब, इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे ?

एडिटर—(खड़े होकर) हम अपने प्राणपण से भारतदुर्दैव को हटाने को तैयार हैं। हमने पहिले भी इस विषय में एक बार अपने पत्र में लिखा था परंतु यहाँ तो कोई सुनता ही नहीं। अब जब सिर पर आफत आई तो आपलोग उपाय सोचने लगे। भला अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जो कुछ सोचना हो जल्द सोचिए। (उपवेशन)

कवि—(खड़े होकर) मुहम्मदशाह से भाँड़ों ने दुश्मन की फौज से बचने का एक बहुत उत्तम उपाय कहा था। उन्होंने बतलाया कि नादिरशाह के मुक़ाबिले में फौज न भेजी जाय। जमना-किनारे कनात खड़ी कर दी जायँ, कुछ लोग चूड़ी पहिने कनात के पीछे खड़े रहें। जब फौज इस पार उतरने लगे, कनात के बाहर हाथ निकालकर उँगली चमकाकर कहें—"मुए इधर न आइयो इधर जनाने हैं" बस सब दुश्मन हट जायँगे। यही उपाय भारतदुर्दैव से बचने को क्यों न किया जाय ?

बंगाली—(खड़े होकर) अलबत्त, यह भी एक उपाय है किंतु असभ्यगण आकर जो स्त्री लोगों का विचार न करके सहसा कनात को आक्रमण करेगा तो ? (उपवेशन)

एडिटर—(खड़े होकर) हमने एक दूसरा उपाय सोचा है, एडूकेशन की एक सेना बनाई जाय। कमेटी की फौज। अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मारे जायँ। आपलोग क्या कहते हैं ? (उपवेशन)

दू० देशी—मगर जो हाकिम लोग इससे नाराज हों तो ? (उपवेशन)

बंगाली—हाकिम लोग काहे को नाराज होगा। हमलोग शदा चाहता कि अँगरेजों का राज्य उत्सन्न न हो, हमलोग अपना बचाव करता। (उपवेशन)

महा०—परंतु इसके पूर्व्व यह होना अवश्य है कि गुप्त रीति

से यह बात जाननी कि हाकिम लोग भारतदुर्दैव की सैन्य से मिल तो नहीं जायँगे।

दू० देशी—इस बात पर बहस करना ठीक नहीं। नाहक कहीं लेने के देने न पड़ें, अपना काम देखिए। (उपवेशन और आप ही आप) हाँ, नहीं तो अभी कल ही झाड़बाजी होय।

महा०—तो सार्व्वजनिक सभा का स्थापन करना। कपड़ा बीनने की कल मँगानी। हिंदुस्तानी कपड़ा पहिनना। यह भी सब उपाय हैं।

दू० देशी—(धीरे से) बनात छोड़कर गजी पहिरेंगे, हें हें।

एडिटर—परंतु अब समय थोड़ा है जल्दी उपाय सोचना चाहिए।

कवि—अच्छा तो एक उपाय यह सोचो कि सब हिन्दू-मात्र अपना फैशन छोड़कर कोट-पतलून इत्यादि पहिरें जिसमें जब दुर्दैव की फौज आवे तो हम लोगों को योरोपियन जानकर छोड़ दे।

प० देशी—पर रंग गारा कहाँ से लावेंगे ?

बंगाली—हमारा देश में भारत उद्धार नामक एक नाटक बना है। उसमें अँगरेजों को निकाल देने का जो उपाय लिखा, सोई हमलोग दुर्दैव का वास्ते काहे न अवलंबन करें। ओ लिखता पाँच जन बंगाली मिल के अँगरेजों को निकाल देगा। उसमें एक तो पिशान लेकर स्वेज का नहर पाट

देगा। दूसरा बाँस काट-काट के पिचरी नामक जलयंत्र विशेष बनावेगा। तीसरा उस जलयंत्र से अँगरेजों की आँख में धूर और पानी डालेगा।

महा०—नहीं नहीं, इस व्यर्थ की बात से क्या होना है। ऐसा उपाय करना जिससे फलसिद्धि हो।

प० देशी—(आप ही आप) हाय! यह कोई नहीं कहता कि सबलोग मिलकर एक-चित्त हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो, जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो। क्रमशः सब कुछ हो जायगा।

एडि०—आप लोग नाहक इतना सोच करते हैं, हम ऐसे-ऐसे आर्टिकिल लिखेंगे कि उसके देखते ही दुर्दैव भागेगा।

कवि—और हम ऐसी ही कविता करेंगे।

प० देशी—पर उनके पढ़ने का और समझने का अभी संस्कार किसको है?

(नेपथ्य में से)

भागना मत, अभी मैं आती हूँ।

(सब डर के चौकन्ने से होकर इधर-उधर देखते हैं।)

❀ ❀ ❀

(जवनिका गिरती है)

शब्दार्थ

भारतदुर्दैव = भारत का दुर्भाग्य। अनुमति = मत, राय। करतल-ध्वनि = ताली। परिहार = बचाव। बीर्जोबल = ताकत। अलवत्त = जरूर, वास्तव में। मत्त = मत। गोल-माल = गड़बड़ी। सभ्य = सदस्य, मेम्बर। उपवेशन = बैठना। कनात = तम्बू। उत्सन्न = नष्ट। सार्वजनिक = सब लोगों की। पिशान = आटा। जलयंत्र = पानी की कल। फलसिद्धि = फल की प्राप्ति। क्रमशः = धीरे-धीरे। संस्कार = शिक्षा। जवनिका = परदा।